मालवीयजी महाराजकी छायामें

अट्ठारह वर्ष

शिवधनी सिंह

ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी

मूल्य : पचास रुपये
प्रथम संस्करण १९८९ जनवरी

© ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
प्रकाशक : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, विक्रम भवन, लंका, वाराणसी
मुद्रक : महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी-१०

दो शब्द

ठाकुर शिवधनी सिंह संस्कृत तथा हिन्दीके मर्मज्ञ विद्वान् हैं। ये महामना मालवीयजी महाराजके १८ वर्षोंतक (१९२८ ई० से लेकर मृत्युपर्यन्त) निजी सचिव तथा विश्वासी सलाहकार थे। मालवीयजीकी इन्होंने बड़ी निष्ठासे सेवा की है। इन्होंने महामनाके जीवनको बड़े निकटसे देखा है। ये सर्वदा उनके साथ ही रहते थे और उनके परिवारके अविभाज्य अङ्ग ही बन गये थे। मालवीयजी इनकी सम्मति अनेक पारिवारिक समस्याओंके सुलझानेके लिए लिया करते थे। इन्होंने महामनाके दिव्य संस्मरणोंको एकत्र कर जो यह नया ग्रन्थ लिखा है, वह नितान्त उपादेय तथा संग्रहणीय है। यह ग्रन्थ प्रामाणिक तो है ही। इसमें मालवीयजी महाराजके जीवनके अनेक ऐसे पहलू उजागर किये गये हैं जो हमें अज्ञात अथवा अल्पज्ञात हैं। मैं इस सुन्दर ग्रन्थके बहुल प्रचारकी कामना करता हूँ।

आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय

भू० पू० निदेशक, अनुसन्धान विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

रवीन्द्रपुरी,
वाराणसी

कृतज्ञता-ज्ञापना

प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशनका एकमात्र श्रेय ज्ञानमण्डल लिमिटेडके प्रबन्ध संचालक श्री शार्दूल विक्रम गुप्तजीको है, जिन्होंने इसे प्रकाशित करनेका दायित्व अपने संस्थान द्वारा स्वीकार किया और इसका समस्त भार पण्डित विजय कृष्ण त्रिपाठीजीको सौंपा।

यद्यपि मैंने २५ वर्ष पूर्व मालवीयजी महाराजका संक्षिप्त जीवन झांकी तथा संस्मरण लिख रखा था किन्तु संकोचके कारण उपेक्षित पड़ा रहा।

कुछ शोधकर्त्ताओंको इस विषयमें जानकारी प्राप्त करने हेतु मुझसे व्यक्तिगत तौरपर सम्पर्क करना पड़ता था। साथ ही मालवीय मिशनोंको समय-समयपर मालवीयजी महाराजसे सम्बन्धित स्मरणोंकी आवश्यकता पड़ती थी। इस कमीकी पूर्तिके लिए मुझे अपने संकोचको त्यागना पड़ा। पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करानेकी जिज्ञासा ज्ञानमण्डल लिमिटेडके प्रकाशनाधिकारी श्री त्रिपाठीजीसे व्यक्त की। जिसको उन्होंने न केवल प्रसन्नतापूर्वक सुना प्रत्युत वर्षों पूर्व अस्त-व्यस्त उपेक्षित मेरी पाण्डुलिपिको सुव्यवस्थित-टाइप कराकर इसके सँवारने-सजानेमें अपनी रुचिसे काम लिया। साथ ही मेरी वृद्धावस्था एवं दृष्टि-दोषको दृष्टिमें रखते हुए प्रूफ आदि कष्टसे मुझे मुक्त कर स्वयं भार वहन करनेकी कृपा की, मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ-ऋणी हूँ। भगवान् उन्हें यशस्वी, दीर्घायुष्य प्रदान करें।

मैं यह महसूस करता हूँ पुस्तकमें यत्र-तत्र अशुद्धियाँ तथा पुनरुक्ति दोष भी संभावित हैं, विज्ञ पाठक उसके लिये क्षमा करेंगे।

शिवधनी सिंह

वसन्तपंचमी सं० २०४५ वि०

VICE-CHANCELLOR.

Benares Hindu University.

14th April, 1926.

Thakur Shivadhani Singh Varma has been a student of the College of Oriental Learning in the Benares Hindu University for the last seven years. He belongs to a respectable Kshatriya family in the Ballia district.

Thakur Shivadhani Singh has passed the Shastri Examination of the University being placed in the second division. He has completed his course for the Shastracharya degree, and I have every hope that he will obtain this degree next year. Throughout his career at the University Thakur Shivadhani Singh has been one of our best students - intelligent, industrious devoted to his studies, and excellent in character. In my opinion both by his knowledge of Sahitya and by his character he is well qualified to be a Teacher of Samskrit in any High School, and I shall be glad to hear that he has obtained such an appointment.

M. M. Malaviya.

VICE-CHANCELLOR.
B.H.U.

आनन्द भवन
इलाहाबाद
२१/२/३८

श्री ध्यान पालसिंह जी -

आप का भेजा हुआ चेक ४२५) मिल गया। इसे मैं लाला मुल्कराज को भेज रहा हूं। कुछ दिन हुए लाला मुल्कराज ने मुझे लिखा था कि उन्होंने कुछ जलियांवाला बाग के सम्बन्ध में कागज़ पूज्य मालवीयजी को भेजे थे पर मुझे अभी नहीं मिले - कृपा कर के उनके बारे में दरियाफ्त कर लीजिये। मैं पूज्य मालवीयजी को भी इस बारे में लिख रहा हूं। उन को मैं तकलीफ नहीं देना चाहता लेकिन मुझे फिक्र है कि यह कागज़ खो न जावें।

आपका
जवाहरलाल नेहरू

INDIAN POSTS AND TELEGRAPHS DEPARTMENT.

NOTICE.

This form must accompany any inquiry made respecting this Telegram.

Charges to pay.	
Rs.	As.

Handed in at (Office of Origin).	Date.	Hour.	Minute.	Service Instructions.	Words.
Benares Cantt	[illegible]	21	40	[illegible] X	28

Recd. here at 2 H. 55 M.

TO [illegible]

[illegible]

[illegible] improving = Malaviya

N.B.—The name of the Sender, if telegraphed, is written after the text.

श्रीराम

पूज्य मालवीयजी के प्रति.

भारत को अभिमान तुम्हारा, तुम भारत के अभिमानी,
पूज्य पुरोहित थे हम सबके, रहे सदैव समाधानी।
तुम्हें कुशल शासक कहते हैं किन्तु कौन तुम-सा दानी.
अक्षय शिक्षा-सत्र तुम्हारा है ब्राह्मण- अभिमानी!
स्वयं मदन मोहन की तुम में तन्मयता है समा गई,
कल्याणी वाणी जन जन के हित में धूनी रमा गई।

मैथिलीशरण

महात्माजी का अभिवादन

(२)

२

प्राण है यह नरवीर हमारे लिये
दीर्घायु हो

विलायत जाते हुए
७-९-'३१

मोहनदास गांधी

मैं तो मालवीजी महाराज का पुजारी हूँ। पुजारी कैसे स्तुति के वचन लिख सके? जो कुछ लिखेगा उसे अपूर्ण सा प्रतीत होगा। मालवीजी के दर्शन मैंने सन १८९० की साल में चित्र द्वारा किया था, वह चित्र विलायत में इंडिया पत्र जो मो० डिगबी निकालते थे उसमें था। माना जाय कि वही छबि मैं आज भी देख रहा हूँ। जैसे उनके लिबास में ऐसे ही उनके विचार में ऐक्य चला आया है और इस ऐक्य में मैंने माधुर्य और भक्ति पाये हैं। आज मालवीजी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है? यौवन काल से आरम्भ करके आज तक उनकी देश-भक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है। काशी विश्वविद्यालय के मालवीजी प्राण हैं, काशी विश्वविद्यालय मालवीजी का प्राण है, यह नरवीर हमारे लिये दीर्घायु हो।

विलायत जाते हुए
७—९—३१

मोहनदास गांधी

महात्माजी का अभिवादन

(मूल पत्र)

मैं तो मालवीजी महाराज का पूजारी हुं. पूजारी कैसे स्तुती के वचन लिख सके? जो कुछ लिखेगा उसे अपूर्ण सा प्रतीत होगा. मालवीजी के दर्शन मैंने सन १८९० की साल में चित्र द्वारा किया था. वह चित्र विलायत में इंडिया पत्र जो श्री डिग्बी नीकालते थे उसमें था. माना जाय कि वही छबी मैं आज भी देख रहा हुं. जैसे उनके लिबास में ऐसे ही उनके विचार में ऐक्य चला आया है और इस देश में मैंने माधुर्य और भक्ति पायी है. आज मालवीजी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है? यौवन काल से आरंभ करके आज तक उनकी देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है. काशी विश्वविद्यालय के मालवीजी प्राण है, का. वि. विद्यालय मालवीजी का.

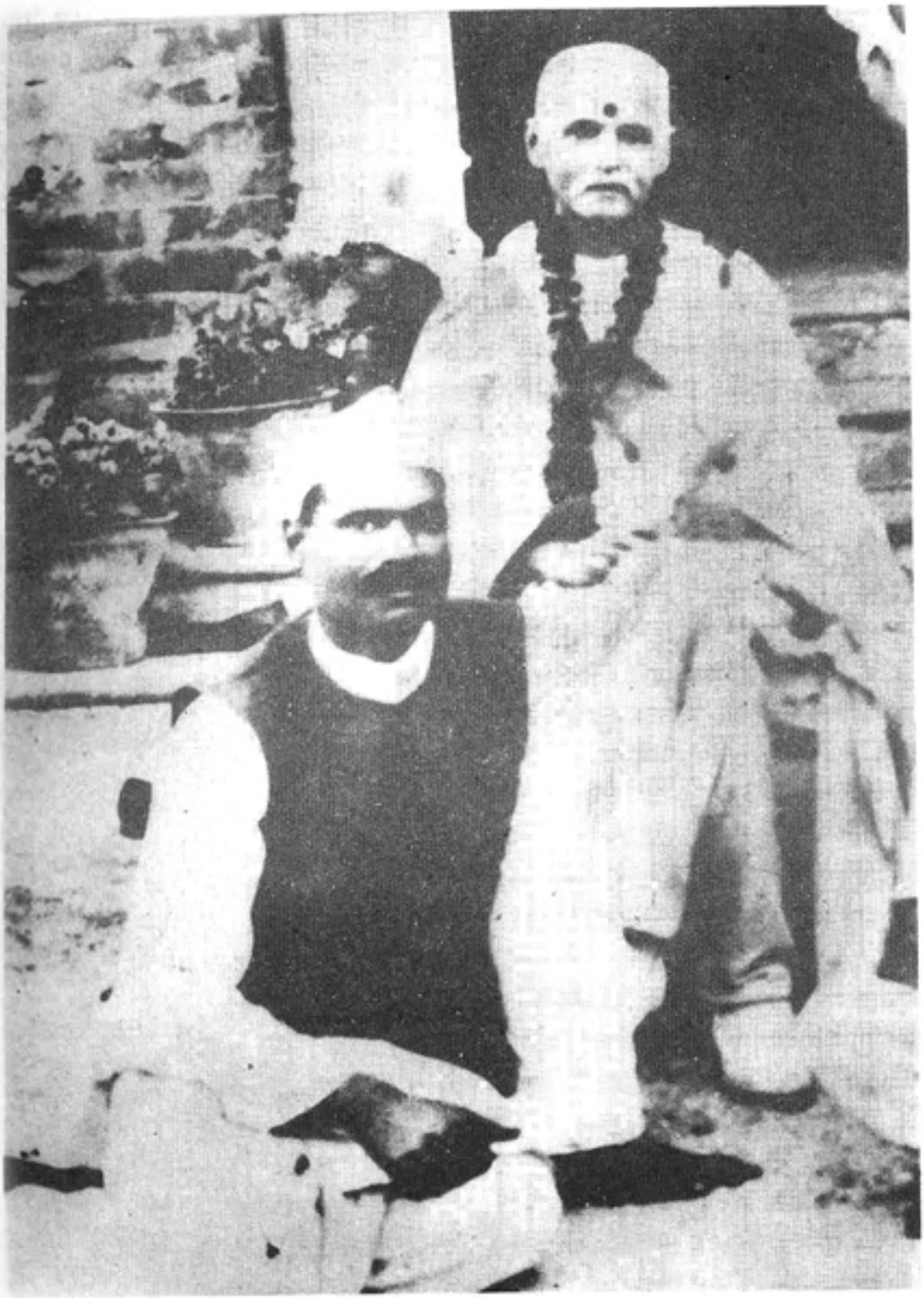

मालवीयजी महाराज ले० शिवधनी सिंहके साथ

(2)

SRI VENKATESWARA
ORIENTAL INSTITUTE,
TIRUPATI

28th January, 1940

During my service in the Benares Hindu University I came to know Babu Sivdhani Singh, Sahitya-Acharya, the Librarian of the College of Oriental Learning, pretty intimately, as I used to borrow books from the library of the College. To most persons visiting the University he was better known through his attendance on the venerable Vice Chancellor, Pujya Pandit Madan Mohan Malaviyaji, whom he served with unflagging devotion and fidelity. His suavity, energy and tact won for him the confidence of Pujya Panditji and the respect of the University staff. His knowledge of English and alert mind made him an efficient personal assistant to the Vice Chancellor who utilised him in matters requiring judgment and resource. Few outside the University could know that Sivdhaniji held a whole-time office outside the personal circle of the Vice Chancellor, owing to his unremitting attention to the wishes of the venerable Vice Chancellor. Babu Sivdhaniji's ability and experience in affairs will fit him for more responsible positions than [redacted] has been content to hold merely because it gave him the leisure to be dedicated to the service of his Master.

K V Rangaswamy Ayangar

(DIRECTOR)

संस्थापक कुलपति महाराज

महाराजके पिताजी–पं. ब्रजनाथ चतुर्वेदी मालवीय

महाराजकी माताजी–श्रीमती भूनादेवी

महामनाका जन्म-स्थान

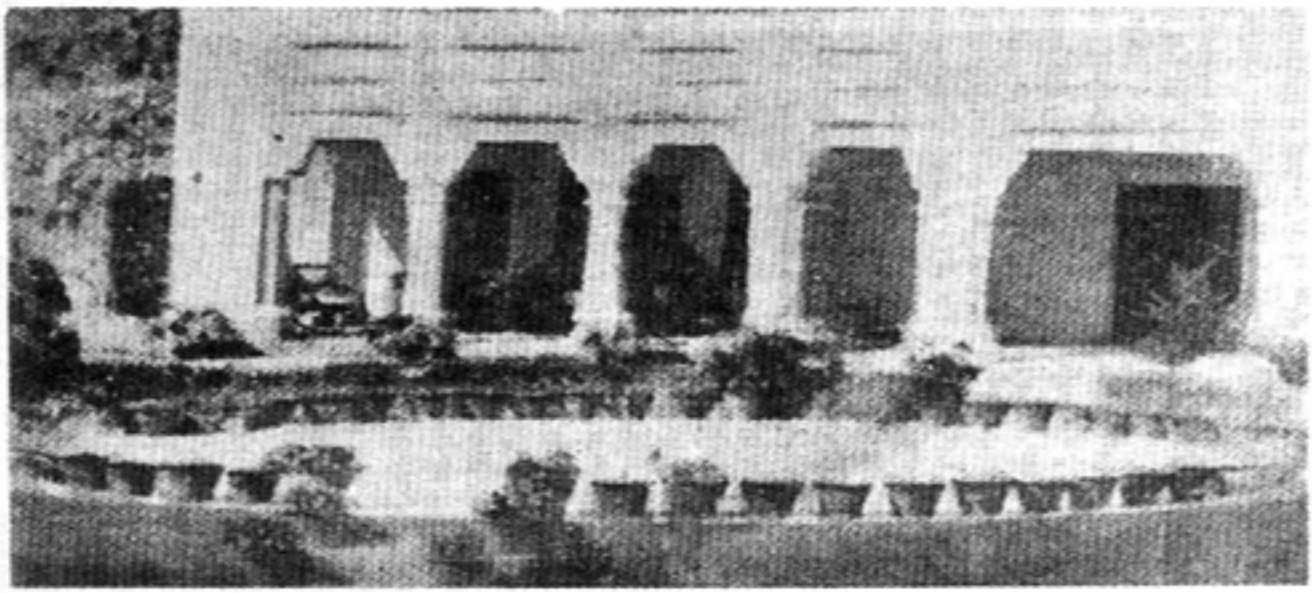

हमारा तीर्थस्थल–मालवीय भवन

महाराजकी धर्मपत्नी अपने पुत्रोंके साथ

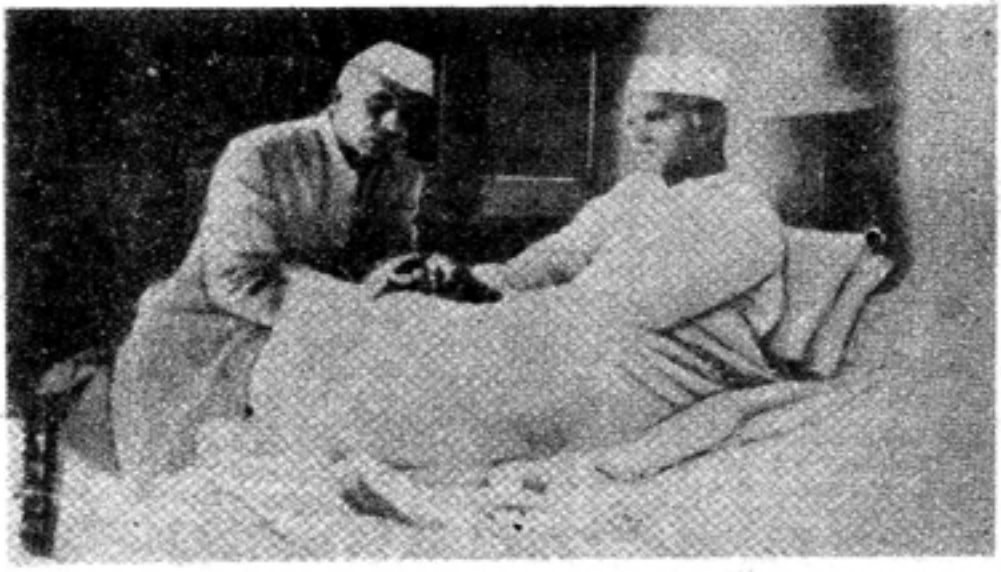

मालवीयजी और पं. जवाहरलाल नेहरू

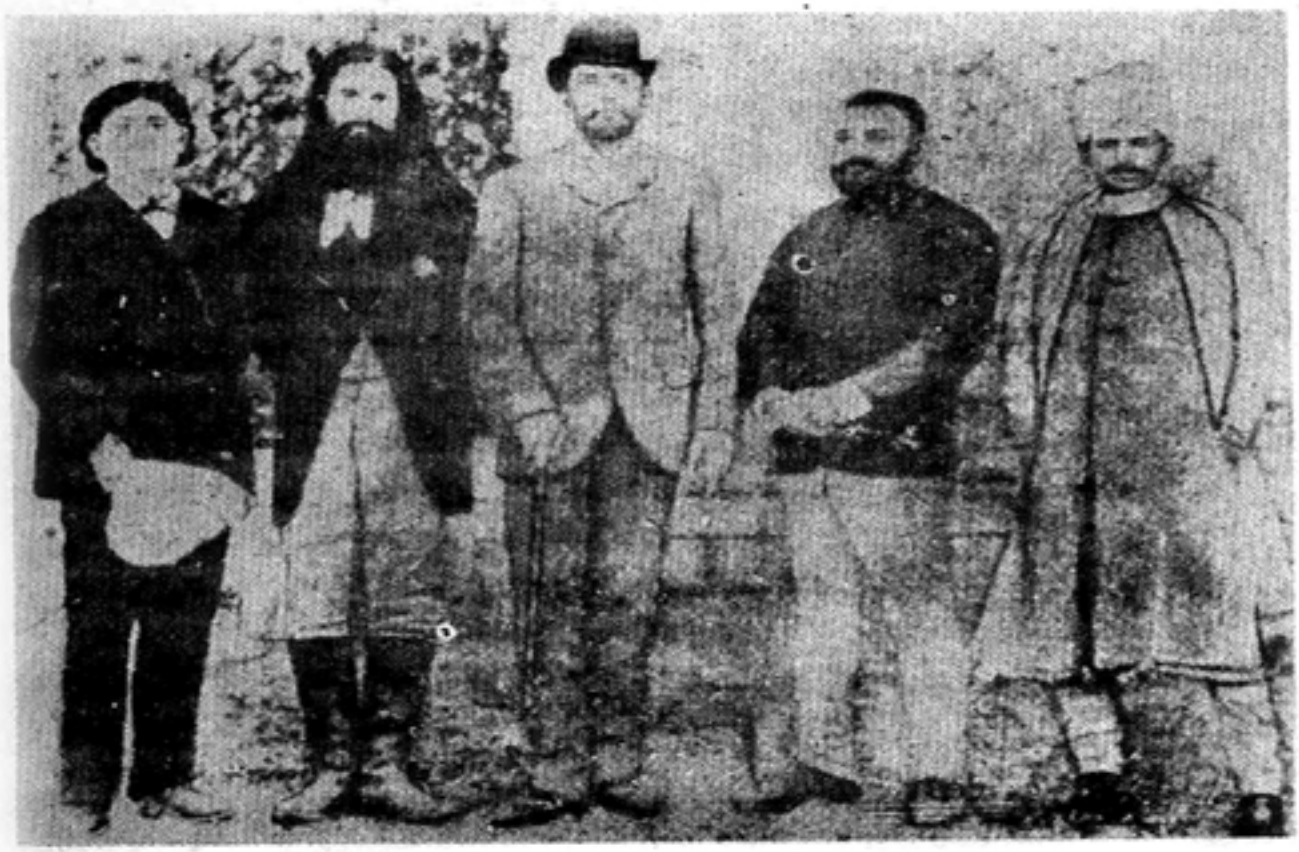

मालवीयजी महाराज काग्रेसके संस्थापक श्री ह्यूम, राजा रामराज सिंहके साथ

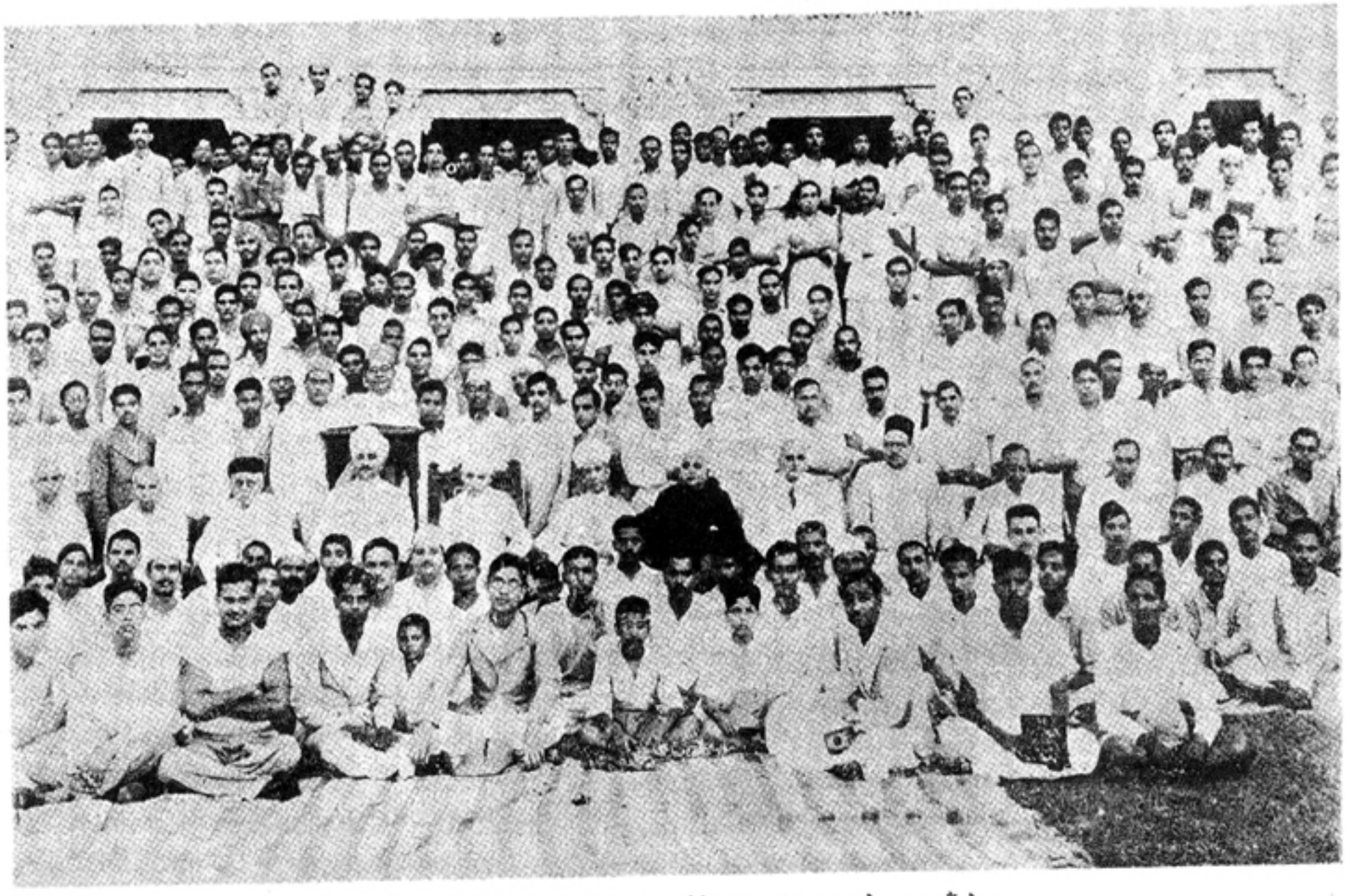

२० [illegible] हिन्दू विश्वविद्यालयके कुलपति रहनेके बाद डा० राधाकृष्णनको पद भार सौंपते हुए।

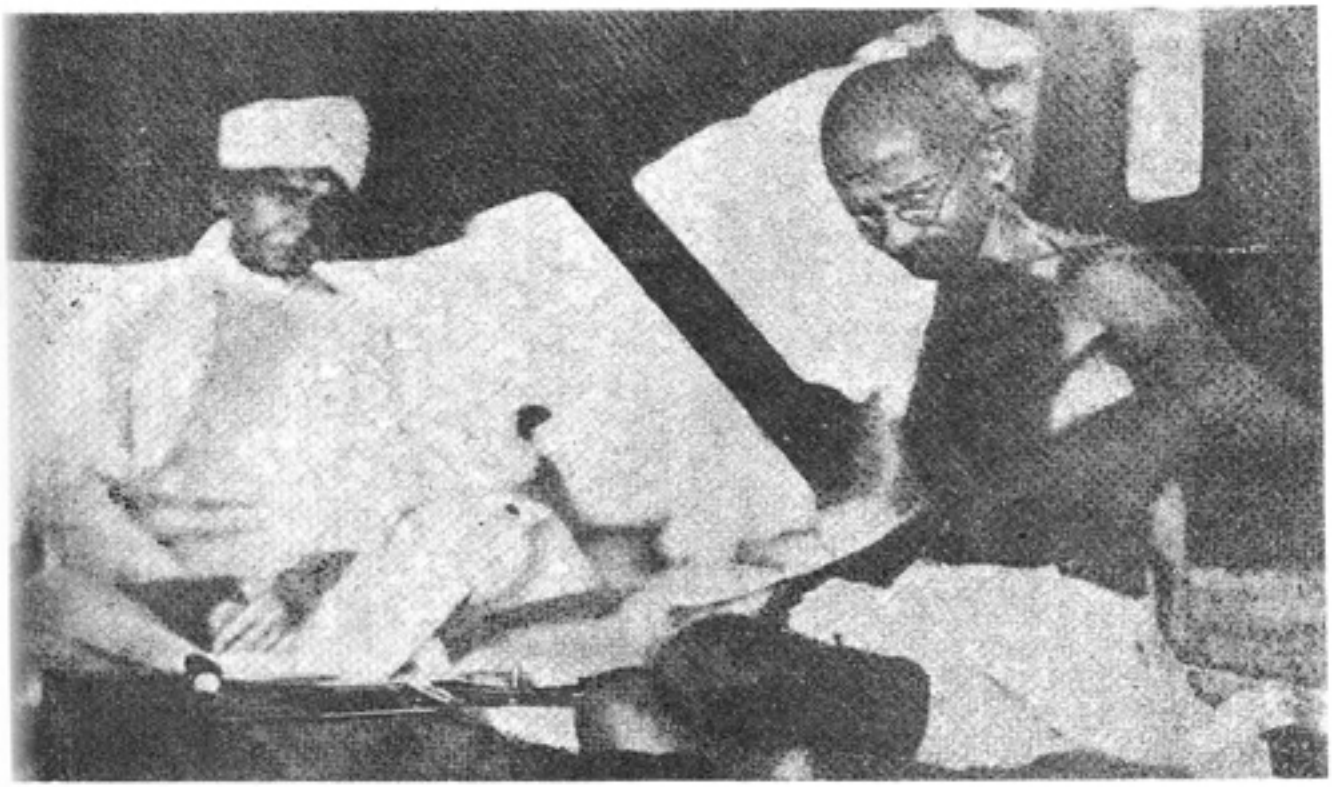

मालवीयजी महाराज महात्मा गांधीके साथ

मालवीयजी सहपाठियोंके साथ

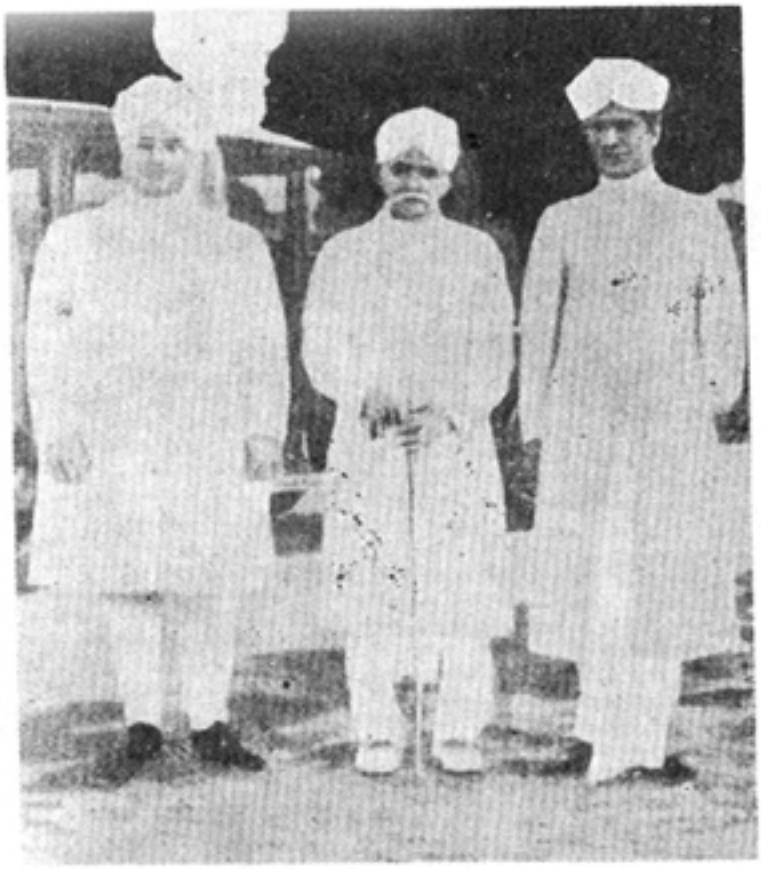

मालवीयजी महाराज महात्मा गांधी तथा श्रीमती सरोजनी नायडूके साथ

मालवीयजी महाराजकी छायामें

अट्ठारह वर्ष

अपनी कहानी

मैं बलिया जनपद निवासी बघैलवंशीय क्षत्रिय कुलका सदस्य हूँ। मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय ठाकुर राजकिशोर सिंह बहुत दिनोंतक क्षत्रिय महासभाके उपदेशक थे। उन दिनों देशमें इस प्रकारकी अनेक जातीय संस्थाएं प्रचलित थीं। बादमें पिताजीसे प्रभावित होकर अमेठीके राजासाहबने अपने यहाँ उन्हें सर्वराहकारके पदपर नियुक्त कर दिया था और वे वर्तमान राजर्षि राजा रणञ्जय सिंहजीके सदा स्नेह भाजन बने रहे।

पिताजीकी इच्छा थी कि मैं संस्कृतका अध्ययन करूँ। उन्होंने मुझे काशीमें नवोदित "नाथ क्षत्रिय ब्रह्मचर्याश्रम" (जिसे इवानजीव बर्माके आयल कम्पनीके अधिष्ठाता रायबरेली निवासी स्वर्गीय बैजनाथ सिंहने स्थापित किया था) में भरती करा दिया था। कुछ वर्षों बाद यह सन्स्था टूटनेके कगार-पर थी। यह समझकर मैं वहाँसे छोड़कर १९१८ में हिन्दू विश्वविद्यालय आ गया तथा मैंने अपना नाम प्राच्यविद्या विभागमें मध्यमा कक्षामें लिखाया। दो वर्ष पूर्व सन् १९१६ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना हो चुकी थी, उसके शिलान्यासकी शोभनीय छविको देखनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। ब्रह्मचर्याश्रमके पाँच और साथी भी आश्रम छोड़कर मेरे साथ ही विद्यालयमें नाम लिखवाया था। विद्यालयसे छात्रवृत्ति न मिलनेपर हमने तत्कालीन विद्यालयाध्यक्ष, महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मासे उसके विषयमें पूछ-ताछ की थी। उन्होंने उत्तर दिया था कि ब्राह्मणेतरोंको छात्रवृत्ति नहीं मिलेगी। अध्यक्ष महोदयके इस उत्तरसे बहुत क्लेश हुआ। मुझे यह मालूम था कि रायबरेली कुर्री सुदौलीके राजा रामपाल सिंहजीसे पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी मैत्री थी। मैंने निश्चय किया कि इस विषयका स्पष्टीकरण मालवीयजी महाराजसे कराना अनिवार्य है।

मैं सुन्दर अक्षरोंमें एक प्रार्थना पत्र लेकर साथियों सहित मालवीयजी महाराजके पास, सेवा-उपवन, नगवा, जहाँ वे उन दिनों निवास करते थे, पहुँचा। हमें पीत परिधानमें दण्ड धारण किये दर-वाजेपर खड़े देखकर उन्होंने पासमें बुला लिया। पूछा, कैसे आये हो ? मैंने साहस बटोरकर काँपते हुए अपना प्रार्थना-पत्र उन्हें समर्पित कर दिया। वे बरामदेमें खड़े-खड़े हमारा प्रार्थना-पत्र पढ़ने लगे और कहा सुन्दर लिखा है। उन्होंने पूछा—"यह सत्य है कि प्रिंसपलने ऐसा कहा है कि ब्राह्मणेतरोंको छात्रवृत्ति नहीं मिलेगी ?" मैंने उत्तर दिया यदि असत्य हो तो हमें विद्यालयसे बहिष्कृत कर दिया जाय। महाराजकी आज्ञा हुई कि "कल इसी समय (शामको ५ बजे) यहाँ आना। मैं प्रिंसिपलको बुलाऊँगा।" दूसरे दिन हमलोग पुनः सेवा उपवन पहुँचे। थोड़ी देर बाद प्रोवाइसचांसलर आचार्य आनन्दशङ्कर बापूभाई ध्रुवके साथ अध्यक्ष शर्माजी भी पहुँचे। उन्हें देखते ही महाराजने रुखाईसे कहा "ये ब्रह्मचारी

छात्रावास पहुँच जाता था। तुरन्त आदमी बुलानेके लिए छात्रावास पहुँच जाता था, इससे महाराजको असुविधा होती थी। महाराजके चतुर्थ पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीयने बतलाया कि तुम्हारे चले जानेपर बाबूजीको असुविधा होती है, वे चाहते हैं कि काम रहे या न रहे, तुम उनके पास बराबर बने रहो। इसलिए बँगलेमें ही हमारे साथ भोजन करो और अभी तुम्हें ४०) देना चाहते हैं। तुम्हें कोई असुविधा तो नहीं होगी ? उन दिनों मैं साहित्याचार्य परीक्षाकी तैयारीमें था।

मैंने उन्हें सूचितकर दिया कि मैं आजसे ही बँगलेमें आ जाता हूँ और आपके साथ भोजन भी किया करूँगा किन्तु महाराजसे वेतन नहीं ले सकूँगा। उस समय मेरे पिताजी अमेठी राज्यके सम्मानित अधिकारी थे। घरपर खेती भी थी। अतः मुझे पैसेकी आवश्यकता नहीं थी, फिर ऋषि-कल्प महाराजसे वेतन प्राप्त करूँ, यह मुझे प्रिय नहीं था।

महाराजके समक्ष पहुँचनेपर उन्होंने कहा कि गोविन्द बतला रहे थे कि तुमने मुझसे वेतन लेनेसे इनकार कर दिया है। विचार तुम्हारा अच्छा है किन्तु अब तुम गृहस्थ हो चुके हो, जीवनमें योग-क्षेमके लिए उसकी आवश्यकता होती है, मुझसे वेतन लेना तुम्हें प्रिय नहीं है, तो मैं कुलपतिकी स्थितिमें कार्यालयके लिए हिन्दी लेखक पदपर नियुक्ति-पत्र दे देता हूँ, इसमें तो तुम्हें आपत्ति नहीं होगी ? इसका उत्तर मैं क्या देता ?

महाराजने तत्क्षण प्रोवाइसचांसलरको ४१ रुपया मासिकपर मेरी नियुक्तिका आदेश अपने हाथसे लिखकर भेज दिया था। यह उस समयकी बात है, जब सेण्ट्रल आफिसके सुपरिण्टेण्डेण्ट वगैरहको ५०) से अधिक वेतन नहीं मिलता था।

कुछ दिनों बाद दिसम्बरमें कलकत्तामें होनेवाले काँग्रेसके अधिवेशनमें जानेकी तैयारी होने लगी; वहाँ पण्डित मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें अधिवेशन होना था। महाराजने मुझे भी तैयार होनेका आदेश दिया और कहा मुझे अधिकतर प्रवासमें ही रहना पड़ता है, मैं चाहता हूँ कि तुम बराबर मेरे पास बने रहो। यद्यपि मेरे साथ रहनेवालोंको तकलीफ ही होती है। सुनकर मैं गद्‌गद् हो गया। किसी महापुरुषके साथ भ्रमण करनेकी मेरी आन्तरिक इच्छा बिना प्रयास पूरी हो गयी।

महाराज वृद्ध और मैं युवा बिना काम उनके पास ही रहा करूँ, यह बात आगे चलकर स्पष्ट हो गयी। जब महात्मा गाँधी महाराजजीसे मिलने आये थे, मुझे उन्होंने भी यही हिदायत दी कि भाई साहबको कभी अकेले नहीं रखना। कुछ दिनों पूर्व शुद्धिकार्यके प्रवर्तक स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय, राजा सर रामपाल सिंह और महाराज थे, जिनमें स्वामी श्रद्धानन्दको गोली मारी गयी थी अतः सतर्कता अनिवार्य थी।

कलकत्ता जानेके दो दिन पूर्व गाँवसे आदमी समाचार लाया कि मेरी माताजी मरणासन्न हैं, उनके अन्तिम दर्शनके लिए मेरी बुलाहट है। सुनकर मैं उद्विग्न हो गया, किंकर्तव्य विमूढ़। एक तरफ माताका वियोग, दूसरी ओर कलकत्ता यात्राकी अभिलाषाकी समाप्ति होने लगी। महाराज मुझे उदास तथा नेत्रोंमें अश्रु देखकर चिन्तित हो कहने लगे, तुम इतने उदास और रो क्यों रहे हो। किसीने तुम्हें कुछ कहा तो नहीं, साफ बतलाओ। मैंने भरे गलेसे माताजीकी अवस्थाका वर्णनकर दिया।

कुछ क्षण मौन होकर महाराजने कहा—"देखो मातासे कोई उऋण नहीं हो सकता, तुम सब काम छोड़कर गाँव जाकर प्रसन्नता पूर्वक माताका दर्शन करो, उन्हें कुछ नहीं होगा, वे जल्दी स्वस्थ हो जायेंगी। उदास मत होना ३-४ दिन गाँव रहकर सीधे कलकत्ता पहुँच जाना।"

है," बिरला छात्रवृत्ति पानेके सर्वथा अधिकारी हैं और आपने इन्हें छात्रवृत्ति देनेसे इनकार कर दिया है। क्या यह बतलानेकी आवश्यकता है कि यह विश्वविद्यालय हिन्दूमात्रके लिए है और यहाँ सबको समान सुविधा मिलेगी ?

प्रिंसिपल महोदयने अंग्रेजीमें उत्तर दिया था, जो हमारी समझके बाहर था। शायद हमारी शिकायतकी गयी थी कि ये ब्रह्मचर्याश्रमसे बिना अनुमति प्राप्त किये भाग आये हैं। अन्तमें महाराजकी आज्ञा हुई कि "जाओ तुम्हें छात्रवृत्ति अवश्य मिलेगी—मन लगाकर पढ़ना और कोई कष्ट हो तो बतलाना।" यह व्यक्त करना कठिन है कि देशके एक सर्वमान्य विभूतिके स्नेहयुक्त शब्दोंमें मिला आश्वासन हमारे दुर्बल मनपर कितने बलका सञ्चार हुआ और निर्भयता आयी।

इस प्रकार मालवीयजी महाराजका प्रथम दर्शन काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके प्राच्यविद्या विद्यालयके अध्यक्ष महोदयके विरुद्ध अभियोग पत्रके साथ हुआ था।

रुइया छात्रावासके जिस कमरेमें हमारा निवास था, उसके ठीक सामने एक कुआँ और शिवजी-का मन्दिर है, जहाँ हमलोग दण्ड धारण किये—पीत परिधानमें बैठकर सन्ध्या करते थे। मालवीयजी महाराज जब काशीमें अपने बँगले, मालवीय भवनमें रहते थे, तब प्रातःकाल टहलने उसी रास्तेसे होकर आगेके छात्रावासोंका निरीक्षण करने जाते थे। कभी-कभी हमारी कोठरीमें पधार लोह कुर्सीपर बैठकर हमें उपदेश भी दिया करते थे।

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हं सदा भव॥
धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनश्च महदस्तुते॥
विद्यया वपुण, वाचा वस्त्रेण विभवेन च।
वकारैः पंचभिर्युक्तं नरः प्राप्नोति गौरवम्॥ आदि

हमरी कोठरीका नाम उन्होंने 'ठाकुरबाड़ी' रख दिया था। सन् १९२८ में मालवीयजी महाराजको एक संस्कृतज्ञकी आवश्यकता थी, जो सदाचार सम्पन्न हो तथा शुद्ध सिखनेमें अभ्यस्त हो। छात्रावासके संरक्षक पण्डित वामदेव मिश्र मुझे लेकर महाराजके पास पहुँचे और बतलाया कि इन्हें आपकी सेवाके लिए हम सब लोग उपयुक्त समझते हैं। ये बलिया जिलेके निवासी हैं हम लोग इन्हें साधु कहकर सम्बोधित करते हैं। इसपर—महाराजने कहा—

"बलियावाले बुद्धिमान होते हैं, इन्हें तो मैं जानता हूँ। यह ब्रह्मचारी सुन्दर लिखते हैं।" (बलियावाले बुद्धिमान होते हैं, इसका आशय सम्भवतः यह रहा होगा कि प्रारम्भिक दिनोंमें बलिया निवासी प्रकाण्ड विद्वान् पण्डित काशीनाथजीको महाराज गुरु मानते थे। विश्वख्याति डा० गणेशप्रसाद आर्ट्स कालेजके प्रिंसिपल पदपर प्रतिष्ठित थे। पण्डित बलदेव उपाध्याय, इन्द्रदेव तिवारी, पण्डित अम्बिका-प्रसाद उपाध्याय, श्री विद्याप्रसाद पाण्डेय, प्रोफेसर वेनीमाधव सिंह आदिकी नियुक्ति विभिन्न विभागोंमें हो चुकी थी। राजनीतिमें चित्तू पाण्डेय, विधिवेत्ता ए० पी० पाण्डेय उनकी निगाहमें थे) यह कम आश्चर्य नहीं था कि १० वर्ष पूर्व मेरे प्रार्थना-पत्रकी लिखावटें अबतक उनके मस्तिष्कमें नाच रही थीं।

मैंने निवेदन किया कि अब मैं ब्रह्मचारी नहीं, गृहस्थ हो गया हूँ, सन्तान भी है। महाराजने पारिवारिक परिचय प्राप्तकर आदेश दिया इसी समयसे हमारा काम संभाल लो। यद्यपि हमारे साथ रहनेवालोंको तकलीफ होती है। मैंने उसी दिनसे कार्य आरम्भकर दिया था और मौका पाते ही अपने

जिसमें मेरी शिकायत की गयी थी। उन्होंने पूछा क्या सुना रहे हो, मैंने बतलाया आपके नाम पत्र आया है वही सुना रहा हूँ। पूछा—किसने भेजा है ? मैंने बताया कि पत्रमें नाम नहीं दिया है। कुछ झिझककर उन्होंने कहा—"क्यों समय बरबाद कर रहे हो" जिस व्यक्तिमें इतना भी साहस नहीं है कि वह अपना नाम भी प्रकट न कर सके, उसके लिए समय नष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है। देखो, मेरे पास रहनेसे स्वभावतः तुमसे लोगोंकी ईर्ष्या हो सकती है किन्तु तुम्हें न तो किसीसे दुश्मनीका भाव और न किसीसे प्रगाढ़ मैत्रीका भाव रखना चाहिये।

यदीच्छसि वशी कर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवाद शस्येभ्यो चरन्तीं गां निवारयः॥

मैं महाराजसे कोई भी बात तिरोहित नहीं रखता था और न तो किसीको मिलनेमें बाधा डालता था। उनकी अस्वस्थतापर डाक्टरोंके हिदायतके अनुसार अवश्य कड़ा रुख अपनाना पड़ता था और महाराजके न माननेपर उनसे भी कठोरता कर बैठता था।

सन् १९४० की बात है। लाहौरसे प्रकाशित होनेवाला 'विश्व बन्धु' समाचार पत्रके सम्पादक माधवजी पंजाबकी समस्या लेकर महाराजसे मिलने आये थे। मैंने माधवजीको सतर्क कर दिया था कि महाराजसे मिलनेका समय केवल मध्याह्नोत्तर ३ से ५ बजेतक ही डाक्टरोंने बतलाया है किन्तु पाँच बजे यदि आपकी बात समाप्त न हो तो तुरत उठ जाइयेगा, मुझे कहना न पड़े। पाँच बजे उन्हें भ्रमणके लिए बाहर ले जाना है। यदि इसके अन्दर बातें समाप्त न हों, तो दूसरे दिन भी या तीसरे दिन जारी रक्खें किन्तु आप पाँच बजे उठ जाइयेगा।

पंजाबकी समस्याको महाराज बड़े मनोयोगसे सुन रहे थे। पाँच बजे मोटर लग गयी। माधवजी नहीं उठे। मैं दूसरे रास्तेसे महाराजकी पीठकी ओर जाकर कहा—माधवजी, मैंने आपसे कुछ निवेदन किया था। महाराजने कहा ठहरो—मैंने कहा हर्गिज नहीं! अब आपको बाहर चलना ही है, गाड़ी लगी है। बातें कल भी हो सकती हैं—माधवजी आप कृपाकर कल ३ से ५ बजेतक पुनः अपनी बातें सुनाइयेगा।

महाराज कहने लगे—माधवजी इनको क्षमा कीजियेगा। ये कुछ उग्र स्वभावके हैं। डाक्टरोंकी हिदायतसे और भी उग्र हो जाते हैं। किन्तु मेरे स्वास्थ्यके कारण। ऐसी सख्ती तो जेलवालोंने भी नहीं की थी।

बात सन् १९३९ की है। महाराज उन दिनों कलकत्ता बिरला पार्क-बालीगंजमें निवास करते थे। एक दिन प्रातः पाँच बजे धुँधलकेमें दरवानने मुझे जगाकर सूचित किया कि आपको नीचे एक सज्जन बुला रहे हैं। मैं आँख मलते-मलते नीचे आकर बिना देखे ही आगन्तुकसे कह दिया कि महाराज अभी सो रहे हैं, कुछ समय प्रतीक्षा कीजिये। इतना सुनने ही आगन्तुकने कहा—"अच्छा, भविष्यमें यदि प्रारब्धमें होगा, तभी दर्शन प्राप्त हो सकेगा" कहकर द्रुतगतिसे बाहर चले गये। तबतक मैं समझ गया कि ये तो सुभाषचन्द्र बोस हैं। पुकारकर उन्हें रोक नहीं सकता था यह मालूम था कि वे 'नजरबन्द' हैं। मुझे पश्चात्ताप हुआ। महाराजसे कहा बाबूजी आज मुझसे नैतिक अपराध हो गया। सुभाष बाबू आये थे, सुनकर महाराज बेचैन हो गये। दूसरे दिन प्रातः समाचार पत्रोंमें उनके फरार हो जानेकी बात प्रकाशित हो गयी।

यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है कि माताजीकी मरणासन्न अवस्थाकी सूचनापर भी जिस दृढ़ता और निश्चयात्मक विश्वासके साथ उनके स्वस्थ होनेका आशीर्वाद महाराजने दिया था, निश्चय ही उनके दिव्य जीवन ज्योतिका प्रकाश था। वह केवल मुझे प्रबोधन देनेकी बात नहीं थी।

रातकी गाड़ीसे रवाना होकर प्रातः काल ७ बजे गाँव पहुँच गया। घरवालोंको प्रसन्न मुद्रामें देखा, बतलाया गया कि रातसे माँकी दशामें कुछ परिवर्तन हो रहा है। जमीनसे चारपाईपर कर दी गयी हैं। अङ्ग-स्फुरण भी होने लगा है। सम्भवत. जिस समय महाराजके श्रीमुखसे स्वस्थताका आशीर्वाद मिला था, उसी समयसे उनके स्वास्थ्यमें सुधार होना प्रारम्भ हुआ था। मुझे देखकर माँने इशारेसे बैठ जानेका सङ्केत किया और अँगुली हिलाकर मुझे यह आश्वस्त किया कि अब नहीं मरूँगी। माँको भी देवीका इष्ट था। उन्हें पथ्य दिलाकर चौथे दिन मैंने कलकत्ताके लिए प्रस्थान किया और सम्मेलनमें शामिल हुआ। कलकत्ता काँग्रेसके बाद दक्षिण-भारत यात्राका कार्यक्रम बना। हमलोग काशीमें एक सप्ताह व्यतीत कर प्रयाग पहुँचे।

महाराजके टाइपिस्ट प्रतापगढ़ निवासी लालताप्रसादजीने मुझे कार्यालयसम्बन्धी बातें समझा दी थीं। वे अत्यन्त क्रोधी थे किन्तु मुझसे प्रसन्न रहते थे। जब उग्र क्रोध हो जाता था, तब त्याग-पत्र देकर ही उन्हें शान्ति मिलती थी। वे तीन-चार दिन गाँवमें रहकर पुनः आकर काममें लग जाते थे। अन्तिम बार जानेके बाद उनकी बीमारीका पता मिलनेपर प्रतिमास २५) दवाके लिए महाराज भेजवाते रहे। कुछ दिन बाद उनका देहान्त हो गया। अब मुझे ही अकेले सब काम सँभालना पड़ता था।

यह संयोग ही कहा जायेगा कि मैं भी उग्र और क्रोधी स्वभावका था और महाराज इतने गम्भीर और शान्त, वे अपने शान्त स्वभावके कारण ही मेरी उदण्डता पी जाते थे।

दक्षिण भारतकी यात्रामें स्वराज्य, हिन्दू सभा, हिन्दू विश्वविद्यालय, अछूतोद्धार, मन्त्रदीक्षा तथा अपने उठाये समस्त कार्योंका प्रचार तथा जनताको उद्‌बुद्ध करना था।

प्रयाग पहुँचकर महाराजने घरवालोंको सावधान किया कि मेरे साथ बनारसके एक ठाकुर साहब हैं। जबतक यहाँ रहना है प्रातःकाल उनके लिए पान लगवाकर दोनेमें उनके टेबुलपर रख दिया जाय। यह व्यवहार केवल मेरे ही लिये नहीं था, बल्कि वे सबकी रुचिके अनुसार व्यवस्था कराते रहते थे। अपने साथ ही मुझे भी भोजनपर बुला लेते थे। कहते थे कि भोजन समयपर ही होना चाहिए। काम तो होता ही रहेगा।

"काले हितं मितं सत्यं संवादि मधुरं वदेत्।
भुंजीय मधुर प्रायं काले पथ्यं हितं मितम्॥

अतिथिके साथ ऐसा व्यवहार तो उचित ही है, अपने साधारण कर्मचारीके प्रति ऐसा व्यवहार महाराज जैसे निर्मल हृदयसे ही सम्भव था। मानों मैं उनका पार्श्ववर्ती नहीं बल्कि उनका मित्र था। महाराजके पास मैं प्रातःकाल पहुँच जाता था और रात्रिको उनके शयन करनेके बाद ही उनसे अलग होता था। परिणामतः सङ्कोच जाता रहा। उनके पास भक्तगण माला, फल, मिठाई आदि लाते थे। माला उनके गलेसे उतारकर मैं पहन लेता था। फल, मिठाई उपस्थित जनोंमें बाँटकर उनके समक्ष ही मैं भी उदरस्थ कर लेता था। इससे उन्हें सुख मिलता था।

महाराजजीके नाम, जो पत्र आते थे उसे मैं खोलकर उन्हें सुना दिया करता था, वे यथावसर पत्रोंका उत्तर लिखा देते थे या उत्तर दे देनेके लिए आदेश कर देते थे। एक बार एक पत्र पढ़ने लगा,

मैं हस्ताक्षर करानेकी चिन्तामें था। महाराज प्रेमसे वैद्यजीका भाषण सुन रहे थे—वैद्यजी बहुत ऊँचा सुनते थे। मैंने महाराजसे कहा—आप एक मिनटमें वैद्यजीसे यह नहीं कह सकते कि कलके समारोहमें इसका अवसर नहीं होगा। इतनी डिग्रियाँ पड़ी हैं कब आप हस्ताक्षर करेंगे। कब रजिस्ट्रारको भेजी जायेंगी। आप प्रेमसे अप्रासंगिक बातको सुन रहे हैं।

वैद्यजीने समझा मैंने उनकी शिकायत की है, बहुत जोरसे चिल्ला पड़े। हट्ट चापलूस कहींका सुनते ही मैंने सब डिग्रियाँ उठाकर पटक दिया और बगलके कमरेमें चला गया।

तब महाराजका ध्यान आकृष्ट हुआ। महाराजने वैद्यजीसे कहा आपसे अक्षन्तव्य अपराध हो गया। उस व्यक्तिको चापलूस कह दिया। चापलूसमें यह हिम्मत नहीं होती कि अपने अधिकारीके समक्ष ऐसा प्रदर्शन कर सके। उसने ठीक ही कहा है कि मुझे यह कह देना चाहिये था कि कलके समारोहमें आपकी बातोंके कहनेका अवसर नहीं है। आप जाकर उससे क्षमा माँगे।

वैद्यजीने मुझसे क्षमा माँगी। मैं हस्ताक्षर कराने लगा और अपनी की गयी अभद्रतासे मेरे शरीरमें कम्पन हो रहा था। मैंने कहा बाबूजी क्षमा करेंगे। बहुत क्रोध आ गया था, उन्होंने कहा "तुमने कोई गलती तो की नहीं—ठीक ही कहा था। एक मिनट मैं उन्हें कह सकता था। हाँ इतना क्रोध न करते तो अच्छा ही था।"

मेरी उद्दण्डतापर महाराजका कृत्रिम कोप

सन् १९३२ में अखिल भारतीय सनातम धर्म महासभाका अधिवेशन महाराजकी अध्यक्षतामें हरिद्वारमें हो रहा था। टेहरी राज्यके नरेश स्वागताध्यक्ष थे। एक वक्ताके भाषणके बीच वर्णाश्रम स्वराज्य संघके जुलूसके साथ जगद्गुरु शङ्कराचार्य भारतीय तीर्थजी ताम-झामके साथ अपने दलके साथ सभामें प्रविष्ट हो गये। पूर्व वक्ताने अपना भाषण समाप्त कर दिया।

महाराजने कहा—"अब मैं स्वामी शङ्कराचार्यसे निवेदन करता हूँ कि वे अपना वक्तव्य सुनावें।" इस पर स्वामी शङ्कराचार्य गरज पड़े "मैं जद्गुरु शङ्कराचार्य मुझे जगतीतल में कौन आदेश कर सकता है? महाराजने कहा –"मैं इस महासभाका अध्यक्ष हूँ। अध्यक्ष किसी भी वक्ताको आदेश कर सकता है, तथापि मैंने आपसे निवेदन किया है। इसपर सभामें उनके दलवालोंने मञ्चपर चढ़कर उपद्रव करना चाहा। भीड़में एक व्यक्तिने महाराजको अपशब्दका प्रयोग किया। मैं उसके बगलमें ही खड़ा था। अपने ठेहुनेसे उसके पेटमें प्रहार कर दिया और दूसरी तरफ हो गया।

वह व्यक्ति बड़े जोरसे चिल्लाया। मालवीय देखो, तुम्हारा आदमी मुझे मार रहा है। बगलमें तैनात महावीर दलवाले बोल उठे—झूठ बोलता है। वह तो यहाँ खड़े हैं तथापि महाराजने मुझे बिगड़कर जोरसे कहा "तुम यहाँसे चले जाओ।" मैं अपने साथी त्रिलोचन पन्तको सावधान कर सभा-स्थल त्यागकर अपने खेमेंमें चला गया और बनावटी रूपसे बनारस आनेकी तैयारी करने लगा। कुछ देर बाद सभा समाप्तिपर अपने खेमेंमें मेरी खोज करने लगे—पन्तजीने मुझे आवाज दी। बाबूजी बुला रहे हैं। मैंने कहा मुझे फुरसत नहीं है। अपना सामान बाँधनेमें लगा हूँ। बनारसकी गाड़ी सात बजे छूटती है। आदेशानुसार मुझे चला जाना है। यह सब महाराज सुन रहे थे। महाराजने कहा—तुम्हें फुरसत नहीं है तो मैं ही आ जाता हूँ। यह सुनकर मैं उदासीनताका स्वाँग बनाये उनके सामने आया। वे कहने लगे—"तुम बहुत नाराज हो गये? उस भरी सभामें चिल्लाकर हमारे व्यक्ति-

होकर काममें मन लगाओ—चिन्ता मत करो, तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी।"

मेरी पत्नी पूर्णतः पागल हो चुकी थीं। अन्ततः १९४३ में उसके निधनके बाद महाराजकी आज्ञानुसार उस सतीकी आत्माकी शान्तिके लिए बाध्य होकर दूसरी शादी करनी पड़ी, दूसरी पत्नीसे दो पुत्र चि० ब्रजेश और अशोक कुमार तथा चार कन्याएँ हुईं। सभी विवाहित और सन्तानवाले हो चुके हैं।

ऐसो को उदार जग माहीं।

मैं नहीं जानता कि मेरे किन गुणोंसे प्रभावित होकर महाराज मेरा इतना विश्वास करते थे और मेरी रिपोर्टको ही सत्य मानते थे। किन्तु अपने कर्णगोचर दो घटनाओंने मुझे सदा सतर्क कर दिया था।

पहली घटना यह थी कि विश्वविद्यालयके एक विभागके दो प्रोफेसरोंमें विवाद था। इस सम्बन्धमें महाराजके पुत्र गोविन्दजीने उन्हें कुछ बतलाया था। टहलनेके लिए जाते समय रास्तेमें महाराजने कुछ दूर जानेपर मुझसे कहा—गाड़ी घर ले चलो, मैंने समझा शायद लघुशङ्का करनी हो। घर पहुँचकर उन्होंने जोरोंसे आवाज दी—गोविन्द-गोविन्द हाँ बाबूजी, तुमने झूठी रिपोर्ट क्यों दी? नहीं बाबूजी—चुप रहो, छी-छी तुमसे मुझे ऐसी आशा नहीं थी। शिवधनी सिंहकी रिपोर्ट गलत नहीं हो सकती। वह झूठ नहीं बोल सकता।

दूसरी बात उस समयकी है। जब प्रेसिडेण्ट वी० जे० पटेलके प्रयाससे वायसराय और महात्मा गाँधीके मिलनेकी पार्टी वायसराय द्वारा दी गयी थी। महाराजको भी निमन्त्रण मिला था किन्तु पार्टीके दिनतक महाराजका कोई उत्तर न मिलनेपर वायसरायके सचिवने प्रातःकाल फोन किया कि आपकी सूचना प्राप्त नहीं हुई। निमन्त्रण-पत्रकी बात किसीको मालूम नहीं थी। महाराजने कहा। हमें आपका निमन्त्रण-पत्र नहीं मिला है, सचिवने कहा निमन्त्रण-पत्र किसी सिंहने प्राप्त किया है। महाराजने उत्तर दिया था मेरे पास एक ही सिंह है और सदा सतर्क तथा झूठ नहीं बोलने वाला है।

नीचे लिखे पत्रसे इन बातोंकी पुष्टि होती है, जिसे रायबहादुर प्रो० के० वी० रङ्गास्वामी ऐयङ्गारने लिखा था—

".....His Knowledge of English and alert mind made him an efficient personal Assistant to the Venerable Vicc-Chancellor, who utilised him in matters requiring judgement and resores.....'

मेरे पिताजी को एक बार गोण्डा—मनिकापुर स्टेटमें भयंकर लू लगी जिससे वे बेहोश हो गये। उनकी अवचेतनाका तार पाकर मैं सपरिवार वहीं चला गया और वहाँसे कोई समाचार न भेजनेसे महाराजको चिन्ता हुई। उन्होंने तार दिया How is yours father Hope nothing serious, Malaviya. तार पानेके बाद महाराजके आशीर्वादसे लाभ हुआ।

विश्वविद्यालयमें एक वर्ष प्रायः सात सौ स्नातकों तथा छः भारतीय नरेशोंको सम्मानित उपाधि प्रदान करना था। उपाधि-पत्रपर कुलपतिकी स्थितिमें महाराजका हस्ताक्षर होना था। कल दो बजे उपाधि वितरणोत्सव था। आज नौ बजे रात्रिको पण्डित चन्द्रशेखर धर मिश्र महाराजसे मिलने आये और महाराजसे आग्रह करने लगे कि कलके समारोहमें अपनी आविष्कृत 'उदुम्बर सार'के सम्बन्धमें नरेशोंको प्रभावित करें कि अपने राज्यमें इसका उपयोग करावें। प्राणियोंको लाभ होगा।

कम अन्तर होता था। महाराजके नामका खाता कई बैंकोंमें था। उनके हाथ काँपने पर दस्तखत न मिलनेसे प्रायः चेक डिसआनर हो जाते थे। उन्होंने कहा था कि सब एकाउण्टको एक जगह करके अपना नाम देकर ज्वाइण्ट एकाउण्ट खोल दो, जिससे यह झञ्झट समाप्त हो जाय।

इसपर मैंने आपत्ति की थी। बाबूजी ऐसी आज्ञा कृपाकर न दें। यदि ज्वाइण्ट एकाउण्ट कराना हो तो अपने पौत्र श्री श्रीधर मालवीयका नाम यदि कहें तो दे दूँ। उन्होंने कहा--कहाँ-कहाँ उनसे हस्ताक्षर कराते रहोगे, तब रहने दो। जैसा चलता है, चलने दो।

मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र

सन् १९२९ में महाराज जब केन्द्रीय कारागारमें बन्दी थे, उस समय कुछ व्यक्तियोंने मेरे विरुद्ध ऐसा घृणित आरोप किया था, जिसमें मैं उनकी दृष्टिमें घृणित समझा जाऊँ। उस आरोपसे मुझे मर्मान्तिक पीड़ा पहुँची, कि कर्तव्य विमूढ़ हो गया। मैं किस प्रकार सफाई दूँ। इस चिन्तामें था। भाग जानेपर आरोपको पुष्टि होगी–क्या करूँ ?

मुझे किसी भी समय जेलमें महाराजसे मिलनेकी सुविधा प्राप्त थी। मैंने जेलमें जाकर उनका दर्शन किया। विश्वविद्यालयके गतिविधिकी चार्चा की और अन्तमें ये निवेदन किया कि इस समय वहाँ मेरी कोई उपयोगिता नहीं है, जेलसे मुक्त होनेपर जब आप आवश्यक समझें, मुझे बुलवा लें। मैं गाँव चला जाना चाहता हूँ। यह सुनकर उनके नेत्र बन्द हो गये। कुछ क्षण बाद उन्होंने कहा—तुम ऐसा क्यों कह रहे हो, मैं समझ गया हूँ। तुम्हारे ऊपर जिन लोगोंने आरोप लगाया है, वे मुक्त होंगे—चिन्ता मत करो। घरके एक व्यक्तिके कुछ दिन बाहर रहनेपर जिसपर कुछ दायित्व है, घर छोड़कर भाग नहीं जाना चाहिये। सुनकर मैं स्तब्ध हो गया। तबतक जेलमें उनसे किसीकी मुलाकात नहीं हो सकी थी। कैसे उन्होंने इतनी बात कह दी यदि किसी प्रकार बात मालूम भी हुई थी तो ऐसे घृणित आरोपपर भी उनकी दृष्टिमें मैं पतित नहीं हुआ ? यह उनके अन्तर्यामित्वका उज्ज्वल प्रमाण है।

हरिद्वार पुस्तकालयका उद्घाटन

मालवीयजी महाराजने अधिवक्ताकी स्थितिमें विवादास्पद प्रसिद्ध श्रवणनाथ मठके मामलेमें विजय दिलायी थी। तत्कालीन महन्त शान्तानन्द नाथने एक बृहद् पुस्तकालयका निर्माण कराया था। उनकी प्रबल इच्छा थी कि उसका उद्घाटन ऋषिकल्प मालवीयजी महाराजके ही द्वारा होना चाहिये अन्यथा किसीसे भी उद्घाटन नहीं कराया जायगा। उन्होंने महाराजको अपनी जिज्ञासापूर्तिके लिए पत्र भेजा था। महाराजको उधर जानेका कोई प्रश्न नहीं था। अनिच्छापूर्वक कहा कि भविष्यमें जब कभी उधर आना होगा, उद्घाटन कर देंगे।

कुछ दिनों बाद महाराजको अपनी पौत्री पण्डित रमाकान्तजीकी पुत्री श्रीमती हेमके विवाहमें जो श्री श्रीनिवास शर्मा (अब अवकाश प्राप्त शिक्षा निदेशक) से हुआ था, प्रयागमें थे। वहाँसे कुछ मास कलकत्तामें व्यतीत करनेका प्रोग्राम था। किन्तु प्रयागमें मेरे एक भयानक रोग उत्पन्न होनेके कारण यद्यपि उसका शमन हो गया था तथापि महाराजका कहना था कि कुछ दिन ठण्डे प्रदेशमें निवास आवश्यक है। अतः देहरादून चलनेका प्रबन्ध करो।

देहरादूनकी यात्रामें महाराजके साथ सेकेण्ड क्लासमें बाबा राघवदास तथा गोस्वामी गणेश-

पर आरोप लगाया था तो अपने आदमीके आरोपपर उस जनसमूहके सान्त्वनाके लिए अपने ही व्यक्तिको तो डाँट-डपट कर सकता था।"

मैंने महाराजसे कहा कि उसने अभद्रताका व्यवहार किया था वह मुझे सह्य नहीं था तथापि आपके भयसे कुछ कर नहीं सका। मेरा क्रोध इतना था कि अभी उसे काटकर इसी गङ्गाकी धारामें प्रवाहित कर दूँ किन्तु आपके भयसे दब गया। आप सब जगह दबा देते हैं।

महाराजाने कहा कि तुमने अच्छा किया जो बर्दाश्त कर लिया। कुछ हो जानेसे हमारी ही बदनामी होती। बर्दाश्त कर लेनेमें बड़ा गुण होता है, फिर भी तुमने उसे सजा तो दे ही दी थी।"

"आओ शान्ति पर्व सुनाओ। बनारस जानेका काम नहीं है।" यानी महावीर दलकी गवाही बेकार थी कि हमने कुछ नहीं किया था—दूर खड़ा था।

हस्ताक्षरका उपयोग

प्रयागमें कुम्भके अवसरपर महाराजने रुद्रमहायज्ञ पुराणोंके पाठ, कथा-कीर्तन तथा विद्वत्सम्मेलनकी बृहत् योजना की थी। पूरे एक मासका कार्यक्रम था। प्रेसीडेण्ट पटेलके आग्रहपर महाराजको एसेम्बलीकी बैठकमें भाग लेना अनिवार्य था। भगत सिंहके बम विस्फोटके परिणामस्वरूप एसेम्बली भवनमें बिना अनुमति पुलिस प्रवेशकर गयी थी, जिसका विरोध पटेल साहब कर रहे थे। बृहत् कार्यको सफल बनानेके लिए प्रचुर धनकी आवश्यकता थी। इसके लिए महाराजने अपने परिचित नरेशों तालुकेदारों और धनिकोंकी सूची तैयार करा दी थी। अंग्रेजी-हिन्दी पत्रोंका नमूना बताकर सब पत्रोंपर अपना हस्ताक्षर (महाराजका) बना देनेका आदेश दे दिल्ली चले गये थे।

निजी रूपमें सैकड़ों पत्र भेजने थे, अलग-अलग टाइप अलग-अलग लिखना था। अंग्रेजी पत्र टाइप कर और हिन्दी पत्र लिखकर महाराजका हस्ताक्षर बनाकर पोस्ट करवा देता था। महाराज प्रति शनिवारको प्रयाग आते थे और प्रबन्ध व्यवस्था देखकर आवश्यक निर्देश दे दिया करते थे। एक दिन जब महाराज प्रयाग गये तो उनके साथ उनके पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीय और पण्डित गोविन्द मालवीय भी कैम्पमें पहुँचे। वे कार्यालयमें पत्रोंपर महाराजका हस्ताक्षर बनाते देखकर पूछा—यह क्या कर रहो हो। महाराजके आदेशका पालन। क्या बाबूजीने तुम्हें ऐसा करनेका आदेश दिया है? मैंने कहा कि बेहतर है, आप उन्हींसे ये सब प्रश्न करें।

पिता-पुत्रोंमें इस विषयपर जोरदार बहस छिड़ गयी। गोविन्दजीकी आपत्ति थी कि अवैधानिक है और आपको ऐसी आज्ञा नहीं देनी चाहिये। इसका दुरुपयोग भी हो सकता है। महाराजका कहना था कि इस विषयमें उच्चन्यायालयने व्यवस्था दे दी है कि हस्ताक्षरकर्ताके इनकार करनेपर ही वह अवैधाधिक माना जा सकता हैं और मुझे स्वीकार है कि वे मेरे ही हस्ताक्षर हैं। रह गयी दुरुपयोगकी बात—सो वह सब तो व्यक्तिपर निर्भर करता है और व्यक्तिका विचारकर ही मैंने यह अधिकार दिया है। इसमें तुम लोगोंके बहसकी आवश्यकता नहीं है और न ही उसका कोई प्रयोजन है।

उन पत्रोंसे लगभग ५० हजार रुपये मनीआर्डर या चेकसे प्राप्त हुए थे। मालूम था कि हिन्दीवाले हस्ताक्षरमें कोई अन्तर नहीं था, महाराज स्वयं भ्रममें हो जाते थे—अंग्रेजीवाले हस्ताक्षरमें बहुत

उन्होंने कहलाया आज थक गया हूँ। चूर-चूर हो गया हूँ। किसीसे आज न मिलता तो अच्छा होता। कहा गया कि आप विश्राम करें। मिलनेवालोंको समझा दिया जायगा। उन्होंने कहा—कैसे समझाओगे—इतने दूरसे लोग आवेंगे बिना मिले वापस जाना उन्हें अखरेगा। बताया कि सब हो जायगा। आप चिन्ता न करें। उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। तब फिर कहा बहुत पोलाइटली—नम्रतासे कहना—आश्वस्त होनेपर ही भीतर गये।

कुछ क्षणोपरान्त संस्कृत महाविद्यालयके एक विभागाध्यक्ष खटनहीं पहने मुझे फाटकपर दिखलायी पड़े। आगे बढ़कर मैंने सादर निवेदन किया कि आज कृपाकर क्षमा करें। वे बढ़ते आये—मैंने पुनः उन्हें मना किया। इसपर जोरसे वे चिल्ला पड़े 'नहीं मिलूँगा जी—नहीं मिलूँगा'।

एक अप्रिय प्रसङ्ग

दूसरे दिन रविवारीय गीता प्रवचनमें रातकी घटनाका उल्लेखकर उक्त पण्डितजीने मेरे प्रति कटु शब्दोंका प्रयोग किया था। गीता प्रवचनके संयोजक गयाप्रसाद ज्योतिषीने वहाँकी स्थितिको बतला रहे थे। तबतक महाराज भी वहाँ आ गये। पूछा—क्या बात है, ज्योतिषीजीने पूरी घटनाका वर्णन कर दिया।

एक बार गया कांग्रेसमें सम्मिलित होनेवालोंको उन्होंने वर्णशङ्कर कह दिया था। उस समय तहलका मच गया था। बड़ी कठिनाईसे मामला शान्त किया था। दूसरी यह घटना हो गयी। महाराज क्रोधित हो गये और उन्होंने कहा—उन्हें बुला लो, लगता है, उन्हें सेवा-मुक्त करना होगा।

पण्डितजीके आनेपर महाराजने कहा कि क्यों न आपको सेवा-मुक्त कर दिया जाय? तत्क्षण मैं महाराजके चरणोंमें शिर नवाकर निवेदन किया—'नहीं-नहीं क्रोध प्रभो संहरे। ये मेरे गुरु रह चुके हैं।' महाराज तो क्षमावतार थे, क्षमया पृथिवी समः।

अन्नदोष

इन्दौर स्टेटके संस्कृत महाविद्यालयके प्रधानाचार्यको वहाँके दीवान साहबने पदमुक्तकर दिया था। मद्रासी प्रधानाचार्यको मालूम था कि मालवीयजी महाराजकी कृपा ही कारगर हो सकती है। वे काशी आये और अपनी सारी व्यथा कह सुनायी। महाराजके मुखसे निकल गया कि मैं उन्हें पत्र नहीं लिखूँगा। मुझे आश्चर्य हुआ कि उन्होंने स्वभाव विरुद्ध ऐसा क्यों कह दिया। प्रधानाचार्य चले गये। उस समय प्रसिद्ध कथावाचक महाराजके परम मित्र, स्व० पं० रघुनाथदत्तजी व्यास बैठे थे, उन्हें भी महाराजके नकारात्मक उत्तरसे आश्चर्य हुआ और कहा—

"अभी जो कुछ मैंने सुना क्या वह उसी मदनमोहन मालवीयके शब्द हैं, जिनका अवतरित द्वार सदा दुःखी जनोंका आश्रय-स्थान है। उनके मुखसे किसी दुःखीके लिए 'ना' कैसे उच्चरित हुआ? एक ब्राह्मण इतनी दूरसे अरमान लेकर आया, जिसके लिए मुखसे कुछ शब्द उच्चारण करनेमें भी कंजूसी? लिखनेवाला खड़ा है।" सुनकर महाराजके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे। आज्ञा हुई कि उस ब्राह्मणका पता करो। वे नहीं मिले। महाराजने अपने पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीयको बुलाया। पूछा, आज किसका अन्न मुझे खिला दिया। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। काशीमें केवल सेवा उपवनका ही अन्न ग्रहण करते थे। अन्यत्रका नहीं। पता करनेपर मालूम हुआ कि उस दिन अन्यत्रकी सामग्री प्रयोगमें ली गयी थी।

दत्तजी थे। मैं तथा पण्डित सीताराम त्रिपाठी इण्टर क्लास में। मैंने महाराजको बतला दिया था कि हरिद्वारमें एक दिन रुकना है। शामको पुस्तकालयका उद्घाटन करना है, उसके लिए महन्तजीको सूचित कर दिया है, कहकर अपने डिब्बेमें चला आया। सम्भवतः गोस्वामीजीको हरिद्वार उतरना और पुस्तकालयका उद्घाटन करना प्रिय नहीं लगा। अतः उन्होंने महाराजको सुझाव दिया कि हरिद्वार उतरनेके बजाय देहरादून ही चला जाय। बाबा राघवदासने मुझे सूचित किया कि महाराजकी आज्ञा है कि हरिद्वार न रुका जाय। उनके साथ महाराजके पास आकर निवेदन किया कि इतनी लम्बी यात्रा-पर एक दिन आपका विश्राम आवश्यक है। गङ्गा सप्तमी पर्वका स्नान हमें सुलभ होगा तथा आपके उस वचनका पालन होगा, जिसमें कहा गया था निकट भविष्यमें उधर आना होगा तो उद्घाटन कर देंगे। अतः हरिद्वार उतरना ही होगा। महाराजने कहा—'जैसी तुम्हारी इच्छा।' गोस्वामीजी चुप थे।

हरिद्वार स्टेशनपर बाजे-गाजेके साथ हजारों नर-नारियोंका जुलूस महाराजके स्वागतमें उप-स्थित था। वहाँसे सनातनधर्म महावीर दलके भवनमें पहुँचे। यद्यपि मैंने महन्तजीको बतला दिया था कि उद्घाटनका प्रबन्ध करें किन्तु कुछ रहस्य था, जिसे महाराजके श्रीमुखसे वे सुनना चाहते थे। यह तो मैं समझ गया था कि गोस्वामीजी किसी कारणसे महाराजसे उद्घाटन करानेके पक्षमें नहीं थे।

भीड़ समाप्त होनेपर महाराजको बताया कि ये महन्तजी हैं, पुस्तकालयके उद्घाटनके लिए समय बता दें, उन्होंने कहा—स्वास्थ्य ठीक नहीं है, कैसे होगा—बतलाया गया बगलवाले ही स्थानमें है, जैसे आप इस समय बैठे हैं, इसी प्रकार यह व्यवस्था वहाँ हो जायगी। कोई श्रम नहीं होगा—उन्होंने कहा—भीड़-भाड़ न हो तो ठीक है। पाँच बजे करा दो। उद्घाटन सम्पन्न होनेके बाद महन्तजीने गोस्वामीजीकी कुछ बातें बतलायीं कि उन्होंने अपनी सभाके लिए धन माँगा, जिसे इनकार करनेपर उन्होंने कह दिया था कि मालवीयजी उद्घाटन नहीं कर सकेंगे।

इतनी आसानीसे उद्घाटन समारोह हो गया कि महन्तजी गद्गद् हो गये। मुझे अपनी गद्दी-पर बगलमें बैठाया सब वृत्तान्त बतलाकर मेरी जेबमें सौ-सौके ५ नोट डालना चाहते थे। मेरे इनकार करनेपर दुःखी दिखलायी पड़े। मैंने कहा—महाराज देहरादून जा रहे हैं। वहाँ गङ्गाजल भिजवा दिया कीजियेगा तथा उनके पास अनेक प्रकारके लोग आते रहते हैं और वे यथासाध्य सहायता करते रहते हैं। देहरादून प्रवासके समय यदि ऐसे लोग मिलेंगे तो उनके सत्कारका भार आपपर होगा।

महन्तजीने वैसा ही किया। विशेषकर कवि नजर सोहानवीका जिन्होंने 'कलामें रूबानीय-गीता' का उर्दूमें अनुवाद किया था, सम्मानित किया था।

ऐसे लोग अब कहाँ मिलेंगे ?

महाराजसे मिलनेवाले अनेक प्रकारके व्यक्ति होते थे। राजनैतिक नेता, क्रान्तिकारी, धर्मा-चार्य, अधिवक्ता, अध्यापक, साधु, संन्यासी, विद्यार्थी, अर्थार्थी। सैकड़ों व्यक्तियोंसे प्रतिदिन विभिन्न समस्याओंसे घिरे रहते थे। मैंने कभी किसीको मिलनेसे वञ्चित नहीं किया था। और न तो महाराजके श्रीमुखसे कभी यह निकला था कि वे किसीसे नहीं मिलना चाहते हैं। किन्तु इतने दिनों बाद उनके श्रीमुखसे यह शब्द सुननेको मिला कि आज—(९ बजे रात्रिको) किसीसे न मिलता तो अच्छा होता।

हिन्दू विश्वविद्यालयके बजटकी विवेचना थी—प्रातः ८ से १ बजेतक और मध्याह्नोत्तर ३ बजेसे रात्रि ८ बजेतक। महाराजको बहुत सोचना और बोलना पड़ा था। ८॥ बजे घर पहुँचते ही

है, उसके लिए अब मैट्रिक्युलेटकी बात शोभनीय नहीं है। सर सी वाई चिन्तामणि मैट्रिक्युलेट नहीं थे। उत्तर प्रदेश सरकार में शिक्षामन्त्री थे। अंग्रेजी अखबार लीडरके यशस्वी सम्पादक थे। परीक्षाओंका मापदण्ड उनके लिए आवश्यक हो सकता है, जिनके बारेमें कोई जानकारी नहीं रहती। "उन्होंने वचन दिया है कि विदेशसे वापस आनेपर वह ठीक करा देंगे। परसों वह लन्दन जा रहे हैं। तुम कल उनसे मिल लो।"

मैंने कहा बाबूजी ! आपने बहुत गड़बड़ कर दिया। इतने दिनोंतक मैंने कभी अपने विषयकी बात आपसे नहीं कही—जो कर्तुं अकर्तुं समर्थ रहे हैं जब आप उस व्यक्तिके पास याचनाके लिए कह रहे हैं जो आपकी कृपासे उस पदको सुशोभित कर रहा है। नहीं बाबूजी मुझसे यह कथमपि नहीं हो सकता।

"यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो भावहिदीनंवचः" मैं उनके पास नहीं जा सकूँगा।

महाराज ने कहा—"भाव तुम्हारा उत्तम है किन्तु मैंने उन्हें वचन दिया है कि तुम उनसे मिलोगे। देखो—वे तुमको बहुत अच्छी तरहसे जानते हैं। मनुष्यको साधारण शिष्टाचार कभी नहीं खोना चाहिये। वह एक मासके लिए विदेश जा रहे हैं। मनमें विरोध भाव होनेपर भी इतनी शिष्टाचारको भंग नहीं करना चाहिए। सो तुमको मिलना ही होगा। मैं पशोपेशमें पड़ गया।"

'आज्ञा गुरुणां हय विचारणीय' हृदय हाहाकार कर उठा।

उन दिनों सन्ध्याकालीन मेरी ड्यूटी पुस्तकालयमें भी थी—मैं ही इंचार्ज था। उसी दिन शामको डाक्टर साहब दिल्लीसे आये एक अतिथिको पुस्तकालय दिखाने पुस्तकालय पहुँचे थे। मुझसे मिलते ही तपाकसे पूछा हलो मि० सिंह कैसे हो? तुम्हारे बारेमें आज पण्डितजीने बहुत बातें की हैं, वे बहुत दुःखी भी हैं। तुम चिन्ता न करना— मैं विदेशसे लौटनेपर सब ठीक करा दूँगा। मैंने कहा—वह आपका काम है, मुझे कुछ भी नहीं कहना है।

दूसरे दिन शिष्टाचार निभाने उनके बँगलेपर पहुँचा—हजारों व्यक्तियोंसे लान भरा था—किसी प्रकार गोलाई पारकर दरवाजेपर पहुँचा। भीतर भी अधिकारियोंसे कमरा ठसाठस भरा था। मैंने यह सोचकर कि 'केन गण्यो गरीवः' फाटकतक वापस आ गया। किन्तु उनकी दृष्टिसे वञ्चित नहीं हुआ। उन्होंने आवाज दिलाई, भीतर गया। बैठनेका आदेश मिला। उतने लोगोंके बीच पुनः उन बातोंका उल्लेख कर कहा—चिन्ता मत करना। आपको यात्रा मंगलमय हो, यह कहकर उठ गया। यह मनमें लिये हुए कि जो उन्होंने कहा है, वैसा नहीं होगा। और महाराजके जीवनतक उस गलती या दुरभिसन्धिका मार्जन नहीं हो सका। पण्डित गोविन्द मालवीयके कुलपतित्वमें ही उसका कुछ समाधान हो सका था।

मेरे प्रति महाराजका स्नेह पुत्रोंसे कम नहीं था और उनके परिवार तथा सम्बन्धियोंसे जो मुझे सम्मान मिला है वह वर्णनातीत है।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी जन्ममें मैं उनके परिवारका घनिष्ठ सदस्य रहा होऊँगा। प्रछतमें यह संयोग ही कहा जायगा कि महाराजकी पूजनीया माताजीका नाम श्रीमती मूना देवी था, जिनके चित्रमें मैं अहर्निशि अपनी दादीका दर्शन प्राप्त करता था। उनका भी नाम मूना देवी था और दोनोंके स्वरूपमें एकरूपता थी।

अन्तोगत्वा इन्दौर स्टेटके दीवानको डाकसे पत्र भेज दिया गया ।

असत्य से क्षोभ

मालवीयजी महाराज प्रत्येक मिलनेवालोंसे उनके परिवारकी पूरी जानकारी प्राप्त करते थे । एक आँख-कान-नाकके विशेषज्ञ हृष्ट-पुष्ट प्रसन्न डाक्टरसे मालूम हुआ कि वे अविवाहित थे । वे विश्व विद्यालयकी सेवामें ले लिये गये थे । महाराज नित्य तैल मर्दन कराते समय समाचारपत्र-सुनते रहते थे । लीडरमें प्रकाशित उपरोक्त डाक्टरकी पत्नीके दुःखमय जीवनका विस्तृत उल्लेख था । सुनकर महाराजने कहा कि मुझसे असत्य कहा था कि वह अविवाहित है । डाक्टरका प्रतिदिनका नियम था कि अस्पताल जानेके पूर्व पहले महाराजकी देख-भाल करके तब अस्पताल जाया करते थे । जिस दिन लीडरमें समाचार प्रकाशित हुआ था, उस दिनसे महाराजके यहाँ नहीं आये ।

एक दिन महाराजके कानमें तकलीफ हुई । मैंने गोविन्दजीसे कहा कि कानमें दर्द है । किसी डाक्टरको बुलाना चाहिए । उन्होंने कहा— उन्हें बुला लो । मैंने कहा——बाबूजी उन्हें देखना नहीं चाहते, उसने असत्य कहा था । उन्होंने कहा इससे क्या होता है । मैंने कहा तो चलिये आप ही उन्हें समझाइये । पिता-पुत्र में बहस छिड़ गयी । गोविन्दजीका कहना था कि यह तो उसका निजी मामला है, चिकित्सासे क्या मतलब, महाराजने डाट दिया । तुम चुप रहो । बहसकी जरूरत नहीं, उसने झूठ कहा था, मैं उसे देखना नहीं चाहता और कुछ दिनों बाद वे विश्वविद्यालय क्षेत्रसे पलायित हो चुके थे ।

महाराजकी सेवामें मेरे साथ पण्डित त्रिलोचन पन्त भी थे । सन् १९३६ में जब महाराजने कुलपतित्वका भार डाक्टर राधाकृष्णन्‌को सौंप दिया——तब उन्होंने हम दोनोंको महाराजके पास बने रहनेका आदेश दिया था । महाराजने केवल मुझे ही अपने पास रहनेकी स्वीकृति दी थी ।

डाक्टर राधाकृष्णन्‌ने सर्वप्रथम विश्वविद्यालय कर्मचारियोंके वेतन-स्तरकी व्यवस्था की थी, जो १७-१८ वर्षोंकी अवधिका था, उनमें एक सबसे निम्न वेतन-स्तर ४०) से ६०) तकका वेतन-स्तर निर्धारित किया गया था । मुझे भत्ता सहित उस समय ५९॥) मासिक मिलता था । उसमें अठन्नी मिलाकर तत्काल ६०) पर समाप्त कर दिया गया था ।

कुछ मासके उपरान्त किसी प्रकार महाराजको इस बातकी जानकारी होनेपर कुछ रुखायीके साथ उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम्हारे वेतनमें इस प्रकार अन्याय किया है, मुझसे क्यों नहीं बतलाया ? मैंने कहा——बाबूजी ! इसमें गहरी दुरभि सन्धि है । आपके ही शब्दोंमें आपके पास होनेसे स्वभावतः लोगोंको ईर्ष्या हो सकती है । अतः आप कृपाकर इस विषयमें किसीसे कुछ न कहें । उन्होंने कहा——यहाँ सिद्धान्तका प्रश्न है, अतः मैं अवश्य कहूँगा ।'

मेरी अनुपस्थितिमें महाराजने डाक्टर राधाकृष्णन्‌को बुलाकर इस विषयमें बातचीत की थी । जो बतलाया वह इस प्रकार है ।

डाक्टर राधाकृष्णन्‌का कहना है कि ऐसा लगता है कि इसमें कुछ भूल हुई है और कार्यालयकी टिप्पणी है कि "ही हीज नाट इचेन ए मैट्रिक्युलैट" ? मैं परसों लन्दन जा रहा हूँ आनेपर सुधार कर दिया जायगा ।

मैंने उन्हें बतलाया कि जो व्यक्ति मेरे पास इतने वर्षोंसे परिश्रमसे कार्य सम्पादन करा रहा

सकता है कि हमारे जामाताके ऊटपटाँग आचरणपर कुछ कह सके, तुमने उसे कुछ उपदेशप्रद सुझाव से मुझे आप्लावित कर दिया। सही मानेमें तुम मेरे छोटे भाई हो, स्नेहपात्र हो।

पण्डित बदरीनाथजी, व्याकरणाचार्य श्रीमान् बाबू साहबके दानाध्यक्ष थे। रणवीर पाठशालामें अध्यापक पदके इच्छुक थे। महाराज उन दिनों प्रयागमें थे। वहाँ अपने प्रार्थना पत्रके साथ पहुँचे थे। उन्हें बतलाया गया कि पहले विश्वविद्यालयके स्नातकोंको प्रधानता देनेका नियम बनाया गया है। आप गवर्नमेण्ट कालेजके स्नातक हैं। अतः आपके लिए सम्भावना नहीं होगी।

वाराणसी आनेपर उन्होंने बाबू साहबके सिक्योटरीसे यह बतलाया कि ठाकुर साहब कुछ रुपया चाहते थे, इसलिये मुझे पदकी प्राप्ति नहीं हो सकी।

किसी प्रकार महाराजको भी यह बात मालूम हो गयी थी। उन्होंने कहा कि "तुम बड़े छिपे रुस्तम निकले ?" क्या गलती हो गयी बाबूजी—कुछ साफ कहें तो समझमें आये। उन्होंने कहा कि तुम किसीसे रुपया भी माँग सकते हो। यह संवाद सुनाया गया है। उनके पण्डितने ऐसी बात फैलायी है। मैंने रुपयेकी माँग तो नहीं की किन्तु उनसे यह अवश्य कहा था कि मेरे भतीजासे कह देंगे कि अमुकसे इतना रुपया घरसे दे देंगे। उनसे रुपया प्राप्त करनेका कोई प्रश्न नहीं था। महाराजने कहा—तुम्हें आदमीके आचरणको समझकर बात करनी चाहिये। तुम किसीसे रुपयाकी माँग कर सकते हो, इसका विश्वास मैं नहीं कर सकता किन्तु शिवप्रसादके कानतक बात पहुँचेगी तो उनको बुरा लगेगा। मैंने कहा—यदि बाबू साहबके कानमें बात पहुँचेगी तो पण्डित दण्डित होंगे, बात भी वही हुई।

किसी बातपर पण्डित रामव्यासजी ज्योतिषीने दुःखी होकर अन्यत्र जानेके लिए महाराजके संस्तुतिपत्रकी कामना की थी। मैंने उनकी खिन्नताका मार्जन करते हुए अन्यत्र जानेका विरोध किया था और मेरे विरुद्ध पण्डित बदरीनाथके आचरणका भी उल्लेख कर दिया था। उस पत्रको ज्योतिषीजीने श्रद्धेय बाबू साहबको सुना दिया था. जिसपर उन्होंने अपने पण्डितको अपने यहाँके अन्न-जलसे वञ्चित होनेका आदेश दे डाला था। सूचना मिलनेपर प्रयागसे पहुँचकर बाबू साहबसे निवेदन किया कि ऐसा अनर्थ न कीजिये। बहुत अनुनय-विनय यहाँतक कि यदि उन्हें क्षमा नहीं करेंगे तो अन्न-जलका त्याग करूँगा। तब उनका क्रोध शान्त हुआ था।

जब महाराजके तीनों पुत्र (पण्डित राधाकान्त मालवीय, पण्डित मुकुन्द मालवीय तथा पण्डित गोविन्द मालवीय) कुलपति निवासमें एक साथ रहने लगे थे। मैंने उचित समझा कि अब आफिसमें बैठना ठीक नहीं है। यह बात पण्डित राधाकान्तजीको दुखदायी हुई। कई दिनोंतक रोज प्रातः काल मेरे घर पहुँचकर अनुरोध करने लगे कि हम लोग अपनी-अपनी बात कर उनको सुनाते रहते हैं और वे अपने मनमें उन बातोंका मनन करते हैं—किसीसे वे कुछ कहते नहीं। तुम्हींसे सब सुना देते थे और तुम उन्हें प्रसन्न भी कर देते थे। सो उन्हें घुटन हो रही है। तुम ब्रह्महत्या कर रहे हो न। मैंने उन्हें समझा दिया था कि जीवनमें उन्होंने कभी पुत्रोंके सेवासे वञ्चित रहे और आप लोगोंने पिताकी सेवासे वञ्चित रहे हैं। मेरे रहनेसे आप लोगोंवाली बातें न हो सकेंगी और मेरे प्रति विरोध बढ़ जायेगा। वैसे नित्य ही प्रणाम करता हूँ, आफिसमें बैठनेकी आज्ञाके लिए क्षमा करें।

एक दिन प्रणाम करने गया। महाराजने कहा—रुक जाना—भाग मत जाना। बाथरूम चले गये—आने पर कहा :—

"कई दिनोंसे एक बातमें तुमसे राय लेना चाहता था। अवसर नहीं मिलता था। यहाँ, यह

विश्वविद्यालयके लिए रेलवे बोर्ड नामक निधिके महाराज चेयरमैन थे। उस समय महाराजको छोड़कर सभी सदस्य दिवङ्गत हो चुके थे। बाबू भगवानदासजी (बाबू शिवप्रसाद गुप्तके जामाता) कार्यकारिणी समितिके अवैतनिक सहायक मन्त्री थे। उन्होंने महाराजको सुझाव दिया कि आप विश्वविद्यालयके हकमें लिख दें। मैंने निवेदन किया कि कोर्टके अनेक सदस्य आ चुके हैं, जो इसमें दिलचस्पी रखते हैं, उनसे परामर्श कर लेना उपयुक्त होगा। महाराजने अपनी ओरसे उन्हें बतलाया कि इस विषयमें कौन्सिलका प्रस्ताव या कुलपतिका लेख आवश्यक होगा कि मैं विश्वविद्यालयके पक्षमें हस्ताक्षर कर दूँ। वापस चले गये और श्री राधवन्‌से हस्ताक्षर कराकर शामको ६ बजे पुनः मालवीय भवन आये। मैंने उन्हें बतलाया कि महाराज टहलने निकले हैं। उन्होंने कहा—उस समय आपने क्यों एतराज किया था? यह सुनकर मुझे क्रोध हो गया। मैंने कहा—बाबू भगवानदासजी, मैं जानता हूँ कि आप कौन हैं। मोटरपर पधारे हैं। मैं यहाँ इस समय सब कुछ हूँ। उस समय उस कागजके साथ स्वयं नहीं आना चाहिये था। चपरासीसे भी भेजा जा सकता था। मैंने अपने दायित्वका पालन किया था। इस समय भी आप बिना इजाजतके पधारे हैं किन्तु आपका यह व्यवहार बर्दाश्त नहीं कर सकता। चले जाइये यहाँ से। कुछ दिनोंके बाद प्रकारान्तरसे महाराजको यह घटना बतलाया गया। शामको भोजनोपरान्त उन्होंने कहलाया कि मैं उनसे मिलकर घर जाऊँ।

नौ बजे रातको जाते समय मैं उनके पास पहुँचा। बड़े गम्भीर भावमें थे—कहा कुर्सी ले लो। वे मौन थे। मैंने कहा बाबूजी! कुछ तकलीफ है? नहीं, फिर आप चुप क्यों हैं। डाक्टरको बुलाऊँ। नहीं। वे गहरे सोचमें थे। आपने मुझे मिलकर जानेका आदेश दिया था। "हाँ, तुमने बाबू भगवानदाससे लड़ाई करके अच्छा नहीं किया। आफ्टर आल ही इज आफिसर? ऐसी स्थितिमें बातके समाधानके लिए क्षमा माँग लेना हितकर होता है।"

मैंने बाबूजीसे निवेदन किया कि—"किसी अपराधके लिए क्षमा माँगनेमें कोई आपत्ति नहीं किन्तु बिना अपराधके मैं क्षमा माँगनेमें असमर्थ हूँ। वे युनिवर्सिटीके एक अधिकारी हैं—मेरे नहीं। यहाँ जबतक रहता हूँ, आप मेरे अधिकारी हैं। लाइब्रेरी जानेपर लाइब्रेरियन मेरा अधिकारी है, जनेजने मेरे मालिक नहीं हो सकते। यदि मेरे इस आचरणसे आपको कष्ट हो तो कृपाकर क्षमा कीजियेगा और यदि आज्ञा हो तो कलसे सेवामें उपस्थित न होऊँ?"

महाराजने कहा—तुम तो हर बातमें आगे बढ़ जाते हो। मैं तो मामलेके शान्तिके अभिप्रायसे कहा। इसका प्रश्न कहाँ आता है? मैंने कहा—बिना अपराध समझे क्षमा माँगनेको मत कहियेगा। अच्छा जाओ भोजन करो।

एक दिन बाबू भगवानदास सेवा उपवनसे महाराजके बँगलेपर टेलीफोन कर रहे थे। फोन उठानेपर उन्होंने पूछा तुम कौन हो—मैंने कहा आप किसको चाहते हैं। उन्होंने पूछा तुम कौन हो? मैंने कहा बाबू साहब जिस स्थानसे आप फोन कर रहे हैं, उस स्थानकी विशेष मर्यादा है। बार-बार तुम-तुम लगाकर उस स्थानकी गरिमा मिटा रहे हैं, इसका आपको ध्यान रखना चाहिये। मैं शिवधनी सिंह बोल रहा हूँ। उन्होंने फोन काट दिया। टेलीफोन बाबू शिवप्रसाद गुप्तके चारपाईके पास ही था और मेरी बातें वे सुन चुके थे। वे तुरत मेरे पास मालवीय भवन मोटरसे पधारे। मुझे बुलाया और कहा—गाड़ीमें आ जा। मेरे प्रवेश करते ही उन्होंने अपने गोदमें ले लिया और सजल नयनसे कहा 'तू मेरा सच्चा भाई है। सभी जानते हैं कि वह मेरा जामाता है और किसीका साहस कैसे हो

लगभग २० मिनट बाद राधाकान्तजीने घबराये स्वरमें जोरसे पुकारा। ठाकुर साहब, जल्दी आइये, बाबूको क्या हो गया है? डाक्टरको बुलानेको कहकर भीतर गया। बरामदेवाले शीशे लगे कमरेमें देखा महाराजके नेत्र बन्द हैं। थोड़ी देरतक पैर और सीना सहलाते हुए जोरसे कहा— बाबूजी, होशमें आइये, थोड़ी देरमें सजल नेत्र खुल तो गये। वे खुले ही रह गये। बातचीतमें ही लीला समाप्त हो चुकी थी। इसके बाद डाक्टरोंका आक्सीजन प्रयोग निष्फल रहा।

महाराजका अन्तिम-दर्शन बदा था। कदाचित् मुझे दर्शन देनेकी प्रतीक्षाकर रहे थे।

महाराजकी आत्मा

महाराजके दिवङ्गत होनेके बाद तत्कालीन कुलपति डाक्टर राधाकृष्णन्ने इस योजनाको क्रियान्वित करनेके लिए विश्वविद्यालयकी स्पेशल कोर्टकी मीटिङ्ग बुलायी थी कि उनके प्रतिवर्ष छः मास लन्दनमें रहनेके कारण उतने समय तक डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी कुलपतिके रूपमें रहा करें।

विधानमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी और न तो ऐसे मामले स्पेशल कोर्ट मीटिङ्गमें निर्णय किये जा सकते थे। केन्द्रीय कार्यालयके जिस कमरेमें आजकल वित्ताधिकारी बैठते हैं, पहले वह हाल था। उसी हालमें मीटिङ्ग हो रही थी। प्रायः ७० सदस्योंकी उपस्थितिमें केवल दो सदस्य प्रस्तावित योजनाके विरोधी थे। कुछ सदस्य मौन थे और कुछ वोट लेनेपर जोर दे रहे थे।

एक विशाल बन्दर गलियारेसे होकर भीतरके दरवाजेपर बैठ गया था। पण्डित रामव्यास ज्योतिषीने अध्यक्ष महोदय (कुलपति) से अनुरोध किया था कि आपके विधान-विरुद्ध आचरणसे बन्दरके रूपमें महाराजकी आत्मा निरीक्षणकर रही है। पुनः वोट लेनेके लिए आवाज दी गयी। इतनेमें वह बन्दर अध्यक्ष महोदयके समक्ष मुँह करके शान्तभावसे उनके सामने मेजपर बैठ गया। उसके बैठते ही वे कुछ दहलसे गये--काँपने लगे। तत्क्षण उन्होंने अनिर्णीत मीटिङ्ग समाप्त होनेकी घोषणा कर दी थी। क्वचिद् बुधैरप्यधेन गम्यते।

यह विधान-विरुद्ध आचरण उस महापुरुषका था, जिसने आगे चलकर भारत-जैसे महाराष्ट्रके राष्ट्रपति पदको सुशोभित किया था।

(जैसा मैंने समझा)

महर्षिका प्रादुर्भाव

श्री शङ्करोमदनमोहन मालवीयः
रूपेण यो हि भगवत्करुणावतारः।
कर्तुं शुभानि जगतां प्रकटी बभूव,
तं वन्द्यमान सरसोरुहमाननमामः॥
न भूतो न भावि न वा वर्त्तमानं
मनुष्यो महान् मालवीयेन तुल्यम्।

हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तानके उद्‌बोधक, प्रवर्तक पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका प्रादुर्भाव ऐसे समयमें हुआ था, जब भारतवर्ष सब प्रकारसे दासताके बन्धनोंमें जकड़ा हुआ था। भारतीय जनता अपनी संस्कृति भूलती जा रही थी। भारतका नैतिक और चारित्रिक बल क्षीण होता जा रहा था।

मालवीयजीके हृदयमें बाल्यावस्थासे ही देश और धर्म शिक्षाकी भावना गूँज रही थी। वे परम सात्विक, त्यागी, उदार, विनम्र और प्राणि-मात्रके निस्पृह और सच्चे सेवक थे। राजनीति, शिक्षा,

प्रस्ताव है कि एक हरियाणाकी अच्छी गाय मँगायी जाय। इसमें तुम्हारी क्या राय है। मैंने कहा—प्रस्ताव तो उत्तम है बाबूजी, आजकल आप सब कुछ त्याग कर अखिल भारतीय गोरक्षा मण्डलके अध्यक्ष हैं, प्रत्येक हिन्दू घरमें एक गाय रहनी चाहिये। आपको स्वयं ढाई-तीन बजे दूध चाहिए, जिसके लिए आदमीको गौशाला जाना पड़ता है। किन्तु जितना लाभ है, उससे कहीं अधिक आपके लिए दुःख-दायक भी है। यह चिन्ता आपको सताती रहेगी कि गाय धूपमें तो नहीं, मलमूत्रमें तो नहीं बैठी है। प्यासी तो नहीं है, समझमें नहीं आता कि आप अपने स्वरूपसे हटकर मायामें क्यों फँसना चाहते हैं। आपसे कितनी बार निवेदन किया कि सेवा उपवन रहें, सारनाथ रहें, परिवारमें रहनेपर माया बलवती हो जाती है।

यह सुनकर महाराज रोने लगे। उन्होंने कहा—गाय मँगानेमें कोई बड़ी बात तो नहीं थी। कोई मँगा देता—किन्तु जिस बातमें ऐक्यमत नहीं, अलग-अलग मुझसे इसके लिए कहा गया। मँगानी होती तो अबतक मँगा ली गयी होती। तुमसे कुछ सुनना चाहता था—सो तुमने बहुत-कुछ सुना दिया। मुझे खेद है कि मेरे पुत्रोंने मुझे नहीं समझा। एक अवसरपर महाराजने कहा था कि 'मेरा जन्म तुलसी दलमें प्राप्त प्रसादके प्रभावसे हुआ है और मेरे पुत्रोंका जन्म वकालतके पैसेके प्रभावसे हुआ है।' कितनी पीड़ा थी महाराज को·····।

महाप्रयाण

महाराजके निकटतम सम्पर्कमें बराबर बने रहनेके कारण उनकी प्रत्येक गति-विधि और भाव-नाओंको समझकर आदेश पाये बिना ही मैं पूरा कर दिया करता था। जो किसी अन्यसे होना कठिन था। इसलिये भीतर-बाहर सबका दायित्व मुझपर था। अन्तिम समयके पूर्व महाराजके वर्तमान तीनों पुत्र पण्डित राधाकान्त मालवीय, पण्डित मुकुन्द मालवीय तथा पण्डित गोविन्द मालवीय। जब उनके साथ रहने लगे थे, अपनी उतनी उपयोगिता न समझकर कार्यालयमें बैठना बन्द कर दिया था, नित्य प्रणामकर चला जाता था।

ऐसे ही समयमें नवम्बर १९४६ में नोआखालीमें भयङ्कर घटना घट गयी। महाराज उन दिनों ज्वराक्रान्त थे। उस घटनाने उनके शरीरको झकझोर दिया। वे मर्माहत हो उठे थे। अपनी उसी अवस्थामें उन्होंने ललकारते हुए उत्तेजनापूर्ण बहुत कड़ा विरोधका अपना विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित कराया। अपने गूढ़ और कोमल स्वभावके विरुद्ध उनका वह अन्तिम उद्‌गार था। जिसे सरकारने जप्त कर लिया।

शामको 'आज' में प्रकाशित वक्तव्य देखकर मुझे आश्चर्य हुआ था। कुछ मित्रोंसे कहा भी, लगता है अब महाराजने महाप्रयाणकी तैयारी कर ली है। उन्होंने देशको अपना अन्तिम सन्देश दे दिया है।

दूसरे दिन जब मैं उनके पास पहुँचा। पण्डित राधाकान्त मालवीय, उनके कानके पास सटकर किसी योजनाके सम्बन्धमें बातेंकर रहे थे, जिसमें नेपालका भी जिक्र था। पिता-पुत्रकी बातोंमें व्याघात न पहुँचे यह समझकर उनका चरण-स्पर्शकर बाहर जाने लगा, जहाँ १०-१२ व्यक्ति बातेंकर रहे थे। शायद महाराजके दर्शन चाहते थे। महाराजने इशारेसे बैठ जानेका सङ्केत किया। थोड़ी देर बैठनेके बाद मैं उठ खड़ा हुआ और यह कहकर कि अभी आता हूँ बाबूजी, कुछ लोग बाहर हैं। मैं बाहर चला आया था और उन लोगोंसे बातचीत करने लगा।

कोऽनु सः स्यादुपायो ऽत्र येनाहं दुःखितात्मनाम् ।
अन्तः प्रविश्य भूतानां भवेयं दुःख भाक् सदा ॥

वह कौन-सा उपाय है, जिससे मैं दुःखीजनोंकी आत्मामें प्रवेशकर उनके दुःखको ले सकूँ ?

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःख तप्तानां पाणिनामार्तिनाशनम् ।

मुझे राज्य-स्वर्गकी कामना नहीं है, मोक्ष भी नहीं चाहिए, केवल दुःखी जनोंके दुःखके हरणकी कामना है ।

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वाचाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

धर्म निचोड़को सुनें और सुनकर उसे हृदयङ्गम करें—
कि अपनी आत्माके प्रतिकूल दूसरोंपर आचरण न करें ।

जीवितुं यः स्वयं चेच्छत् कथं सोऽन्यं प्रघातयेत् ।
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥

जो स्वयं जीनेकी इच्छा रखता है वह दूसरोंका वध क्यों करे ?

धर्ममें महाराजकी आस्था पैत्रिक एवं अकृत्रिम थी वे स्वयं हिन्दू-धर्मकी जीती-जागती मूर्ति थे ।

धर्मपर जहाँ-कहीं भी आघात चाहे जनताकी तरफसे हुआ हो या सरकारकी तरफसे पहुँचा हो, महाराजने निर्भय होकर उसका सामना किया है और सच्ची लगनके कारण वे विजयी भी हुए थे । पण्डित जवाहरलालजीका कहना था कि वे बहुत बड़े आदमी थे—महान् क्रान्तिकारी थे । निस्सन्देह वे क्रान्तिकारियोंकी भी सहायता करते थे । आजादजीको मेरे द्वारा सहायता पहुँचायी जाती थी । देशके काममें सभी वर्गके लोग अपनी-अपनी विचारधारा उनके समक्ष रखते थे । वे सबका आदर करते थे—

परिशिष्ट ५ में स्व० बा० ईश्वरशरणजी, एडवोकेटने लन्दनसे महाराजके नामसे पत्र भेजा था, जिससे यह स्पष्ट है कि उस विषयमें महाराजका सङ्केत मिल चुका था, जिसकी रिपोर्ट उन्हें दी गयी थी ।

महाराजके पास एक पुरानी डायरी थी, जिसमें कुछ चुने हुए श्लोक उन्होंने लिख रखा था । समय-समयपर उसके पन्ने पलटते रहते थे, उनका कहना था कि इन्हीं श्लोकोंका विकास मेरे जीवनमें हुआ है, वे ही मेरी सीढ़ियाँ हैं—

असंतो नाभ्यर्थाः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः ।
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभंगेऽप्यशुकरम् ॥
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महताम् ।
सतां केनोद्दिष्टं विषमसिधारा व्रतमिदम् ॥

नीच पुरुषोंसे प्रार्थना न करना, धनसे क्षीण हो गये मित्रसे भी नहीं कहना, न्यायका अनुसरण करनेवाली वृत्ति रखना, प्राणका सङ्कट हो तब भी पाप न करना, विपत्तिमें भी ऊँचे भावका अवलम्बन करना । बड़े लोगोंका अनुगमन करना, ये तलवारकी धारके समान व्रत सत्पुरुषोंको किसने बनाया ? स्वयं सिद्ध है ।

धर्म-संस्कृतिके क्षेत्रोंमें उनके कार्य अप्रतिम हैं। उनका व्यक्तित्व अति भव्य और आकर्षक था। वाणीमें अद्‌भुत जादू था, हृदय विशाल और मृदु था। नीति-धर्मके श्लोकोंके ढाँचेमें ढला हुआ उनका उज्ज्वल चरित्र शत्रुओंपर भी सहज ही प्रेम और सम्मान प्राप्तकर लेता था।

नीति, धर्म, अपनी गौरवमयी प्राचीन संस्कृतिके संरक्षण, संवर्धन और अत्याचारके दमनके लिए ही भारतमें—ब्राह्मण कुलमें महर्षिके रूपमें उनका प्रादुर्भाव हुआ था।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥

मालवीयजी महाराज ऋषि थे। मन्त्र द्रष्टारो ऋषयः—ऋषिगण मन्त्रद्रष्टा होते हैं—उन्हें आगम-भविष्यकी झलक मिलती है। महाराजको भारतीय जन-मानसके नाड़ीका सच्चा ज्ञान था तदनुरूप ही उन्होंने उसके उत्थानका मार्ग अपनाया था।

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीका कहना था कि "मैं तो मालवीयजीका पुजारी हूँ।" पूजा देवताओं-पूज्योंकी ही की जाती है।[1]

मानस राजहंस पण्डित विजयानन्द विपाठीने महती सभामें महाराजको "आवेशावतार" बतलाया था।

भगवान्‌की परिभाषा है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ।

—मालवीयजी महाराजमें क्या कमी थी, यह नहीं कहा जा सकता।

पण्डित नारायणपति त्रिपाठीकी प्रशस्ति में—

मदनमोहन मालव भूसुरः सकल लोक हितोद्यतमानसः।
पतितनीच जनान शुचीनपि प्रकुरुते निजमन्त्र बलात् शुचीन् ॥

ऋषि-महर्षि ही सबजनोंको अपने मन्त्र प्रयोगसे शुद्ध और वरदान देते हैं।

महाराजके रोम-रोममें यह भावना व्याप्त थी—

१. काशीमें राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्तके प्रयाससे निर्मित भारत-माता मन्दिरका उद्‌घाटन महात्मा गान्धीके कर-कमलों द्वारा सम्पन्न होना था। देशकी विभूतियाँ समारोहमें उपस्थित हो चुकी थीं। उद्‌घाटनके लिए बात चल रही थी, मालवीयजी महाराज तबतक नहीं पहुँचे थे। तब गान्धीजी-ने कहा "पूज्य मालवीयजी महाराज अभीतक नहीं पधारे, वे राष्ट्रके आचार्य और पुरोहित हैं। उनकी आज्ञा प्राप्त किये बिना यह कार्य कैसे सम्पन्न होगा ?" तबतक मालवीयजी वहाँ पहुँच गये। तब गान्धीजीने कहा, अभी मैं कह रहा था कि आपकी आज्ञाके बिना यह कार्य कैसे सम्पन्न हो सकेगा ? अब आपकी आज्ञा हो तो यह कार्य सम्पन्न कर दिया जाय। श्री वी० डी० ऋषिने अपने मैसमेरेजिम प्रयोगके द्वारा प्रयागमें लोकमान्य तिलककी आत्माको तिब्बतके आद्य लामाकी आत्मा और मालवीयजी महाराजकी आत्माको महर्षि वशिष्ठकी आत्मा बतलायी थी, अतः उनका काम कभी रुका नहीं।

हुए समस्त प्राणीके कल्याणके लिए प्रयोगात्मक विधि अपनाकर देश और समाजको सुसङ्गठित किया—उन्होंने नयी चेतना दी।

ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्व महोत्सवः ॥
अनाथाः विधवाः रक्ष्याः मन्दिराणि तथा च गौः।
धर्म्यं संघटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम् ॥
स्त्रीणां समादरः कार्यो दुःखितेषु दया तथा।
अहिंसका न हन्तव्या आततायी वधार्हणः ॥

ये ही महाराजके प्रयोगात्मक प्रयोग थे।

जो महामानव लगातार ७० वर्षोंतक अविरामगतिसे आसमुद्रात्तुवै पूर्वादा समुद्रा तु पश्चिमात्—देशोत्थान तथा समाज-रचनामें संलग्न होकर अपनी पूरी शक्ति और निष्ठासे विशाल देश और मनुष्य-जातिका हृदय बनकर उनकी नस-नसमें बलका सञ्चार करते रहे और जो भिखारीसे लेकर सेठ-साहुकार, राजा-महाराजाओं, सन्त-महन्तों, गवर्नरों, वाइसराय और बादशाहतक सम्पर्क बनाकर "यत्सार भूतं तदुवासनीयम्" के अनुसार, देश और समाजको ग्रहण कराते हुए आगेकी लड़ाई लड़ते रहे। स्वदेश, स्वधर्म और समाज हितके विविध कार्यों—संस्थाओंका गठनकर देश जाग्रत करते रहे और स्वयं कभी यशकी कामना नहीं की, उनके गुणों—सब कार्योंका उल्लेख करना असम्भव-सा है।

सच बात यह है कि उनके सब कार्योंपर दृष्टि डालनेपर यह आश्चर्य होता है कि क्या इतना सब कार्य एक मनुष्यसे सम्भव हो सकता है? निस्सन्देह यह मालवीयजी महाराजमें निहित दैवी शक्ति थी, जो विविध मार्ग अपनाकर जन-मानसको प्रबुद्धकर स्वराज्यके लिए सर्व-सुलभ प्रशस्त राजमार्ग तैयार कर दिया था। उनके मस्तिष्कमें भावी भारतका मानचित्र अङ्कित था उसके लिए अपेक्षित समाजकी रचना करनी थी, जो प्रत्येक क्षेत्रके लिए उपयोगी हो।

सन् १९३२ में महाराजने हरिद्वारकी महती सभामें यह उद्घोष किया था कि "मैं रहूँ या न रहूँ किन्तु १० वर्षोंमें हमें स्वराज्य प्राप्त हो जायगा।" और अंशतः यह ऋषिवाणी सन् १९४२ में चरितार्थ हो गयी। इस प्रकार निश्चयात्मक अवधिकी घोषणा किसी अन्य नेताके मुखसे उच्चरित नहीं हो सका।

मालवीयजी महाराजकी शक्ति जनतामें भीतर-भीतर प्रवेश करनेवाले उस जलकी तरह था जो मिट्टीके कण-कणमें व्याप्त होता जा रहा था और सब कणोंको एक होकर ठोस बनानेको प्रेरित करता था। वह उस धाराके समान नहीं था, जो आयी और गयी और मिट्टीके कण कुछ समयतक गीले रहकर सूख गये और बिखर गये। अतः मालवीयजी महाराजका जीवन अपना अलग महत्त्व रखता था जिसकी तुलना किसी अन्य नेतासे की ही नहीं जा सकती।

संकुलन सिद्ध हुए

महाराजने "प्रसाद सदृशं वाक्यं स्वभाव सदृशं प्रियम्।"

आत्म शक्ति समं कोपं याजानाति स पंडितः की नीतिसे काम लिया था। उनके जीवनमें त्याग, शील, गुण और कर्म सभी अमूल्य सम्पत्तियाँ विद्यमान थीं—उनका जीवन अग्निमें तपाये हुए विशुद्ध स्वर्णकी तरह ही दीप्तिमान था।

वांछा सज्जन संगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषितरतिः लोकापवादाद्भयम्
भक्तिश्चक्रिणि भक्तिरात्म दमने संसर्ग मुक्तिः खले ।
येऽप्येते निवसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्योनरेभ्यो नमः ॥

सज्जनोंसे सत्सङ्गकी इच्छा, दूसरेके गुणसे प्रीति, गुरुसे नम्रता, विद्यामें रुचि, अपनी स्त्रीसे प्रीति, लोकनिन्दाके सङ्गसे छुटकारा ये निर्मल गुण जिनके हृदयमें वास करते हैं, उन महापुरुषोंको नमस्कार है ।

निन्दन्तु नीति निपुणः यदिवास्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अथैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

नीति निपुण लोग चाहे निन्दा करें या प्रशंसा करें, लक्ष्मी जाय या रहे, आज ही मृत्यु हो जाय या युगान्तरमें हो । परन्तु धीर पुरुष न्याय-मार्गसे विचलित नहीं होते ।"

विपत्तिधैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
तदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसिचाभि रुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

महाराजके १२५ वीं जयन्तीके अवसरपर मुख्य अतिथिके पदसे लोक सभाध्यक्ष माननीय श्री बलराम जाखड़ने महाराजको "समाज सुधारक, आधुनिक भारतके निर्माता, कुशल शिक्षक, दृढ़-प्रतिज्ञ, सत्यनिष्ठ, धर्मात्मा, फूलके समान कोमल, वज्रकी तरह कठोर, वे धुरन्धर वक्ता ही नहीं राजनीतिके भीष्मपितामह कहा था । वे सजग पत्रकार, करुणासे परिपूर्ण, महान् चरित्र निष्ठ, भारतीयता एवं प्राचीन मूल्योंके पुजारी, साहित्य, कला, ज्ञान-विज्ञान सबके समान महत्त्व चिन्तक, जिस प्रकार भगवान् विश्वनाथ सबके कल्याणके लिए हैं, मालवीयजी महाराज उसी भावनासे ओत-प्रोत थे ।"

मेरी धारणाके अनुसार मालवीजी महाराजमें वे गुण विद्यमान थे जैसा कि महर्षि वाल्मीकिजीके प्रश्नका उत्तर नारदमुनिने भगवान् रामचन्द्रके लिए दिया था ।

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्चवीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़ व्रतः ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्त्वभूक्रेषु को रतः ।
विद्वाने कः कः समर्थश्च कश्चैक प्रिय दर्शनः ॥
आत्वान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनुसूयकः ।
कस्य विम्पति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥

आगे संस्मरणमें वे सभी गुण परिलक्षित होंगे ।

पिछली कुछ शताब्दियोंके इतिहासपर दृष्टि डालनेसे यह बात देखनेमें आती है कि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने रामचरितमानस द्वारा जनमानसको प्रकाश दिया । स्वामी दयानन्दजीने अपनी सोयी, अपनी खोयी जनताको जगाकर शुद्धिका मार्ग अपनाया और मालवीयजी महाराजने सबको अपनाते

माननीय पण्डित कमलापति त्रिपाठीके शब्दोंमें—

"·····फिर ऐसे व्यक्तित्व और ऐसे जीवनकी तुलनामें कौन टिक सकता है, जिसके राष्ट्रीय इतिहासके विविध-रङ्ग-मञ्चोंपर असाधारण प्रभावकारी और अभिनव अभिनिवि किया है, जिसका सन्तुलित और शुभ्र जीवन भारत जैसे महादेशके पुनर्जागरणका प्रतिविम्ब रहा है, उस व्यक्तिकी तुलना और उसके कार्योंका पूर्ण मूल्याङ्कन करनेमें भला कौन समर्थ हो सकता है ?

उनका तपस्वी जीवन, उनका उदार हृदय, उनकी कठोर नैतिकता, मानवताके प्रति उनकी शुद्ध निष्ठा, लोगोंके प्रति विरक्ति, त्याग और बलिदानमें अनुरक्ति, पवित्र तथा ऊँचे आदर्शोंकी अमित पूजा, कर्तव्यपथमें प्रशंसनीय अडिगता—भला एक साथ किस जीवनमें दिखाई देती है ?

ब्राह्मण शब्दने, ऋषियोंमें जितनी कल्पना भरी है, उन सबकी अजीब अभिव्यक्ति मालवीयजीमें व्यक्त हुई थी।"

महात्मा गाँधी जब अफ्रीकासे भारत आये थे, उन्होंने स्वराज्यके लिये संलग्न तीन महापुरुषों लोकमान्य तिलक, श्री गोपाल कृष्ण गोखले तथा मालवीयजी महाराजसे मिले थे। इनमें केवल महाराजके विचार उन्हें स्वच्छ निर्मलधारा प्रतीत हुई और उन्हें अपना गुरु मान लिया था।

इतना सब महाराजमें होने पर भी एक लेखकके 'भारत निर्माता' नामक पुस्तकमें महाराजकी चर्चा न पाकर मुझे मार्मिक क्लेश हुआ। उसमें आधुनिक एक नेताको भारत-निर्माता बना दिया गया जब सम्भवतः उनका जन्म भी नहीं हुआ होगा। कृतघ्नताकी भी एक सीमा होती है। इसपर महाराजकी वह वाणी स्मरण हो आयी—

मुँह देखेकी मुहब्बत हुआ करती है सभी को।
जब मैं समझूँ मेरे बाद भी वह कायम रहे॥

अतः बाध्य होकर संक्षेपमें महाराजका जीवन चरित्र, महत्वपूर्ण काम तथा उनके आध्यात्मिक दिव्य जीवन-ज्योतिकी जो झलक मैंने देखी और समझ पायी है, यहाँ लिखा। कथा-प्रसङ्गमें स्मरणके रूपमें साहसकर तितिर्षुर्दुस्तरं मोहाद्डुडुं पेनास्मि सागरम्—कुछ लिखकर महाकवि कालिदासके शब्दोंमें—

महिमानं यदुत्कीर्त्यंतव संहृयते वचः।
श्रमेण तदशक्तया वा न गुणानामियत्तया।
न भूतो न भावी न वा वर्तमानो,
मनुष्यो महान् मालवीयेन तुल्यः,

लिखकर समाप्त करता हूँ।

गच्छतः स्कलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः॥

प्रस्तुत लेखमें 'आज' डायरीके पन्ने महामना वर्णसेञ्चरी शताब्दि विशेषाङ्क 'तीस दिन' मालवीयजीके साथ (जिस प्रणयनमें मेरा योगदान रहा है) आदिसे भी सहायता ली गयी है, उन सबका धन्यवाद करता हूँ।

'आज' पत्रसे महाराजका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। उसके निवास स्थानपर भी बहुधा निवास करते—अपने घर समान, प्रस्तुत पुस्तक उन्हींके लगाये वृक्ष 'आज' के व्यवस्थापक महाशयने कृपाकर इसका प्रकाशन स्वीकार कर मुझे अनुगृहीत किया है, तदर्थ उनका मैं हार्दिक धन्यवाद प्रस्तुत करता हूँ।

"यथा चतुर्भिः कनकः परीक्ष्यते, निघर्षणाम्युदन-ताप-ताडितैः
तथा चतुर्भि पुरुषः परीक्ष्यते त्यागेन, शीलेन गुणेन कर्मणा।"

उनके अद्भुत कार्योंपर दृष्टि डालनेसे यह स्पष्ट झलक मिलेगी कि उन्होंने नीतिमें भगवान् कृष्णका मार्ग अवलम्बन किया है और मर्यादा पालनमें भगवान् रामके गुणोंका आश्रय लिया है। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवनमें ही अपने सङ्कल्पोंको प्रायः पूराकर लिया था। विश्वविद्यालयके भीतर एक विश्वनाथ मन्दिरका सङ्कल्प पूरा न हो सका था, उसकी चिन्ता उन्हें बराबर सताती रहती थी।

मन्दिरका शिलान्यास बहुत पहले सन् १९२८-२९ में ही हो चुका था। निर्माण नहीं हो सका था। जिसकी पूर्तिके लिए सेठ जुगलकिशोर बिरलाने महाराजको आश्वासन दे दिया था कि वह मित्रोंके सहयोगसे मन्दिर तैयार करा देंगे, उसमें भगवान् पधारेंगे, आप चिन्ता न करें। महाराजके शरीरान्तके बाद सेठजीने अपने वचनकी रक्षा की और अपने पूर्ण मनोयोगसे तन-मन और धनसे मन्दिरका निर्माण कराकर उसमें भगवान्का वास करा दिया।

महाराज द्वारा उठाये गये प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक कार्योंमें बिरला बन्धुओंने प्रचुर सहायता की थी। महाराजके जीवन पर्यन्त एक सहस्रकी धनराशि प्राप्त होती रही।

स्थानीय व्ययका भार राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्तजीने अपने ऊपर लिया था। दोनों सहायता के लिए महाराजने कइ बार अनिच्छा व्यक्त की थी किन्तु दोनों उदार प्रेमियोंके अनुरोध वे टाल न सके।

महाराज जब चाहें, जितना चाहें बिरला बन्धुओंसे मँगा सकते थे। ऐसी बात स्वयं राजा दलदेवदासजीने मुझसे कहा था। मालवीयजी सङ्कोच क्यों करता है। जब मैं प्रयागसे उनके पास गया था माघ मेलेके प्रारम्भिक कार्यके लिए धनकी आवश्यकता थी।

जब स्वयं लक्ष्मी प्रस्तुत थीं तब महाराजका कोई काम कैसे रुक सकता था।

महाराजने एक दिन गुप्त कार्योंके प्रसङ्गमें बतलाया था :—

"सबका पुण्य बिरलाको मिलेगा, बिरलाने बालककी भाँति मेरी सेवा की है, जितना पुत्र भी नहीं कर सकता।"

मनुष्यं वरवंश जन्म विसवो दीर्घायुरारोग्यता,
सन्मित्रं सुसुतः सती प्रियतमा भक्तिश्च नारायणे।
विद्वत्वं सुजनत्व मिन्द्रिय जयः सत्पात्र दानेरतिः,
ते पुण्येन बिना त्रयोदश गुणाः सांसारिणां दुर्लभाः।

कुछ मित्रों तथा शोध छात्रोंने मुझे प्रेरित किया था कि महाराजके दिव्य जीवनकी जो झाँकी मुझे मिली है, लिख डालूँ।

मैं लेखक नहीं और महाराज जैसे कर्मयोगी महर्षिके बारेमें 'क्व सूर्यवंश प्रभवो क्व चाल्प विषयामतिः' कैसे और कहाँतक कागजपर लिखा जा सकता है। और कौन भूल सकता है, जिन्होंने हिन्दी, हिन्दू और और हिन्दुस्तानके निर्माणमें अपना तन, मन और धन सर्वस्व त्याग कर निछावर कर दिया है। कवि चकबस्तके शब्दों में :—

"तमाम उम्र कहीं एक ही करीने पर।
बहाया अपना खून कौमके पसीने पर॥"

सूर्यसिद्धान्तानुसार कुण्डली

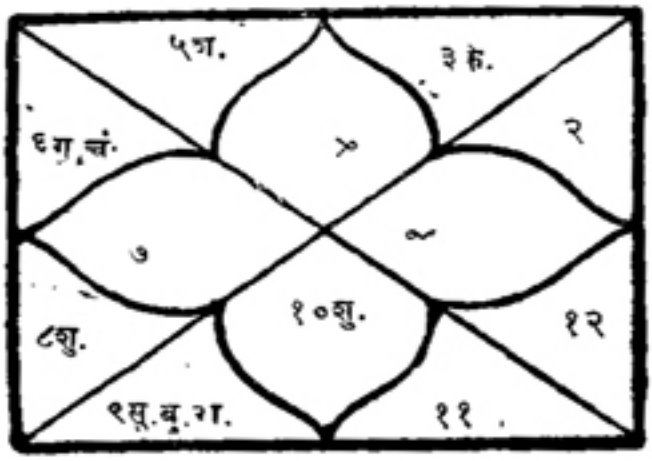

इस कुण्डलीमें फलित ज्योतिषके अनुसार गुरुचान्द्री योग अत्यन्त उत्तम है। क्योंकि मनकारक चन्द्रमा, ज्ञानकारक गुरु दोनोंका, योग पराक्रम स्थानमें है। इसी कारण कार्यमें दृढ़ता, पराक्रमशीलता, दृढ़ सङ्कल्प, आशामूलकता, परोपकारयंता, पवित्रता तथा निर्भीकता आदि साहसमय कार्योंकी पराकाष्ठाका योग होता है। षष्ठमें सूर्य, राहुका योग प्रबल शत्रुहन्ता है। किन्तु मनोऽभिलषित सिद्धिमें बुधके कारण आंशिक न्यूनता पड़ जाती है तथापि सूर्यके प्रबल होनेके कारण बाधाओंके बीचसे लक्ष्यतक पहुँच ही जाना होगा।

एक बातकी विचित्रता है, जो प्राचीन रीतिके अनुसार सिद्ध होती है। यह लोकमान्य तिलककी और इनकी कुण्डली दोनोंमें लग्न गुरु चान्द्री योग मङ्गल और शत्रुहन्ता योग, इनकी बिलकुल समान है। केवल लोकमान्य तिलककी कुण्डलीमें गुरुचान्द्री योगको न्यून करनेवाला तथा कारावासादि कष्ट विशेषरूपवाला राहुका योग है, जो इसमें नहीं है।

इस कुण्डलीमें गुरुचान्द्री योग है। इसी कारण जन्मसे ही लसल्लक्ष्मी लीला वसतिरनिशं वेद विहित—स्फुरद्धर्माचारः स्थित मुख पयोद. प्रतिदिनम्। अतीव प्रख्यातः सजयति गुणानां जनमूर्कमदीयो यं देशोहरिरिव सदानन्द जनकः॥ इस पवित्र मन्त्रका उच्चारण अहर्निशि हुआ करता रहेगा।

वंश परिचय

पण्डित मदनमोहन मालवीयजी महाराजके पूर्वज मालवासे आये थे। वे मल्लई या मलैया ब्राह्मण कहे जाते हैं। महाराजने अपने नामके साथ मलैयाका शुद्धरूप मालवीय किया तभीसे इस जातिके लोग मालवीय कहलाने लगे। ये लोग पञ्चगौड़ ब्राह्मण हैं। इनमें चौबे, दूबे, तिवारी, व्यास आदि उपनाम होते हैं।

मालवासे निकलकर पटनातक गये। कुछ ब्राह्मण प्रयाग और कुछ मिर्जापुरमें बस गये। तेरह गोत्र प्रयागमें आधुनिक भारती भवन मुहल्लेमें बस गये। ये लोग भारद्वाज गोत्री—चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं। द्रोणाचार्यका गोत्र भी यही था। जिस मुहल्लेमें ये लोग बसे थे—उसके चतुर्दिक घोर जङ्गल था उसमें भयङ्कर जानवर भी रहते थे। इन लोगोंके कच्चे मकानोंकी बस्ती थी।

राजर्षि पदवी समलंकृतो यं बुधैः सदा मान्य वरोमहात्मा ।
श्री मालवीय चरितामृत सेवनेन भूमाच्चिरन्त न धर्मयुक्तः ॥
श्री मालवीय चरितामृतमत्र वर्जितम्
सहवासिन्यायेन शिवाख्य, पूर्वम् ।
धनीति सिंहाह्वपद क्रमेण
भूयात् सदा क्षेमकरः महात्मनाम् ॥

(शिवधनी सिंह)

ज्योतिषाचार्य पण्डित रामव्यास पाण्डेयने मालवीयजी महाराजकी जन्मकुण्डली तैयार की थी, उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—

श्री शुभ विक्रम सं० १९१८ शालिवाहनीय शक १७८३, पौष कृष्ण अष्टमी, बुधवार, २५ दिसम्बर १८६१ ई०, सूर्योदयसे इष्टकाल ३०/१७ अर्थात् सायङ्काल ६ बजकर १४ मिनटपर प्रयाग नगरमें अक्षांश २५/२२, काशीसे देशान्तर घ० प० ११ वि० ४० पर हस्त नक्षत्रके ४ चरणमें पूज्यपाद पण्डित मदनमोहन मालजीयका जन्म हुआ ।

प्राचीन मतसे जन्म कुण्डली

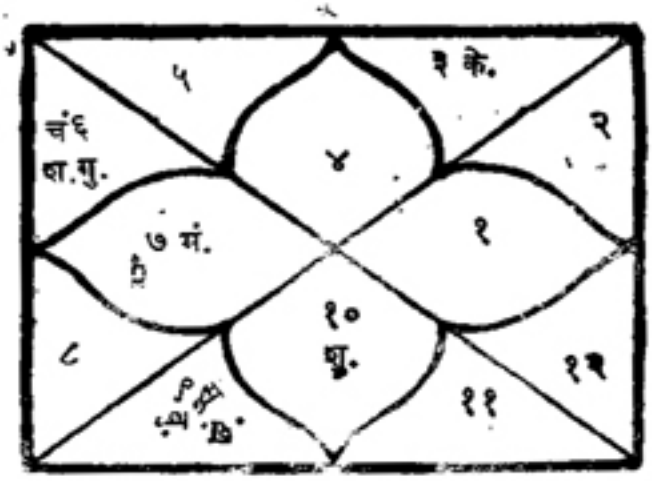

राशि कुण्डली

गुल्ली-डण्डा, कबड्डी आदि खेलते और लड़कोंकी गुटबन्दी करते-फिरते कभी एक गुटसे मुकाबला होता तो डटकर लड़ते वे हारने और भागनेका नाम तो जानते ही न थे ।

मैं जब ५ वर्षका हुआ, तब मेरा विद्यारम्भ कराया गया उस समय अहियापुर मुहल्लेमें कोई पाठशाला नहीं थी । लाला मोहनदासकी कोठीके चबूतरेपर टाट बिछाकर एक गुरुजी महाजनी पढ़ाया करते थे । वे पहाड़ा पढ़ाते थे । मैंने पहले पहल वहींसे पढ़ना आरम्भ किया । वहाँसे हरदेवजीकी पाठशालामें चला गया । उसका नाम था धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला । पण्डितजी मथुराके तरफके थे । भागवतके विद्वान् और योग साधक थे । वे गौ पालते थे और विद्यार्थियोंको दूध भी पिलाया करते थे ।

प्रातः ६ बजेसे प्रारम्भ होती थी साढ़े नौ बजे सभी छात्र सभा भवनमें उपस्थित होते थे । तब एक विद्वान् या ऊपर श्रेणीका कोई विद्यार्थी पण्डितजीके आदेशानुसार कोई श्लोक पढ़ता था, उसको सब विद्यार्थी दुहराते जाते थे । इस प्रकार सब विद्यार्थियोंको मनुस्मृति, गीता और नीतिके कितने ही श्लोक कण्ठ हो गये थे । आजतक मेरे मूलधनकी पूँजी वही है ।

पण्डित हरदेवजी सङ्गीतके भी प्रेमी थे । धार्मिक शिक्षाकी तरफ गुरुजीका ज्यादा ध्यान था । साथ ही शारीरिक बल बढ़ानेकी शिक्षा भी वे देते थे, कुश्ती भी लड़वाते थे । हरदेवजीकी पाठशालामें संस्कृत, लघुकौमुदी आदि पढ़ता था ।

आठ वर्षकी अवस्थामें मेरा यज्ञोपवीत संस्कार हुआ । पिताजीने ही गायत्री मन्त्रकी दीक्षा दी थी । सम्भवतः १८८६ में गवर्नमेण्ट हाई स्कूल खुला । मेरी इच्छा अंग्रेजी पढ़नेकी हुई । माताजीसे आज्ञा लेकर मैं स्कूलमें भरती हो गया । उस समय फीस बहुत कम लगती थी । मेरे भाईको तीन आने देने पड़ते थे और मुझे डेढ़ आने । स्कूलमें ग्यारह क्लास थे, दो-दो सेक्शन थे । ग्यारहवें क्लासके दूसरे सेक्शनमें मैं भरती हुआ । हेडमास्टर साहब बड़े भाई पण्डित जयकृष्णको कहते थे कि इतने छोटे बच्चेको स्कूल क्यों लाते हो । भाई साहब ६ वर्ष मुझसे बड़े थे । उन्हींके साथ स्कूल जाया करता था । अंग्रेजी शुरू करनेके बाद संस्कृतमें मैं कम ध्यान देने लगा तब मेरे चाचाने मेरी माँको कहा—इसको अंग्रेजी पढ़नेमें क्यों लगा दिया, संस्कृत पढ़ता तो बड़ा पण्डित होता । मुझपर इसका प्रभाव पड़ा और मैं स्कूल और कालेजतक संस्कृत पढ़ता चला गया ।

स्कूलमें मैं पानी नहीं पीता था. प्यास लगनेपर घर जाकर पानी पी आता था । एक दिन मौलवी साहबने छुट्टी देरसे दी । प्यास बहुत लगी थी, रोता हुआ घर गया । माँसे शिकायत की कि मौलवी साहबने छुट्टी नहीं दी और प्यासके मारे मुझे बड़ी तकलीफ हुई । मैं अब स्कूल नहीं जाऊँगा । मेरे ताऊ पण्डित लीलाधर, जो मेरी बात सुन रहे थे, मेरी पीठपर एक थप्पड़ जड़ दिया और घुड़ककर कहा—जाओ स्कूल ! नहीं जायेंगे, क्यों नहीं जाओगे ? मैं बिना पानी पिये ही रोता हुआ—उलटे पाँव लौट गया । तबसे पानीकी व्यवस्था स्कूलमें ही कर दी गयी थी ।

जब मेरी अवस्था १५ वर्षकी हुई, तब मैं घरमें रखी हुई पोथियोंके बेठन खोलने और बाँधने लगा । बीच-बीचमें पोथियोंको पढ़ता भी रहता था, उनमेंसे मैंने बहुत श्लोक कण्ठ कर लिये थे । उन पोथियोंमें इतिहास समुच्चय नामकी एक पोथी थी, जिसमें महाभारतके चुने हुए ३२ इतिहास हैं, मेरे धर्मसम्बन्धी विचारों और ज्ञानके बढ़ानेमें यह पुस्तक बड़ी सहायक हुई । स्कूलमें भरती होनेके

मालवीयजी महाराजके पितामह पण्डित प्रेमधर मालवीयजी संस्कृतके उद्भट विद्वान्, श्रीकृष्णके परम भक्त थे और यौगिक क्रियामें दक्ष थे। एक दिन पण्डितजी जब गङ्गा स्नानकर लौटे तो देखा वहाँ जनसमूह एकत्रित है। एक शेर मकानमें घुस गया था, पण्डितजी भीतर जाने लगे तो लोगोंने उन्हें अन्दर जानेसे मना किया किन्तु पण्डितजी कमण्डलु लिए हुए भीतर पहुँच गये। शेर मुँह खोले बैठा था—पण्डितजीने उसके मुँहमें गङ्गाजल छोड़कर बाहर निकल आये। शेर भी कुछ देरमें निकल आया। पण्डितजीके कृत्यसे सबमें साहस आ गया था -उन लोगोंने लाठियोंसे शेरकी मरम्मत की। पण्डित प्रेमधरजी चौरासी वर्षकी अवस्थामें गङ्गा तटपर स्नान-ध्यान समाप्तकर स्वेच्छया पद्मासन लगाकर स्वर्गगामी हुए थे।

पण्डित प्रेमधरजीके चार पुत्र थे। सर्वश्री लालजी, बच्चूलालजी, गदाधरजी तथा ब्रजनाथजी। ये ब्रजनाथजी, हमारे चरित्र नायकके पिताश्री थे।

पण्डित ब्रजनाथजी चतुर्वेदीने अपने पिताजीसे संस्कृतका अध्ययन किया था। वे २४ वर्षकी अवस्थामें व्यास बन गये थे। श्रीमद्भागवतकी कथाका ढङ्ग अति रोचक होता था। उनकी विद्या, शरीरकी कान्ति और मधुर कण्ठ स्वर अनायास ही श्रोताओंका आकर्षक बन जाता था। बाँसुरीपर जब उनका कृष्णभक्तिका गान भी श्रोताओंको मुग्ध कर देता था। कई राज घरोंमें उनका सम्मान था। विख्यात कथावाचक होते हुए भी निर्लोभी थे। कथामें जो कुछ प्राप्त हो जाता था, उसीपर वे सदा सन्तुष्ट रहते थे। कथामें वे भावावेश में, कभी रोते. कभी हँसते और कभी गम्भीर मुद्रा धारण कर लेते थे। आचारके बड़े पक्के थे। उनके बाँसुरी गान—

"गावो, मधुरा, गोपा मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा,
दलित मधुर कलितं मधुर मधुराधिपतेर खिलं मधुरम् ॥
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं वचनं मधुरं चरितं मधुरम्।
नलितं मधुरं चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं दलितं मधुरं।
अधरं मधुरं वचनं मधुरं नयनं मधुरं वसनं मधुरं
हँसितं मधुरं कलितं मधुरं वलितं मधुरं मधुराधिपतेर खिलं मधुरम् ॥

उनकी धर्मपत्नी मूना देवी साक्षात् भगवती स्वरूप थीं, दूसरोंके दुःखसे द्रवित हो, जो कुछ बन पड़ता था, सहायताकर दिया करती थीं।

पण्डित ब्रजनाथजीके छः पुत्र और कन्याएँ थीं। क्रमशः श्री लक्ष्मीनारायणजी, सुखदेई, श्री जयकृष्णजी, सुभद्राजी, मदनमोहनजी, श्याम सुन्दरजी, मनोहरलालजी तथा श्री बिहारीलालजी।

जन्म, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत और विवाह

पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने अपने जीवनके बारेमें स्वयं वर्णन किया है, जो इस प्रकार है—

'मेरा जन्म पौष कृष्ण अष्टमी बुधवार संवत् १९१८, २५ दिसम्बर, सन् १८६१ को प्रयाग नगरके मुहल्ला अहियापुर—में हुआ। मैं लड़कपनमें प्रसन्न और चैतन्य रहता था। मेरे मुहल्लेके एक बुरुह साहु मुझे 'मस्ता' कहा करते थे।

लड़कपनमें महाराज बड़े नटखट थे। सभा-सोसायटी, कसरत, कुश्ती, खेल-कूद, हँसी-मजाकमें खूब रस लिया करते थे। स्कूलसे घर पहुँचते किताब, जूता, कपड़े फेंककर खेलने निकल जाते थे।

महाराजने बतलाया—इन्हीं श्लोकोंका विकास मेरे जीवनमें हुआ है। ये ही मेरी सीढ़ियाँ हैं।

१६ वर्षकी अवस्थामें इनका विवाह मिर्जापुरके पण्डित नन्दरामजीकी कन्या सुश्री—कुन्दनजीसे हुआ था। मेरे चाचा गदाधरजी मिर्जापुर गवर्नमेण्ट हाई स्कूलमें हेड पण्डित थे। मैं छुट्टियोंमें उनके पास जाया करता था। एण्ट्रेन्स पास होनेके बाद एक बार मैं मिर्जापुर गया था, गया तो था पत्नीके मोहसे, पर वहाँ एक धर्म सभाका अधिवेशन हो रहा था, उसमें चला गया। एक महन्थ सभापति थे।

कई वक्ताओंके भाषणके बाद गदाधर चाचासे पूछकर मैंने भी धर्म विषयपर भाषण दिया था, उसकी बड़ी प्रशंसा की गयी। लोग मेरी पीठ ठोंकने लगे तबसे मेरा उत्साह बढ़ गया। एण्ट्रेन्स पास करनेके बाद मैं म्योर सेण्ट्रल कालेजमें पढ़ने लगा। कालेजमें पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य सुयोग्य गुरु मिले। वहाँ कालेजमें एक फ्रेण्ड्स डिबेटिङ्ग सोसायटी थी, उसमें पहली स्पीच अंग्रेजीमें दी थी। उससे प्रभावित होकर सबने पीठ ठोंकी। वहाँ एक मण्डलीने एक बार 'शकुन्तला' नाटकके अभिनयमें महाराजको शकुन्तलाका अभिनयके लिए विवश किया और उन्होंने शृङ्गार और करुणा रसोंके हाव भाव दिखलाकर शकुन्तलाके अभिनेताने दर्शकोंको मुग्धकर दिया था। एक सम्मिलनमें 'मर्चेण्ट आफ वेनिस, नामक नाटकमें महाराजने पोर्शियाका पार्ट इस खूबीके साथ किया जब यह कहना पड़ा था कोई अंग्रेजी महिला भी यह पार्ट इतनी खूबीसे सम्भवतः नहीं कर सकती थी।

सन् १८८१ में एफ० ए० की परीक्षा पास की थी। उस समय घरमें गरीबी बहुत थी। घरके प्राणियोंको अन्न-वस्त्रका भी क्लेश था। मामूली-सा घर था, घरमें गाय थी। माँ हाथसे उसको सानी-पानी करती थी और गोबर उठाती थी। स्त्री आधा पेट खाकर सन्तोष कर लेती थी और फटी हुई धोतियाँ सीकर पहना करती थीं।

मैंने बहुत वर्षों बाद एक दिन उससे पूछा—'तुमने कभी साससे अपने खाने-पहननेके कष्टकी शिकायत नहीं की ?" उसने कहा—"शिकायत करके क्या करती ? वे कहाँसे देतीं ? घरका कोना-कोना जितना वे जानती थीं, उतना ही मैं भी जानती थी। मेरा दुःख सुनकर वे रो देतीं और क्या करतीं ?"

परिवार

महाराजकी कुल १२ सन्तानें थीं। ४ पुत्र थे—

१—ज्येष्ठ पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीयजी अधिवक्ता थे। २—पण्डित राधाकान्त मालवीय अधिवक्ता थे। ३—पण्डित मुकुन्द मालवीय व्यवसायी थे। ४—पण्डित गोविन्द मालीय लोकसभाके—सदस्य थे। इनके एक पुत्र पण्डित गिरिधर मालवीय—उच्च न्यायालयके अधिवक्ता हैं।

महाराजकी कन्याओंमें श्रीमती रामेश्वरीजीके पुत्र श्री सचित तथा श्री ध्रुव मालवीय उ० प्र० सरकारमें डाइरेक्टरके पदसे अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। लखनऊमें रहते हैं। दूसरी कन्या श्रीमती मालतीजीका ब्याह काशीके प्रसिद्ध वैद्य स्व० पण्डित रमाशंकर भट्टसे हुआ था, उनके पुत्र वैद्य श्री शिवजी और पुत्री पुतल्ली वर्तमान हैं।

महाराजके बड़े पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीयकी एक कन्या श्रीमती हेमका विवाह श्री श्रीनिवास रामसे हुआ था, जो शिक्षा विभागके डायरेक्टर पदसे अवकाश ग्रहण किये हैं। लखनऊमें अपने निवासमें रहते हैं।

बाद भी पाठशाला जाना नहीं छूटा था। १६ वर्षकी अवस्थामें मैंने एण्ट्रेन्स पास किया था। मेरे चाचा पण्डित गदाधर मालवीयका ५२ वर्षकी आयुमें देहान्त हो गया। वे संस्कृतके बड़े भारी विद्वान् थे। उनके शोकमें मैंने एक 'निर्वाणञ्जलि' लिखी थी उसका एक दोहा याद है :—

हाय गदाधर तत्वधर मालवीय कुल केतु।
इतने थोड़े समयमें प्रान तज्यो केहि हेतु॥

संस्कृतकी जो शिक्षा मुझे प्राप्त हुई है, वह मेरे चचेरे भाई जयगोविन्दके अनुग्रहसे हुई है। एण्ट्रेन्स पास करनेपर मैंने उनसे सम्पूर्ण 'काशिका' पढ़ी।

एफ० ए० की परीक्षा १८८१ में और १८८४ ई० मे कलकत्तासे बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उनकी इच्छा एम० ए० पास करनेकी थी किन्तु घरपर आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और पिताजीपर अंग्रेजीकी पढ़ाई का व्यय-भार बहुत बढ़ जानेसे उन्हें आगेकी पढ़ाईकी इच्छाका त्याग करना पड़ा।

बी० ए० तक संस्कृत पढ़नेसे घरपर भी लगातार अभ्यास करते रहनेसे महाराजको संस्कृतपर पर्याप्त अधिकार प्राप्त हो गया था। यद्यपि अंग्रेजीके समान धारा-प्रवाह संस्कृत नहीं बोलते थे किन्तु वे इतना मधुर बोलते थे कि संस्कृतके विद्वान् भी मुग्ध हो जाते थे। हिन्दी और संस्कृतमें पद्य-रचना भी करते थे।

धार्मिक भावोंकी ओर मेरा झुकाव लड़कपनसे ही था, स्कूल जानेसे पहले मैं नित्य हनुमानजीका दर्शन करने जाता था और यह श्लोक पढ़ता था।

मनोजवं मारुत तुल्य वेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं, श्रीराम दूतं शिरसा नमामि॥

लोकनाथ महादेवके पास पिताजी कथा बाँचने जाते थे। मुट्ठीगञ्जमें भी कथा कहने जाया करते थे। मैं दोनों कथाएँ सुनने नित्य जाया करता था और उनकी चौकीके पास बैठकर बड़े ध्यानसे कथा सुनता था। पिताजीने एक दिन कहा तू बड़ा भक्त है, यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी।

मैं गायत्रीका जप बहुत किया करता था। घरवालोंको शङ्का हुई कि मैं साधु न हो जाऊँ, वे बराबर मेरी निगरानी रखने लगे थे।

महाराजका कहना था कि नीति और धर्मके श्लोकोंका विकास मेरे जीवनमें हुआ है, वे ही मेरी सीढ़ियाँ हैं, मैं तो व्यासमय हूँ—

असन्तो नाभ्यर्थाः सुहृदपिन वाच्यः कृशधनः,
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभगेप्यसुकरम्।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महताम्
सतां केनोद्दिष्टं विषमम सिधारा व्रतमिदम्॥

नीच पुरुषोंसे प्रार्थना न करना, धन से क्षीण मित्रसे भी न मांगना न्यायानुसरण करती हुई वृत्ति रखना, प्राणका नाश हो तो भी पाप न करना, विपत्तिमें भी उच्चमार्गका अवलम्बन करना, बड़ोंके अनुगमन करना ये तलवारकी धारके समान व्रत सत्पुरुषोंको किसने बताया है ?

किशोरावस्थामें उन्हें कसरतका बहुत शौक था। कुश्ती भी लड़ते थे, दण्ड बैठक भी करते थे और मुग्दर भी भाँजते थे। कालेजके दिनोंमें क्रिकेट और टेनिस भी खेलते थे। सार्वजनिक कार्योंमें व्यस्तताके कारण वह सब छूट गया। कभी-कभी आसन कर लिया करते थे।

महाराजकी दिनचर्या :

वे प्रायः प्रातः काल ५ बजे शय्याका त्याग कर देते थे। हरि स्मरण करते उठकर शौचादिसे निवृत्त होकर गीले वस्त्रसे शरीर पोंछकर सन्ध्या करते थे। साढ़े छः-सात बजे वे पैदल या गाड़ीसे भ्रमण करते थे। ९ बजेसे १२ बजेतक लोगोंसे मिलना तथा अन्य कार्य करते थे तथा १२ से १ बजेतक तेल मर्दन। तथा पत्रों एवं समाचार पत्रोंका श्रवण करते थे। उसके बाद पत्रोंके उत्तर लिखाना या लिख देनेका आदेश देते थे। इसके बाद स्नान-भोजन तथा विश्राम करते थे।

तीन बजे दूध-फलका रस आदि लेते थे तथा फिर जन साधारणसे मिलते थे। उनका सोनेका समय १० बजे रात्रि थी।

परिधान :

महाराजको शुभ्र स्वदेशी वस्त्र ही प्रिय था। ब्राह्मणस्य शुक्लाः, कहा करते थे। शिरसे पाँव-तक सफेद वस्त्र धारण करते थे। शिरपर सफेद पगड़ी, चन्दन-चर्चित भाल, गलेमें शुभ्र दुपट्टा, बदनमें सफेद अचकन, सफेद पाजामा या धोती, सफेद मोजा और सफेद जूता। इनमें किसीमें शिकन नहीं होनी चाहिए। उन्होंने लँगोटा मृत्यु पर्यन्त नहीं छोड़ा। सुबहका परिधान मध्याह्नमें बदल जाता था। दोपहरका शामको बदल जाता था। उन वस्त्रोंको साबुन से साफ होनेपर ही पुनः धारण किया करते थे।

"बी० ए० पास करनेके बाद उनकी इच्छा थी कि अपने बाबा और पिताजीके समान वे भी कथा कहें और धर्मका प्रचार करें किन्तु घरकी गरीबीसे सब प्राणियोंको दुःख हो रहा था। उन्हीं दिनों गवर्नमेण्ट स्कूलमें, जिसमें वे पढ़ा करते थे एक अध्यापककी जगह खाली हुई, उसीपर उनकी नियुक्ति हो गयी। उन्हें ५५) रु० वेतन मिलता था।

सामाजिक कार्योंमें अधिक व्यस्त रहनेके कारण महाराजको अध्ययनके लिए समय नहीं मिलता था केवल सात दिनोंकी तैयारीमें उन्होंने सन् १८९१ ई० में वकालतकी परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

मिण्टो मेमोरियल—महाराजकी सूझ, माताकी मृत्यु समय चूक

प्रयागमें मिण्टो पार्कमें विक्टोरिया क्लेमेशन (घोषणा स्तम्भ) की नींव रखनेका कार्य प्रारम्भ होने ही वाला था कि महाराजके घरसे समाचार आया कि उनकी माताजी मरणासन्न हैं। वे पुत्रको देखना चाहती थीं। माताका प्रेम एक ओर और सामाजिक दायित्वका कर्तव्य दूसरी ओर उन्होंने कर्तव्यको प्रधानता दी। माताको देखने न जा सके। थोड़ी देर बाद फिर समाचार आया, नहीं जा सके तीसरी बार जब लार्ड मिण्टो (गवर्नर) का स्वागत पढ़ा जानेवाला था, पुनः माताका अन्तिम सन्देश मिला, वे फिर भी नहीं गये। समारोहकी समाप्तिपर—जब लार्ड मिण्टो सकुशल वापस गये, तब महाराज माताके पास गये। उस समय उनकी वाणी अवरुद्ध हो चुकी थी। उस दिनकी चूकका कोई समाधान नहीं था। यह बात उन्हें जीवन भर सालती रही। अपनी पत्नीके विषयमें महाराजने बत-

आहारके विषयमें महाराजाने बतलाया था :—

स्वास्थ्यके तीन खम्भे हैं—आहार, शयन और ब्रह्मचर्य, तीनों युक्तिपूर्वक सेवन करनेसे स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। मैंने वह आहार किया है—जो राजा-महाराजाको भी दुर्लभ है। मेरा मतलब यह है कि राजा-महाराजा नौकरके हाथका भोजन पाते हैं, जो प्रेमसे नहीं बल्कि वेतन प्राप्तकर भोजन बनाते हैं। मैंने बालकपनसे लेकर युवावस्थाके अन्ततक माता, सास, बहन, सालीके हाथका भोजन पाया है, जो प्रत्येक दिन मेरी रुचिका स्वादिष्ट भोजन बड़े प्रेमसे खिलाती थीं।

लड़कपनमें माँ मुझे आधा पाव ताजा मक्खन नित्य खिलाती थीं। सबेरे मोहन भोग खानेको मिलता था। एक डाक्टरने कहा था कि ज्यादा मक्खन व्यर्थ है क्योंकि वह थोड़ा ही पचता है—शेष यों ही निकल जाता है। माताने कहा—तुम डाक्टरको कहने दो तुम एक छटाक मक्खन और एक सेर दूध रोज लिया करना, तबसे अबतक मैं मक्खन और दूध उसी परिमाणमें रोज लेता हूँ—जैसा माँने बतलाया था।

अरहरकी दाल, जो घरपर बनती थी, मुझे बहुत पसन्द आती थी। अरहरकी दालको पहले घीमें भूनकर उसमें पानी डाल दिया जाता था। जिसमें वह मलाईकी तरह मुलायम हो जाती थी और बहुत स्वादिष्ट लगती थी। बासमती चावल, रोटी, साग, मक्खन और गायका दूध यही मेरा नित्यका आहार था। आज-कल कई वर्षोंसे चावल और दाल करीब-करीब छोड़ दिया है, शेष पहले ही जैसा है।

"युवावस्थामें सबेरे दूध, मक्खन या शहद लिया करता था और तीसरे पहर ३०-४० बादाम पिसवाकर पिया करता था।" मैं चटोरा कभी नहीं था, खटाई-मिठाई दोनों पसन्द थी पर मिल गयी तब, लड़कपनमें मैं मक्खनके साथ बासी रोटी खाया करता था, जो मुझे बहुत लाभदायक जान पड़ी। आमका मुरब्बा, अमावट और आमका मीठा अचार भी मैं बहुत खाता था।

यह पूछनेपर कि खान-पानमें समयकी पाबन्दी तो रखते ही होंगे, महाराजने हँसकर कहा:—

समयका पाबन्द मैं कभी किसी काममें नहीं रहा। जब स्कूल और कालेजमें पढ़ता था और बादमें जब कचहरी जाने लगा था तब तो समयकी पाबन्दी अनिवार्य थी, पर जब-जब इन सबसे छुट्टी मिलती और जब कामसे फुरसत मिलती और भोजन भी तैयार मिला तभी भोजन कर लेता था।

चायके विषयमें महाराजने बताया—"चाय बड़ी ही हानिकारक वस्तु है। एण्ट्रेन्समें था तब परीक्षाके दिनोंमें चाय पीना शुरू किया था। परीक्षामें पास तो हो गया पर चायसे शरीरको बड़ी हानि हुई। रात्रिमें शुक्रपात होने लगा और दस्त होने लगी। दो-तीन सालके बाद इस रोगसे छुटकारा मिला। एफ० ए० परीक्षा निकट आयी। तब फिर दो महीने चाय पी। इससे मन्दाग्नि शुरू हो गयी। इस रोगको हटानेमें भी वर्षों लग गये। यही कारण है कि मेरे शरीरका स्वाभाविक विकास, जो बालपनमें प्रारम्भ हुआ था, रुक गया और शरीरकी क्षीणिता स्थायी हो गयी।"

स्वास्थ्यका दूसरा खम्भा शयन है। इसका महाराजको स्वयं कितना अनुभव था, कहा नहीं जा सकता। इतने व्यापक कामोंके बोझसे जितना सोना आवश्यक था, उतना नहीं सो सके होंगे। महाराजने बतलाया—

"तीसरा खम्भा—ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही घोर परिश्रमका बोझ वहन कर सकता है। फलोंमें सेव उन्हें बहुत पसन्द था। उसका रस निकाल कर पीते थे। भोजनके समय टमाटरका भी रस लिया करते थे।

न केवल प्रेमी थे, प्रत्युत अच्छे कलाकार भी। संस्कृतमें धारा प्रवाह भाषण करते, श्लोक, कविता-रचनामें प्रवीण थे। उर्दू, बङ्गला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंकी उन्हें अच्छी जानकारी थी। उन्हें सितारका अच्छा अभ्यास था। मालकोष—सोहनी आदि रागोंके मर्मज्ञ थे।

पत्रकारिता

सन् १८८४ में कालाकाँकरके राजा रामपाल सिंहसे मालवीयजीकी पहली मुलाकात हुई थी। दूसरी मुलाकात कलकत्ता काँग्रेसके अधिवेशनमें सन् १८८५ में हुई थी। मालवीयजी महाराजने बतलाया था कि—

"मेरा भाषण सुनकर राजा साहब इतने प्रसन्न हुए कि प्रयाग आकर मुझसे मिले और उन्होंने १०) भेंट भी दिया। उनदिनों मैं अध्यापक था। राजा साहबने 'हिन्दुस्तान' साप्ताहिक हिन्दी पत्रके सहायक सम्पादकका पद स्वीकार करनेका आग्रह किया और १५०) मासिकपर मैं बुलाया गया और १५ दिन बाद ही मेरा वेतन २००) मासिककर दिया गया।

"राजा साहब विलायत हो आये थे। वहाँसे वे मेम भी लाये थे। वे शराब भी पीते थे। सबके साथ सब कुछ खाते-पीते थे किन्तु साथ ही बड़े निर्भीक और निःस्वार्थ देशभक्त, गुण-ग्राही और अच्छे वक्ता भी थे।

"इस शर्तपर मैंने सम्पादन स्वीकार किया कि जब राजा साहब खाते-पीते हों तब किसी कामके लिए मुझे न बुलाया जाय। उन्होंने शर्त स्वीकारकर ली और मैं काला-काँकरमें साप्ताहिक हिन्दोस्थानका सम्पादन करने लगा। एक दिन राजासाहबने आवश्यक कार्यसे मुझे बुलाया, उस समय वह नशेमें थे। बातचीतकी समाप्तिपर मैंने उनसे कहा, आजसे मेरा अन्न-जल आपके यहाँसे उठ गया, जो शर्त आपने मुझसे की थी, उसे आपने तोड़ दिया। आपकी उदारता और स्नेहको मैं सदा स्मरण रखूँगा और कल यहाँसे मैं चला जाऊँगा। राजा साहबने बहुत अनुनय-विनय किया पर मैं राजी नहीं हुआ। तब उन्होंने कहा—अच्छा जाइये पर वकालत पढ़ना न छोड़ियेगा, उसका सारा व्यय मैं वहन करूँगा।

"जब राजा साहबने मुझे बुलाया था, उस समय कमरा शराबकी गन्धसे ऐसा भरा था कि मुझे साँस लेनेमें कष्ट हो रहा था। इधर-उधरकी बातोंके बाद उन्होंने पण्डित अयोध्यानाथके सम्बन्धमें कुछ ऐसी बातें कहीं, जो मुझे बहुत अप्रिय लगीं क्योंकि मैं पण्डित अयोध्यानाथका बहुत सम्मान करता था। मैंने शीघ्र ही कागज-पत्र बटोर लिया और वहाँसे उठकर मैं सीधे घर चला आया। फिर १०-१२ दिनोंतक राजा साहबके पास नहीं गया।" एक दिन जब गया, तब खबर पाकर बाहर निकल आये और मेरे सामने सिर झुकाकर कहने लगे—"मालवीयजी! उस दिन नशेमें मैंने क्या-क्या कहा, मुझे बिलकुल याद नहीं है, फिर भी कोई अपमानजनक बात मेरे मुँहसे निकली हो तो यह सिर आपके सामने है, इसपर उसकी सजा दे डालिये।"

लाया था। मैंने घर-गृहस्थीके सम्बन्धमें कुछ पूछ-ताछ की, इसपर उन्होंने "कहा आपको गृहस्थीके कार्योंसे क्या मतलब, जो करते हैं, वही करते रहिए।" अपनी पत्नीके विषयमें उन्होंने सदा सम्मान और सन्तोष प्रकट किया। वे सदा शान्त और जो कुछ मिल जाय, उसीसे सन्तुष्ट रहनेवाली गृहलक्ष्मी थीं। अपनी स्त्रीके साथ गृहस्थीका सुख-धर्मके अनुसार मनुष्य जितना भोग कर सकता है, मैंने उतना भोगा। हम दोनों पति-पत्नी वैवाहिक जीवनके प्रारम्भसे ही राम-कृष्णके उपासक रहे। हम कोई भी काम करते, चाहे दूध चाहे पानी पीते हों, राम-कृष्णका स्मरण किये बिना नहीं पीते।

माता-पिताकी तपस्यासे सद्‌गुणी पुत्र

महाराजकी दृष्टिमें माता-पिताकी तपस्यासे सद्‌गुणी पुत्र होता है। इस प्रसङ्गमें उन्होंने बतलाया था—

जब रुक्मिणीको पुत्र हुआ तो पुत्रकी आकृति श्रीकृष्णके अनुरूप देखकर जाम्बतीने भी वैसे ही पुत्रकी कामना की। श्रीकृष्णजीने कहा कि बड़ी तपस्यासे वैसा पुत्र मिला है। जाम्बतीने कहा—मेरे लिये भी वैसी तपस्या कर दें। श्रीकृष्णजी तपस्या करने चले गये। रास्तेमें महर्षि उपमन्युका आश्रम मिला। श्रीकृष्णजीने उपमन्युसे 'ॐ नमः शिवाय' से मन्त्रकी दीक्षा ली। उस मन्त्रके जपसे शिवजी प्रकट हुए। उन्होंने वर माँगनेको कहा—श्रीकृष्णने वर माँगा :

'धर्मे दृढ़त्वं युधिशत्रुघातं यवस्तथाम्ब्यं परमं बलं च।
योग प्रियत्वं तव सन्निकर्षं वृणो सुतानां च शतानि॥'

पार्वतीजीने उनसे वर माँगनेको कहा—श्रीकृष्णजीने उनसे भी वर माँगा—

'द्विजेत्वकोपं पितृतः प्रसादं वृणे सुतानां परमं च भोगम्।
कुले च प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं समप्राप्तिं प्रवृणे चापि दाक्ष्यम्॥'

वृहद्‌वारण्यककी कथा है कि—

'एक बार प्रजापतिके तीन पुत्र देव, मनुष्य और असुरने उनके पास जाकर क्रमशः अलग-अलग कहा कि हमने ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन समाप्त कर लिया। अब आप कल्याणका कोई उपदेश दें।

प्रजापतिने हरएकको एक ही अक्षर 'द' कहा और हरएकसे पूछा—क्या समझे?

देवोंने कहा—दमन, मनुष्योंने कहा—दान और असुरोंने कहा—दया। प्रजापतिने कहा, जाओ, तुम लोगोंने ठीक समझा। उच्चकोटिके मनुष्य ही देव हैं। वे मन और इन्द्रियोंकी गतियोंसे परिचित होते हैं। उनके नष्ट होनेके बहुतसे रास्ते होते हैं। अतः उनको मन और इन्द्रियोंको दमन करना जानना अत्यन्त आवश्यक है।

मनुष्य, जो जीवनके प्रारम्भसे लेकर अन्ततक असुरोंके परिश्रम और सहयोगसे जीतता है, उसपर इनका ऋण है। उसे चुकानेके लिए उसे दान करते रहना चाहिए। तीसरी श्रेणी असुरकी है, जिनकी प्रकृति तामसी है। उनको दयाकी शिक्षा मिलनी चाहिए। उनमें दया न होगी तो उनका जीवन कष्टमय रहेगा। असुरोंमें दया, मनुष्योंमें दया और दान और देवोंमें, दया, दान और दम—इस क्रमसे मनुष्य समाजकी तीन श्रेणियोंमें गुणोंका वर्गीकरण हुआ है।

मालवीयजी महाराजने अपने देवोपम, गुणोंसे अक्षय प्राप्त किया था, उनमें सर्वगुण सम्पन्नताकी छाप थी। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तानके उन्नायक मालवीयजी महाराज साहित्य, सङ्गीत और कलाके

सलाह हो। ऐसे पत्रका बनाना आपको भी उतना ही इष्ट और प्रिय होगा, जितना मुझको है। किन्तु इस कार्यमें वस्तुतः जितनी सहायता आप कर सकते हैं, उतनी मैं नहीं कर सकता। मैंने बहुतसे कई कामोंकी चिन्ता और बोझ होनेपर भी साहस करके पत्रको जारीकर दिया है। इसको देशके हितके लिए काममें लाना और हमारी उनके योग्य करना आप तथा अन्य देशहितैषी मित्रोंका कर्तव्य है। और यह आप ही लोगोंकी सहायतापर निर्भर है।

यद्यपि अभी यह साहस और अनावश्यक साहस मालूम होगा तथा मेरी यह इच्छा है कि मैं 'अभ्युदय'में लेखकोंको कुछ न्यौछावर भेंट करनेका क्रम जारी करूँ। ऐसे लेखक अभी बहुत कम हैं जिनके लेखोंके लिए कुछ भेंट करना कठिन भी होगा। और पत्रकी वर्तमान अनुसारमें कुछ देनेके योग्य भेंट करना कठिन भी होगा। किन्तु 'अल्पारंभाः क्षेमकराः' इस न्यायसे मैं चाहता हूँ कि उन लेखोंके लिए जो आपके वैदिक कालकी स्त्रियोंके समान आदर सहित पत्रमें छापे जायँ, कुछ पत्र पुष्प अर्पण किया जाय। कृपाकर इस विषयमें अपनी सन्मति लिखिये।

मेरा विचार है कि अभी १।) सवा रुपया कालमसे प्रारम्भ किया जाय। और ज्यों-ज्यों पत्रकी अर्थ सम्बन्धी अवस्था अच्छी होती जाय, त्यों-त्यों भेंटकी रेट बढ़ाई जाय। इससे किसी योग्य मित्रको कुछ ख्याल करनेके नामक आय वृद्धि तो होगी नहीं किन्तु इससे एक ऐसा क्रम प्रारम्भ हो जायगा कि जिससे जो मित्र पत्रके बनाने और बढ़ानेमें सहायक होंगे, वे आगे चलकर देशहित और मातृभाषाके हित साधनके सन्तोषके अतिरिक्त, पत्रके नामसे कुछ आर्थिक लाभ उठानेका भी सन्तोष अनुभव करेंगे। मुझे आशा और विश्वास है कि यदि आप तथा दो-तीन और मित्र जिनको मैं लिख रहा हूँ, पत्रको पूरी सहायता देंगे—तो अचिरकालमें इसके आठ-दस हजार ग्राहक हो जावेंगे।

विशेष आपको लिखना आवश्यक नहीं। मैं आशा और विश्वास करता हूँ कि आप जिस भावसे मैं इस पत्रको लिख रहा हूँ, उसी भावसे आप इसको विचारेंगे। और प्रति सप्ताह एक या दो लेखसे सहायता करेंगे।

मैंने विधवा विवाहका नाम इसलिए निकाल दिया था कि उसमें आपका मत नहीं प्रकाशित था और उससे लेख सर्वजन प्रिय न रहता। मैं आशा करता हूँ आप इससे सप्रसन्न न हुये होंगे।

बा० मिश्रीलालके लेखके विषयमें कब लिखूंगा।

भवदीय
मदनमोहन मालवीय

अभ्युदय

सन् १९०७ में वसन्त पन्चमीके दिन महाराजने अपने सम्पादकत्वमें 'अभ्युदय' निकाला। देश-सेवामें अधिक व्यस्तताके कारण दो वर्ष बाद बा० पुरुषोत्तमदास टण्डन और सन् १९१० से पण्डित कृष्ण-कान्त मालवीय (महाराजके भ्रातृज) ने इसका सम्पादन किया।

"राजा साहबकी नम्रता देखकर मुझे विश्वास हो गया कि उन्होंने जान-बूझकर पण्डित अयोध्यानाथके विषयमें अपमानजनक बात नहीं की थी।"

"सन् १८८६ में मैंने हिन्दोस्थानका सम्पादन छोड़ दिया, फिर भी राजा साहब प्रतिमास १००) मासिक भेजते रहे।"

इस प्रसङ्गमें महाराजने आगे बतलाया :—"जब मैं वकील होकर कमाने लगा, तब भी उनके १००) नियमित रूपसे आते रहे।" मैंने राजा साहबको कई बार लिखा और एक बार मिलनेपर भी कहा कि मैं अब आपका कुछ काम नहीं करता और नोकरीमें भी नहीं हूँ, आप रुपये क्यों भेजते हैं? इसपर राजा साहब बिगड़ गये और बोले—नौकरी में? मालवीयजी, क्या आपने मेरे व्यवहारमें ऐसी कोई बात पायी है, जिससे आपके साथ नौकर-सा बर्ताव पाया जाता हो? आपके पास विद्या है, आप गुणोंकी खान हैं, आप उसके द्वारा मेरी इच्छाकी पूर्ति करते हैं और मैं थोड़े पैसोंसे आपकी सहायता करता हूँ। इससे आपपर मेरा एहसान क्या है? आप जैसे बुद्धिमान व्यक्तिके मुँहसे ऐसी बात सुनकर मुझे दुःख होता है, फिर कभी ऐसी बात नहीं कहियेगा। क्या ऐसा उज्ज्वल चरित्र, आचरण और व्यवहार आज पृथ्वीमण्डलपर देखा या सुना जा सकता है? असम्भव है।

इण्डियन ओपीनियन :

हिन्दुस्तानके बाद मालवीय महाराज 'इण्डियन ओपीनियन' पत्रमें सहायता देते रहे।

हिन्दुस्तान रिव्यू—में सन् १८९९ में तथा १९०३ में महाराजने इण्डियन पीपुल : पटनासे प्रकाशित होनेवाले पत्रोंमें सहायता की थी।

अभ्युदयके सम्बन्धमें महामनाका एक महत्त्वपूर्ण पत्र

श्री : प्रयाग
१६-१-०७

प्रिय महावीर प्रसादजी,

प्रणाम, आपके दोनों कृपा पत्र और दो लेख एक आपका, दूसरा बा० मिश्रीलाल गुप्तका पहुँचा, मैं अबतक स्वीकार पत्र नहीं लिख सका, इसको क्षमा कीजियेगा। मैंने पहिला पत्र अपने हाथसे नहीं लिखा, इसको भी क्षमा कीजिये। कार्य बाहुल्य और श्रमपूर्वक काम न करनेके दुरभ्यासके कारण मुझको अब प्रायः अपने अति सम्मानित मित्रोंको भी दूसरेके हाथसे लिखाकर पत्र भेजना पड़ता है किन्तु जैसा अनुग्रह आप तथा और सम्मानित मित्र मुझपर करते हैं और मेरे हार्दिक भावको जानकर मुझको क्षमाकर देते हैं, इससे मैं इस प्रकारसे काम चलानेको पत्र लिखवाकर भेज देता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि आप इससे वस्तुतः यह कभी न ख्याल करेंगे कि मैं ऐसा मूर्ख या सङ्कुचित हृदय हूँ कि आपके गुणोंका उचित आदर नहीं करता।

आपने मेरे ऐसे पत्र भी कृपाकर तुरन्त प्रार्थित सहायता देना स्वीकार किया। इसके लिए मैं हृदयसे धन्यवाद करता हूँ। मेरी प्रार्थना है कि जहाँतक सम्भव हो आप प्रति सप्ताह एक लेख अभ्युदयके लिए भेजिये। मैं आशा करता हूँ कि इसको स्वीकार करेंगे। हिन्दी भाषामें इस प्रान्तमें एक ऐसा प्रति साप्ताहिक पत्र स्थापन करनेकी चिरकालसे आवश्यकता चली आती है, जिसमें विद्वान्, विचारवान, अनुभव सम्पन्न, देशहितैषी सज्जनोंके लेख छपें और जिसको लिखनेका ऐसे सज्जनोंको

मिण्टो मेमोरियल—महाराजकी सूझ

प्रयागमें दरबार करके लार्ड मिण्टोंने महारानी विक्टोरियाकी घोषणा सुनायी थी। उस स्थानपर कोई स्मारक न होना महाराजको खटकती थी। उनकी इच्छा थी कि स्तम्भ खड़ा करके उसपर घोषणाके वाक्य अङ्कित कर दिये जायँ, जिसको यादगार बनी रहे। उसके साथ विस्तृत पार्क बनाया जाय, जिसके साथ लार्ड मिण्टोका नाम जुड़ा रहे। यह सूझ किसी अंग्रेज शासकके दिमागमें नहीं थी।

सन् १९११ में लार्ड मिण्टोका समय पूरा हो रहा था। महाराजने लार्ड मिण्टोको शिलान्यासके लिए आमन्त्रित किया और उन्होंने स्वीकार कर लिया। उस समय सर जान हिवेट युक्त प्रान्तके गवर्नर थे। उन्हें लार्ड मिण्टोका प्रयाग आना और महाराजका महत्त्व बढ़ाना रुचिकर नहीं था। उन्होंने इस शिलान्यास-कार्यमें सहायता देनेके विरुद्ध बाधा डाली थी।

९ नवम्बर सन् १९१० को किलेके पास यमुनाके तटपर बहुत शानदार उत्सव किया गया। महाराजका सर जान हिवेटकी उदासीनताके कारण कोई उपद्रव न हो जाय किन्तु उत्सव निर्विघ्न समाप्त हुआ था। आल इण्डिया मिण्टो मेमोरियल कमेटीके संयुक्त मन्त्री पण्डित मोतीलाल नेहरू थे। उन्होंने स्वागत पत्र पढ़ा था।

महाराजको किसी मित्र द्वारा मालूम हुआ था कि सर जान हिवेट कह रहे थे कि "मालवीय कैसा अकड़ता हुआ आगे-आगे जा रहा है और मैं चूहेकी तरह पीछे चल रहा हूँ।" किन्तु यह बात बिलकुल गलत थी। शिलान्यासके समय महाराज सबसे पीछे थे—समाप्तिके बाद जब लार्ड मिण्टोने विदा लेना चाहा, तब वे (मालवीयजी) ढूँढ़कर बुलाये गये थे। इस कार्यकी सम्पन्नताके लिए महाराजने एक लाख बीस हजार आठ सौ सत्तानवे रुपया पत्रों द्वारा तथा मिलकर एकत्र किया था। इस समयतक सर्वसाधारण जनता तथा सरकारकी दृष्टिमें महाराजकी लोकप्रियता बढ़ चुकी थी और सभी वर्गके लोगोंने पूर्णतः सहयोग दिया था।

हरिद्वारका गङ्गा नहर आन्दोलन

सन् १८८५ के लगभग सरकारी नहर विभागने हरिद्वारसे एक नहर निकाली थी तबसे नहरकी एक धारा अलग चलती थी और गङ्गाजीकी प्राकृतिक धारा गङ्गा सागरतक अविच्छिन्न जाती थी। सन् १९१४ के लगभग नहर विभागने एक ऐसा बाँध बनानेकी योजना तैयार की, जिसमें गङ्गाकी प्राकृतिक धाराका सब जल नहरमें डाल दिया जाता। यदि यह योजना चल जाती तो गङ्गाजीकी असली धारा हरिद्वारतक ही रह जाती। ऋषिकुल ब्रह्मचर्यके उत्सवमें सम्मिलित होने महाराज हरिद्वार गये थे। वहाँ उन्हें उस योजनाका पता लगा तो वे बहुत दुःखी हुए।

इस योजनापर लाखों रुपये व्यय किये जा चुके थे, सब लोग निराश हो चुके थे। यह प्रतीत होता था कि कलियुगमें गङ्गाजीके लुप्त हो जानेकी भविष्यवाणी सत्य हो जायगी। महाराजकी सम्मतिसे सनातन धर्म महासभामें यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि जो बाँध बनाया जा रहा है, उससे सनातन धर्मको आघात पहुँचता है, अतः सरकार इस कार्यको बन्द करे। प्रस्ताव पास कराकर महाराजने एक मास-तक देहरादूनमें जमकर एक मेमोरियल तैयार किया और उसे प्रकाशित कराकर सरकारके पास महा-राजाओं तथा सर्व-साधारणके प्रतिनिधियों और समाचार पत्रोंको भेजा।

लीडर

महाराजने बतलाया—

'मैंने वकालत छोड़नेका निश्चयकर लिया था और उस समय मेरा यह विचार था कि सार्वजनिक कार्योंसे भी अलग हो जाऊँ, जिससे हिन्दू विश्वविद्यालयका कार्य ठीक ढङ्गसे कर सकूँ। उस समय मेरे मनमें आया कि यदि बिना एक पत्र स्थापित किये मैं सार्वजनिक जीवनसे अलग होता हूँ तो अपने प्रान्तके प्रति अपना धर्म नहीं निबाहता हूँ।

मुझे उसकी आवश्यकता इतनी अधिक जान पड़ी कि मैंने विचार किया कि एक दैनिक पत्र सार्वजनिक जीवनसे अलग होनेके पहले अवश्य स्थापित हो जाना चाहिए। मैंने इस विषयमें कुछ मित्रोंसे परामर्श किया और उन्होंने प्रसन्नतासे उसके लिए धन दिया। सन् १९०६ में यह प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भमें ३४ हजार रुपया इकट्ठा हुआ। दैनिक पत्र चलानेके लिए यह रकम कम थी लेकिन मुझे मित्रोंपर विश्वास था, जिन्होंने सहायता करनेका वचन दिया था।

'लीडर निःस्वार्थ भावसे देशकी और प्रान्तकी लगनसे सेवा की है। इसकी सेवामें कोई सन्देह नहीं कर सकता। शायद ही कोई पत्र हो और अपने मित्रोंके विचारोंकोंके सारे प्रश्नोंको प्रकट कर सके। श्री चिन्तामणि और पण्डित कृष्णराम मेहता—दोनों लीडरकी जान हैं।

जब असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तब मेरे मित्र पण्डित मोतीलाल नेहरूने 'इण्डिपेण्डेण्ट' पत्र चलाया, जिसमें अपने विचारोंको फैला सकें। उसपर दो लाख पचास हजार धन व्यय हुआ, जिसमें एक लाख स्वयं पण्डित मोतीलालजीने और पचास हजार श्री जयकरनने दिया था।

लीडरके ऋण-ग्रस्त होनेपर महाराजने चन्दा एकत्रित करके उसे जीवित रक्खा। सर्वप्रथम अपनी पत्नीसे यह कहकर चन्दा माँगा कि 'तुम यह न समझो कि तुम्हारे चार पुत्र हैं'—तुम्हारा पाँचवाँ पुत्र 'लीडर' है। धनके अभावमें वह मृत्यशय्यापर है अपने पुत्रको मृत्युका ग्रास बनने दूँ? इसपर उनकी पत्नी विचलित हो गयीं और उन्होंने अपना आभूषण बेंचकर साढ़े तीन हजार रुपये महाराजके सिपुर्द-कर दीं। महाराज प्रफुल्लित हो गये उनके प्रेमाश्रु उमड़ आये।

मर्यादा :

सन् १९१० में 'मर्यादा' नामक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन कराया।

हिन्दुस्तान टाइम्स :

दिल्लीसे निकलनेवाले—सन् १९२४ में महाराजने हिन्दुस्तान टाइम्स पत्रकी व्यवस्थामें प्रचुर योगदान दिया।

सनातन धर्म :

सन् १९३३ में 'काशीसे' सनातन धर्म नामक साप्ताहिक पत्रका प्रचलन किया।

दिखलाया थी कि कठिन था । वृद्धावस्थाका शरीर होनेपर भी ऐसी स्फूर्ति दिखाया तो बड़े आश्चर्यकी बात थी । पुरुषोत्तम दास टण्डनने भी इस सत्याग्रहकी तैयारीकी रोचक कहानी सुनायी थी ।

आचार निष्ठा

महाराज पितृपक्षमें प्रतिवर्ष ब्राह्मण भोजन कराते थे । एक वर्ष जब कहीं अन्यत्र जानेका प्रोग्राम नहीं था, उनकी जिज्ञासा हुई कि श्राद्ध करेंगे—कदाचित् उनकी दिव्य अन्तप्रेरणाने भविष्यके आगमके गतिविधिसे उन्हें जागृत कर दिया था ।

उस वर्ष महाराजने साविध श्राद्ध किया था । जब पिण्डदानसे अवशिष्ट चरु शेष रह गया तब महाराजने कर्मकाण्डी-वेदाचार्य पण्डित विश्वनाथ शर्मा पाण्डेयसे प्रश्न किया, अवशिष्टका क्या होगा ?

उत्तर— 'शास्त्रानुसार घरके लोगोंको पितामहके पिण्डसे प्रसाद लेना चाहिए । इसका प्रसाद कल्याणकारक है यदि बहुऐं प्रसाद ग्रहण करें तो पुत्रप्रद योग भी लिखा है किन्तु साधारणतया इस प्रसादके ग्रहण करनेमें लोग अरुचि रखते हैं, इसलिए अवशिष्ट चरुको गौ या कुत्तोंको खिला दिया जाता है, यदि गङ्गाजी सुलभ हों तो, गङ्गाजीमें प्रवाहित कर दिया जाता है ।'

महाराजने शास्त्रवचनके उस स्थलपर अपने पुत्रवधू (पण्डित गोविन्द मालवीयकी पत्नी) से प्रसाद लेनेके लिए पुछवाया कि वह ग्रहण कर सकेगी । उसने कहा कि बाबूजीकी आज्ञा है कि आप प्रसाद ग्रहण करें और उन्होंने आदेश पालन किया था । वर्ष भीतर श्री गिरधर मालवीयका जन्म हुआ । (आज वह उच्चन्यालयके वरिष्ठ अधिवक्ता हैं ।) इसके पूर्व पण्डित गोविन्द मालवीयको प्रायः सात कन्याएँ हुई थीं ।

प्रसाद चिह्नानि पुरः फलानि

आचारके सम्बन्धमें सेठ घनश्यामदासकी डायरीसे—

३१ अगस्त १९३१ राजपुताना जहाज

पण्डितजीकी बात सुनिये । आज तीसरा दिन है पर पण्डितजीकी प्रायः एकादशी ही चलती है । बात यह है कि पण्डितजीका रसोइया बीमार है और आँटे-सीधेके बक्सेका कहीं पता नहीं । पण्डितजीने आज प्रार्थनाकी कि महाराज बोटका चावल-आटा लेना बुरी बात नहीं है किन्तु पण्डितजी कहते हैं कि भूख लगेगी तब ले लेंगे—अभी भूख नहीं है । तबीयत सुधर रही है ।

परसों और कल तो थोड़ा दूध ही लिया । समानके पेटीके लिए सारा जहाज छान डाला किन्तु वह भी गायब कि न पूछिये । पण्डितजी खुद तो खाते नहीं, अपने रसोइयेसे कहते हैं, बैजनाथ थोड़ा खा लो । बैजनाथ क्या खाये ? पेटी तो ब्रह्मलोक चली गयी और जहाजका सामान अभीतक पण्डितजीने लेना स्वीकार नहीं किया—पर आज वे कुछ कमजोर हो गये हैं लेकिन वैसे वे प्रसन्न हैं । समुद्रमें तूफानके कारण दो दिनतक कुछ व्यथित रहे । समुद्रमें तूफान कुछ शान्त हो रहा है । शामको रसोई भी बनेगी ।

पण्डितजीने आनेमें काफी कष्ट उठाया है, उनके प्रकृतिके मनुष्यकी ऐसे सफरमें बहुत कष्ट है किन्तु देशके लिए पण्डितजी सबकुछ सहन कर लेते हैं । सच पूछिये तो पण्डितजीके दृष्टिमें जहाज नरक है इंगलिस्तान राख है । आप कहते थे तुमने अच्छी सी केबिन मेरे लिये सुरक्षित की किन्तु यह है वो

हिन्दुओंके धार्मिक अधिकारोंमें सरकारके हस्तक्षेपसे उत्पन्न और व्यापक विरोधकी सूचना महाराजने सभाओंमें की। गङ्गाजीकी अविच्छिन्न धाराके लिए प्रबल आन्दोलन खड़ा हो गया। परिणाम यह हुआ कि युक्तप्रान्तके गवर्नर सर जेम्स मेस्टनने एक कान्फ्रेन्स बुलायी, जिसमें जयपुर, ग्वालियर, बीकानेर, पटियाला और बनारस आदि छः महाराजा, सात सरकारी अधिकारी, सोलह अन्य सज्जन तथा सभाओंके प्रतिनिधि, जिसमें मालवीयजी महाराज, पण्डित दीनदयालु शर्मा भी सम्मिलित हुए थे।

गवर्नरने कान्फ्रेन्समें यह संस्तुति स्वीकारकर ली कि एक छेद ऐसा कर दिया जाय, जिससे गङ्गाकी धारा अपने प्राकृतिक प्रवाहमें गङ्गासागरतक लचती रहे। गङ्गाजीका अस्तित्व कायम रहा, उस समय महाराजने कहा कि मुझे अपने जीवनमें सबसे अधिक सन्तोष इस कार्यकी सफलतासे हुआ है। मैं परमात्माका धन्यवाद करता हूँ।

त्रिवेणी सङ्गम

सत्याग्रह : अद्‌भुत् दृश्य

सन् १९२४ में प्रयागमें अर्ध-कुम्भी पर्व था। उस वर्ष गङ्गा और यमुनाका सङ्गम किलेके सन्निकट हुआ था, जिससे बीचका स्थान लाखों यात्रियोंकी भीड़के लिए पर्याप्त नहीं था। मेलेके सरकारी प्रबन्धकोंने सरकारसे लिखा-पढ़ी करके यह आज्ञा प्रसारित कर दिया था कि सङ्गमपर कोई स्नान न करने पावे। इससे स्नानार्थियोंमें बड़ी उत्तेजना फैल गयी क्योंकि सङ्गम स्नानके लिए ही भारतवर्षके कोने-कोनेसे लाखों यात्री प्रयाग आते थे। मेलेके सरकारी अधिकारियोंने सङ्गम स्नानको बल्लियोंकी दीवारसे घिरवा दिया था। और उसपर पुलिसका कड़ा पहरा खड़ा कर दिया था। महाराजको इसकी सूचना दी गयी, उन्होंने सरकारसे तथा स्थानीय अधिकारियोंसे शान्तिपूर्ण ढङ्गसे सङ्गम स्नानके लिए अनुरोध किन्तु अनुकूल परिणाम नहीं हुआ।

महाराजको अपना ही नहीं, समस्त हिन्दू जातिका अपमान होना अनुभव हुआ। तीर्थ-स्थानोंपर सरकारकी स्वेछाचारिता उन्हें असह्य हो गयी थी। वे सङ्गम स्नानके लिए चल पड़े। सारा मेला इस दृश्यको देखनेके लिए एक हो गया। लगभग दो सौ व्यक्तिय सत्याग्रहके लिए महाराजके पास पहुँचे। महाराजके साथ दीवार पार करनेके लिए सीढ़ी भी थी। पुलिसने सबको आगे बढ़नेसे रोक दिया और सीढ़ी भी छीन ली गयी तब सब लोग बल्लियोंकी दीवारके पास जाकर लेट गये।

पण्डित जवाहरलाल नेहरूजी महाराजके साथ सत्याग्रही थे। बैठे-बैठे दोपहरसे चला। पैदल और घुड़सवार पुलिस घेरकर खड़ी थी। पण्डित जवाहरलालजी इस तरह हाथपर हाथ धरे देरतक बैठे-बैठे ऊब गये। वे उठे और बल्लियोंपर चढ़कर उस पार कूद गये। उनके पीछे और भी नौजवान उस पार पहुँच गये और बल्लियाँ उखाड़ने लगे अद्‌भुत् दृश्य था।

पण्डित जवाहरलालजीने रास्ता खोल दिया था। महाराज उठे और पुलिसके घोड़ोंके बीचसे होते हुए सङ्गमपर पहुँच गये। रास्ता खुल जानेपर पुलिस वहाँसे हट गयी। यात्रियोंने सोल्लास सङ्गम स्नान किया।

नेहरूजीने अपने जीवनमें इस घटनाके विषयमें लिखा है, मालवीयजीने जो उस समय करतब

स्वराज्यके लिए यज्ञ

महाराजने मनुष्योंमें सद्भाव, विश्वमें शान्ति तथा भारतको पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्तिके लिए काशीमें ८ अगस्त सन् १९४०से १७ अगस्त ४० तक (श्रावण शुक्ल ५ से पूर्णिमा सं० १९९७) तक लगातार १० दिनोंतक महाराज महारुद्र यज्ञ कराया था, उसका सङ्कल्प इस प्रकार है—

॥ यज्ञ सङ्कल्पः ॥

श्रावणे मासि शुक्ल पक्षे नाग पंचम्यां पुण्यतिथौ भारद्वाज गोत्रः त्रिप्रवरः श्री मदनमोहन शर्मा मालवीयोऽहं श्रीपरमेश्वर प्रीतितत्पराशक्तनुग्रह द्वारा इदानीं विश्वस्मिन् जायमान नानाविधोपद्रव शान्तये भारतवर्षस्य पूर्ण स्वातन्त्र्य सिद्धयेच एतेषां भारतवर्षे निवसतां सर्वेषां हिन्दूपदवाच्यानामुचितमानपूर्वकं सर्वविधस्वातन्त्र्य सिद्धये हरिहरात्मकं महारुद्र यागं तथा मार्कण्डेय पुराणान्तर्गस्य—

'सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यार्थितो पिवा ।
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत् संकटात् ॥'

इती मंत्रेण प्रतिमन्त्रं सम्पुटितस्य सप्तशती स्तोत्रस्य सहस्रावर्तनेन सहस्रचण्डपनुष्ठानम् आद्यारम्भ दशभिर्दिनैः तत्तन्नामोत्रैः ब्राह्मणैः कारयिष्यामि ।

यज्ञ भगवानसे प्रार्थनाः—

१—भारतमें शान्ति और न्याय धर्मका राज्य स्थापित हो,

२—भारतको स्वराज्य प्राप्त हो और

३—हिन्दुओंको हिन्दुस्तानमें उचित गौरव मानके साथ रहनेको स्वतन्त्रता प्राप्त हो ।

यज्ञ पूर्णाहुतिके बाद उसी दिन ऊधम सिंहने साण्डर्सकी हत्या कर दी, जिसने जालियाँबाग हत्या काण्ड किया था ।

वकालत

महाराजने सन् १८९१ में वकालतकी परीक्षा उत्तीर्ण की थी । दो वर्षोंके बाद ही वे उच्च-न्यायालयमें पहुँच गये । कुछ ही दिनोंमें उनकी वकालत खूब चमक उठी । प्रातःकाल ही घरपर मुवक्किलोंकी भीड़ लग जाती थी । उन्हें मुवक्किलोंसे अभियोग सुननेका समय नहीं मिलता था । जिस दिन जिस मामलेकी सुनवायी होनी थी, उसका संक्षिप्त विवरण न्यायालय जाते समय मुंशीजी बता दिया करते थे और सम्बन्धित नजीर तैयार रखते थे ।

उच्च न्यालयके जजोंने समय-समयपर महाराजके वकालतकी, बाद प्रस्तुत करनेके ढङ्गकी प्रशंसा की थी, उनका आकर्षक वेष-भूषा-मधुर भाषणसे अंग्रेज जजोंको बाध्य होकर उनकी बातें प्रायः माननी ही पड़ती थीं । उच्च न्यायालयमें बहस करते समय एक मुकदमेमें महाराजने अरबीका एक उद्धरण ऐसे शुद्ध उच्चारणके साथ प्रस्तुत किया, जिसे सुनकर मौलवीय लोग दङ्ग रह गये । इस प्रसङ्गको महाराजने श्रीमुखसे कहा था—

"एक मुकदमेमें एक मौलवी साहबने मुझे वकील दिया था । मुवक्किलने नजीरके लिए अरबी-की कुछ किताबें मिश्रसे मँगायी थी । मैंने उसमेंसे कुछ उद्धरण लेकर नागरी अक्षरोंमें लिख लिया था । मुवक्किल मौलाना महसूद हसन उसे न्यायालयमें पढ़कर सुनाने लगे । उनसे ठीक पढ़ते नहीं बना था

केबिन (कोठरी) ही—यदि स्वदेशका काम न हो तो पण्डितजी ऐसा सफर करनेकी स्वप्नमें भी इच्छा न करें।

पण्डितजीमें प्रेम और आशावादकी कमी नहीं, पेटी गायब हो गयी। सारा जहाज छान डाला तब भी वे कहते हैं पेटी जरूर मिलेगी—गायब कैसे हो सकती है ? इसका उत्तर मैं क्या दूँ ?

दूसरी मजेदार घटना

पण्डितजीके विषयमें यहाँ (पोर्ट सईदमें) छपा है कि पण्डितजी कीचड़की एक मटकी लाये हैं और रोज कीचड़का बुत बनाकर पूजा करते हैं। पीनेका पानी गङ्गाका आता रहेगा, जिसका कुल खर्च १५०००) बैठेगा जो उनके एक धनी मित्रने दिया है।

गोलमेज सम्मेलनमें जब महाराज लन्दन गये थे, तब उनके लिए मैंने ऋषिकेशसे तामेके बड़े-बड़े बीस पीपोंमें गङ्गाजल भरवाकर बम्बई पहुँचाया था—जो जहाजमें साथ गया था। विदेश यात्रासे वापस आनेपर महाराज त्रिवेणी तटपर साविध प्रायश्चित्त किया था।

सन् १९२८ में युक्तप्रान्तके गवर्नरने प्रयागमें प्रस्तावित एक अस्पतालके विषयमें परामर्श करनेके लिए महाराजको आमन्त्रित किया था। उन दिनों पितृपक्षके कारण क्षौर नहीं कराते थे। कई दिनोंतक दाढ़ी न बनवानेसे बाल बहुत बढ़ गये थे। यों एक दिन छोड़कर दूसरे दिन दाढ़ी बनवाया करते थे।

पण्डितजीने बतलाया था कि राजकीय कार्यमें क्षौरके लिए विधान है, अतः दाढ़ी बनवा ली जाय किन्तु महाराजने इसपर ध्यान नहीं दिया और उसी अवस्थामें दाढ़ीके बढ़े बाल सहित प्रयाग पहुँचकर गवर्नरसे मुलाकात की थी।

दिल्लीमें काँग्रेस कमेटीकी बैठक आहूत थी। महाराज ज्वरग्रस्त थे, उनकी अनुपस्थितिमें मीटिङ्ग स्थगित हो गयी। डा० अनसारीने महाराजसे भेंटकर निवेदन किया कि आपकी अनुपस्थितिसे मिटिङ्ग स्थगित कर दी गयी है। आपको ज्वर-मुक्त तो मैं कर दूँगा, अगर आप उसे मञ्जूर करें। मैं आपके लिए एक खास दवा तैयार करवाऊँगा। उसे एक गौड़ ब्राह्मण यमुनाजलसे मेरी देख-रेखमें तैयार करेगा। उसमें मेरे हाथका स्पर्श नहीं होगा। पर मेरी आँखें दवा बनानेके तरीकेपर बराबर बनी रहेंगी। मेरा ख्याल है आपको उसके इस्तेमाल करनेमें कोई एतराज नहीं होना चाहिए।

महाराजने कहा—अमस्य तथा मादक द्रव्योंसे बनी औषधियोंका प्रयोग मैं नहीं करता। मुझे शुद्ध देशी औषधियाँ ही प्रिय हैं। आप शौकसे अपनी दवा दे सकते हैं। महाराजने उस दवाका प्रयोग किया—तीन घण्टेमें वे ज्वर-मुक्त हो गये। डाक्टर साहबने घरवालोंको पहले चेतावनी दे दी थी कि उस दवाका प्रयोग किसी अन्यको नहीं करना चाहिए, केवल पण्डितजीके ही इस्तेमालमें आ सकती है।

महाराजके भ्रातृज पण्डित कृष्णकान्त मालवीय उस समय वहाँ उपस्थित थे, उनकी जिज्ञासा हुई कि दवामें क्या विशेषता है कि डाक्टर साहबने इतना सावधान किया है, उन्होंने परीक्षार्थ एक गोली ले लिया था। कुछ समय बाद उनके शरीरमें भयानक दर्द और ज्वाला मालूम होने लगा—बेचैन होकर उन्होंने डाक्टर अनसारीको फोन किया कि आपकी चेतावनीके बावजूद मैंने एक गोली ले ली थी। कृपाकर उसे शान्त कीजिये।

डाक्टर साहबने उनकी भर्त्सना करते हुए कहा कि मैंने वह दवा केवल पण्डितजीके लिए तैयार करायी थी, वे एक पहुँचे हुए तपस्वी हैं, वे ही उसकी गर्मी बर्दाश्त कर सकते हैं—सर्व साधारण नहीं।

मालवीयजी महाराजका ध्यान इस कमीकी ओर गया, उन्होंने एक छात्रावास बनानेका दृढ़ सङ्कल्प किया। महाराजने घूम-घूमकर धन संग्रह कर इस कार्यको पूरा किया। सन् १९०३ में तत्कालीन गवर्नर एण्टोनी मेकडानलके नामपर 'मेकडानल युनिवर्सिटी बोर्डिङ्ग हाउस,' जिसमें २५० छात्रोंके रहनेके लिए स्थान था, तैयार हो गया। उसके निर्माणमें ढाई लाखके लगभग व्यय हुआ था, जिसमें एक लाखकी धनराशि प्रान्तीय सरकारने दिया था, शेष महाराजने चन्देसे जमा किया था। सन् १९०१ में महाराज प्रयाग म्युनिसिपल बोर्डके वाइस चेयरमैन निर्वाचित किये गये थे।

राजनीति—१

हिन्दू सङ्गठन

सन् १८८० ई० में पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्यके प्रभावसे हिन्दू समाजकी स्थापना हुई। मालवीय महाराज उसके कर्त्ता-धर्त्ता थे, उसीके साथ १८८४ में मध्य हिन्दू सभाके नामसे प्रयागमें स्थापित हुई। सन् १८९१ तक प्रतिवर्ष देशहित और समाज कल्याणकी चर्चा होती रहती थी, इसीके साथ-साथ साहित्यिक विषयके लिए लिटरेरी इन्स्टीट्यूटकी भी स्थापना की गयी थी।

सन् १९०५ में बङ्ग-भङ्ग हुआ। लार्ड कर्जनने हिन्दुओंको बहुत उत्तेजित कर दिया था। उसी उत्तेजनाके फलस्वरूप हिन्दुओंको सङ्गठनकी प्रेरणा मिली। लार्ड मिण्टोका जमाना था—उनको भारत मन्त्री श्री मार्लेका पूरा समर्थन प्राप्त था। भारतमें दमन चक्र बड़ी तेजीसे घूम रहा था। लाला लाजपत रायको देशसे निर्वासित किया गया था। अरविन्द घोष और उनके साथी पकड़ लिये गये और लोकमान्य तिलकको ६ वर्षकी सजा कर दी गयी। इस तरहके प्रत्येक प्रान्तके हिन्दू नेताओंपर प्रहार हो रहा था।

सन् १९०७ में हिन्दू सभाकी बैठक हुई—हिन्दू-हितके कई प्रस्ताव पास हुए। सन् १९०९ में फिर बैठक हुई, इसमें स्वीकृत प्रस्तावके अनुसार लार्ड मिण्टोके साम्प्रदायिक विशेषाधिकारका विरोध करनेके लिए हिन्दुओंका एक प्रतिनिधि मण्डल, जिसके कर्णधार महाराज, लार्ड मिण्टोसे मिला किन्तु कोई सुनवाई नहीं हुई।

सन् १९१३ में कानपुरमें दङ्गा हुआ। हिन्दुओंपर लगातार अत्याचार होते रहे। सन् १९२६ में मालाबारमें मोपलोंने हिन्दुओंको लूटा, उनके घरोंमें आग लगा दी, स्त्रियोंको बेइज्जत किया और यह साबित कर दिया कि हिन्दुओंका कोई रक्षक नहीं। उन दिनों महाराज बीमार थे। स्वयं न पहुँचकर उन्होंने वहाँके हिन्दुओंके लिए धन, अन्न तथा वस्त्रकी सहायता भी पहुँचाई थी। इसके बाद मुलतानमें दङ्गा हुआ, वहाँ भी हिन्दुओंको अपमान और अन्यायका शिकार होना पड़ा। वहाँके अत्याचारको देखकर मुसलमान होते हुए भी हकीम अजमल खाँ रो पड़े थे।

सहारनपुरमें दङ्गा हुआ, वहाँ भी हिन्दू सताये गये। उनकी यह दुर्गति देखकर लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द तथा महाराजने काशीमें अखिल भारतीय हिन्दू महासभाकी बैठक पुनः सन् १९२३ में की, उसमें सनातन धर्म, आर्यसमाजी, जैन, सिख, बौद्ध, पारसी और सभी सम्प्रदायोंके

तब मैंने कहा—मौलवी साहब ! मुझे इजाजत दें तब मैं पढ़ दूँ और आप संशोधन करते जाइये। मैंने पढ़ना शुरू किया और ऐसा पढ़ा कि मौलवी जामिन अली, जो प्रसिद्ध वकील थे, मुकदमा समाप्त होनेपर मुझसे कोर्टके बरामदेमें मिले और मेरा हाथ पकड़कर कहने लगे, पण्डित साहब ! आज मैं नागरी अक्षरोंकी उमदगीका कायल हो गया लेकिन मैं पब्लिकमें यह नहीं कहूँगा।"

सन् १९२९ में मुलतानमें एक नवाब साहब महाराजसे मिलने आये थे और एक घण्टेतक उनकी धारा प्रवाह बातें होती रहीं। लेखक भी वहाँ उपस्थित था किन्तु महाराजके मुखसे एक भी हिन्दी शब्दके प्रयोग सुननेको नहीं मिला था और उनकी बातें समझमें नहीं आयी थीं।

महाराजने अपने मुवक्किलसे कभी भी फीसकी माँग नहीं की। जो रियासतोंके मामले होते थे, वे स्वयं महाराजके ख्यातिके अनुसार दे देते थे। और जो असमर्थ थे, उनको फीससे मुक्तकर देते थे।

शेरकोटकी रानीका मुकदमा जीतनेपर महाराजको बड़ी कीर्ति प्राप्त हुई थी और उससे आमदनी भी इतनी पर्याप्त हुई थी कि उससे उनके अपने गुरुतर ऋणकी अदायगी तो हो ही गयी, घर भी पक्का बनवा लिया गया, उस मुहल्लेमें वही एक पक्का मकान उस समय था। एक मामलेमें विजयी होनेपर मुवक्किलने शुक्रियानेमें ७५०) नकद और एक अच्छी नस्लकी घोड़ी देना चाहता था किन्तु महाराजने यह कहकर अस्वीकारकर दिया कि मुझे फीस प्राप्त हो चुकी है, अतः यह धन मुझे नहीं चाहिए और ब्राह्मणके घरमें घोड़ीकी आवश्यकता नहीं है। विवश होकर मुवक्किलको वापस ले जाना पड़ा।

यद्यपि महाराजकी वकालतकी धूम थी किन्तु उनको समाज सेवा और संस्थाओंसे अवकाश नहीं मिल पाता था। उन दिनों पण्डित अयोध्यानाथने काँग्रेसके जन्मदाता ह्यूम साहबसे यह शिकायत की कि वकालतके चक्करमें मालवीयजीने काँग्रेसके कार्योंमें दिखाई कर दी। इसपर ह्यूम साहबने कहा—ठीक तो कर रहे हैं—और महाराजसे कहा—देखो मदनमोहन ! भगवान्‌ने आपको बुद्धि दी है। यदि मन लगाकर वकालत कर लोगे तो निश्चय ही सबसे आगे बढ़ जाओगे और तब तुम समाजमें प्रतिष्ठित होकर अधिक देश-सेवा कर सकोगे। किन्तु महाराजने अधिक दिनोंतक वकालतके झञ्झटमें नहीं रहे और सन् १९०५ में उन्होंने वकालतका काम कम करना शुरू कर दिया और बादमें उसे छोड़ दिया।

बहुत वर्षों बाद सन् १९२२ में सत्याग्रह संग्रामके इतिहासमें प्रसिद्ध गोरखपुर चौरी-चौरा हत्याकाण्डके कारण प्रायः अच्छे वकीलोंने पैरवी करना पसन्द नहीं किया था। वे कतरा रहे थे। तब महाराजको पुनः वकीलकी हैसियतसे उच्च न्यायालयमें खड़ा होना पड़ा था, जिसमें २२५ व्यक्तियोंपर मुकदमा चलाया गया था, उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया था, जिसकी अपील उच्च न्यायालयमें की गयी थी। महाराजने चीफ जस्टिस और जस्टिस पिगटके समक्ष कई दिनोंतक बहस की थी और १५१ अभियुक्तोंको फाँसीके तख्तेसे बचानेका श्रेय प्राप्त किया था।

हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस

सन् १८०७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालयकी नींव पड़ी। संयुक्त प्रान्तका यह पहला विश्व-विद्यालय था। दूर-दूरसे विद्यार्थियोंके झुण्डके झुण्ड आने लगे, उनके लिए छात्रावास न होनेसे उन्हें बहुत असुविधा होने लगी थी।

मुसलिम लीग सभी प्रतिनिधिक संस्थाओं तथा नौकरियोंमें मुसलमानोंके लिए पृथक् प्रतिनिधित्वका दावा कर रही है। राष्ट्रहितकी दृष्टिमें मैं जातिगत प्रतिनिधित्वका अत्यन्त विरोधी हूँ, पर जबतक मुसलमान स्वेच्छासे उसका दावा त्याग देनेको तैयार नहीं होंगे, तबतक हम भी उसे नहीं छोड़ सकते। इस प्रकारके प्रतिनिधित्वके कारण जातिगत वैमनस्यको बढ़ते देखकर मुझे दुःख होता है। मैं तो यह कहता हूँ कि राष्ट्रीय सरकार और जातिगत शासन दोनों एक साथ चल ही नहीं सकते। आज इस देशमें जातिवादका सार्वजनिक कार्योंपर जितना असर पड़ा है, यदि उतना ही वह बना रहा तो यहाँ पूर्ण राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना लाभदायक न होगी। राष्ट्रवाद और जातियवाद एक साथ नहीं ठहर सकते। एकके आनेके पूर्व दूसरेका जाना अनिवार्य है। इस समय मुसलिम लीग जातिगत प्रतिनिधित्वका प्रश्न उठा रही है। अब इस प्रश्नपर हिन्दुओंका मत निश्चित रूपसे मालूम करके हिन्दू समाजको हिन्दुओंकी राय जानना और उसे प्रकाशित करना चाहिए।

हिन्दू महासभाके वार्षिक अधिवेशन हरिद्वार, दिल्ली, कानपुर, जबलपुर, कलकत्ता, बेलगाँव, अकोला, अजमेर आदि अनेक स्थानोंमें हुए और हिन्दुओंमें सङ्गठनकी प्रवृत्ति जागी। सन् १९२९ में बेलगाँव काँग्रेसके वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर हिन्दू महासभाका भी अधिवेशन हुआ था, जिसके सभापति मालवीयजी महाराज थे। इस अधिवेशनमें गाँधीजी, लाला लाजपतराय, देशबन्धु, मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द, केलकर, सत्यमूर्ति डाक्टर मुंजे, मुहम्मद अली और शौकत अली भी सम्मिलित हुए थे। प्रमुख स्थानोंके कुछ भाषणोंसे मालवीयजी महाराजके विचारोंकी पुष्टि होती है।

कानपुर ११ अप्रैल, १९३१

मैं मनुष्यताका पुजारी हूँ। मनुष्यके आगे मैं जाति-पात नहीं मानता। यहाँ जो दङ्गा हुआ, उसकी जवाबदेही दोनों जातियोंपर है। "मन्दिर अथवा मसजिद नष्ट-भ्रष्ट करनेसे धर्मकी श्रेष्ठता नहीं बढ़ेगी, ऐसे दुष्कर्मोंसे परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता। हिन्दू-मुसलिम दोनोंमें जबतक प्रेम भाव, उत्पन्न नहीं होता, तबतक किसीका भी कल्याण नहीं होगा। एक दूसरेके अपराध भूल जाइये और एक दूसरेको क्षमा कीजिये।"

लाहौरमें : सन् १९३३

"मेरी सदासे इच्छा है कि हिन्दू और मुसलमान शक्तिमान हों और जगतके अन्य समाजोंके साथ खड़े होने लायक बने। दोनों समाजोंका सम्बन्ध इतना दृढ़ होना चाहिए कि उसे कोई तोड़ न सके।" मेरा अपने धर्मपर दृढ़ विश्वास है पर परधर्मका अपमान करनेकी कल्पना मेरे मनको छूतक नहीं गयी है। गिरिजाघर या मसजिदके पाससे मैं जाता हूँ तब मेरा मस्तक अपने आप झुक जाता है। जबकि परमेश्वर-तक ही है तो लड़नेका कारण क्या है? भूमि एक, देश एक, वायु एक, ऐसी स्थिति में दङ्गे-फसाद हों इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात क्या हो सकती है? हमारी रक्षा विदेशी सेना करे, यह बड़े लज्जाकी बात है।"

सन् १९३५ के पूना अधिवेशनमें महाराजके भाषणसे हिन्दू जातिकी उन्नतिके मार्ग निर्बाध रूपसे खुल गये। शुद्धिके सम्बन्धमें महाराजका मत :

"अरब और अफगिस्तानसे अधिकसे अधिक पचास लाख मुसलमान यहाँ आये होंगे। बाकी सब यहींके बनाये हुए मुसलमान हैं। क्रमशः घटते-घटते आज हम लोगोंसे

प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इस महासभामें अन्य प्रस्तावोंके साथ-साथ विवाह विरोधी तथा अस्पृश्यता निवारणके भी प्रस्ताव पास हुए।

हिन्दू महासभा बेलगाँव तथा काशीमें १९२३-२४ के कुप्रथा सम्बन्धी प्रश्नपर महाराजके भाषणका कुछ अंश—

"दुर्भाग्यसे माटैगू—चेम्पसफोर्ड सुधारकोंके प्रकाशित होनेके बादसे ऐसे-ऐसे दल और समुदाय निकल आये हैं, जिनके अस्तित्वकी किसीको शङ्का भी नहीं थी। ब्राह्मण-अब्राह्मण दोनों ही एक हिन्दू सभ्यताके अन्तर्गत हैं। दोनोंको भाई-भाईकी तरह रखना चाहिए था। ब्राह्मणोंको चाहिए कि गुण तथा योग्यता जहाँ-कहीं भी मिले, उनका आदर करें। ब्राह्मणोंका रामकृष्ण और बुद्धकी—जो ब्राह्मण नहीं थे, भक्ति करना इस जातिका प्रमाण है कि गुण कहीं भी मिले, उन्हें उसका आदर करनेमें सङ्कोच नहीं होता था। दुःखकी बात है कि दस-बीस सरकारी नौकरियों तथा दो-एक मन्त्री पदोंके लालच-में, जो हिन्दू मात्रकी एकताके सामने तुच्छ वस्तुएँ हैं, हम आपसमें झगड़ने लगे हैं। जब-तक हमारी बुद्धिमें विकास न आ जाय, हमारे लड़नेका कोई कारण नहीं। क्या महात्मा गाँधी अब्राह्मण नहीं हैं। और क्या यह सत्य नहीं कि आज देशमें जितनी उनकी प्रतिष्ठा है, उतनी और किसीकी नहीं है। मैं अपने ब्राह्मण और अब्राह्मण भाइयोंसे आपसका भ्रम दूर करनेका अनुरोध करता हूँ।"

"अस्पृश्यताका निवारण करनेके लिए महात्मा गाँधीने जो महान् कार्य किया है, उसके लिए वे धन्यवादके पात्र हैं। राजनीतिक दृष्टिसे मनुष्य गणनामें अपनी संख्या अधिक दिखानेके विचारको अलग रख देनेपर भी अपने अछूत भाइयोंके प्रति जो हमारी तरह हिन्दू सभ्यता तथा संस्कृतिके उत्तराधिकारी हैं और जो हिन्दू समाजके अङ्ग हैं, हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं। महासभाने उनके सार्वजनिक स्कूलोंमें भर्त्ती किये जाने, सार्वजनिक कुओंसे पानी भर सकने और मन्दिरोंमें देव दर्शनकर सकनेके पक्षमें अपना मत दिया है पर चूँकि महा-सभाका अहिंसामें विश्वास है और वह दुराग्रह और द्वेषके बलपर नहीं किन्तु प्रेमसे परा-जित करनेके सिद्धान्तको मानती है, इसलिए उसने यह भी कह दिया है कि जहाँ तत्काल ऐसा होना सम्भव न हो वहीं अछूत भाइयोंके लिए नयी संस्थाएँ—कुएँ और मन्दिर खोले और बनवाये जायँ।"

"सदियोंसे मुसलमान लोग हिन्दुओंको मुसलमान बनाते रहे हैं और भारतके मुसलमानोंमें ऐसी संख्या ऐसे ही हिन्दुओं तथा उनकी सन्तानोंकी है। कितने ही ईसाई मिशन भी हिन्दुओंको अपने धर्ममें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। हिन्दू शास्त्रोंने हमें अपना ज्ञान दूसरोंमें फैलानेकी आज्ञा दे दी है, पर अबतक हम कर्त्तव्यकी उपेक्षा करते रहे हैं, केवल आर्य समाजी भाइयोंने थोड़ा बहुत कार्य इस ओर किया है। अतः इस्लामी और ईसाई मिशनोंको स्वधर्म कार्यवाही, स्वधर्ममें लानेके लिए एक हिन्दू मिशनका सङ्गठन बहुत आवश्यक हो गया है।"

जातिवादके प्रश्नका एक और भी पहलू है, वह अब भी महत्त्वपूर्ण होरहा है।

महाराज हिन्दू मुसलिम एकताके पूर्ण पक्षपाती थे। उसके लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। किन्तु उनमें यह गलत फहमी थी कि मालवीयजी हिन्दू राज्यके प्रवर्तक थे। जैसा कि श्री दुर्रानीने आक्षेप किया है। महाराजने अपनी संस्कृतिकी रक्षा करते हुए भारतीय जनमानसमें धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक चेतना उत्पन्न की थी। उनके बढ़ते हुए तेजसे ईर्ष्यालुजन क्षुब्ध होकर उनके विरुद्ध आवाज उठाने की कुचेष्टा की थी। महाराजकी राजनीतिको 'हिन्दूराष्ट्रवाद' समझकर सन्देहकी दृष्टिसे देखते थे और मिथ्या प्रचार करते थे कि वे हिन्दू राष्ट्रीयवादके उन्नायक थे।

यह यथार्थ है कि महाराजको 'हिन्दू' शब्द अत्यन्त प्रिय था, उसके प्रयोगसे उन्हें गौरवकी अनुभूति होती थी किन्तु उनका हिन्दू शब्द सङ्कीर्णतायुक्त केवल हिन्दू जातिके लिए नहीं प्रत्युत हिन्दुस्तानमें बसनेवाले लोगोंके लिए राष्ट्रवाचक था। उन्होंने अपने 'हिन्दू धर्मोपदेश' नामक पुस्तिकामें इसका उल्लेख कर दिया था :—

"पारसीयैर्मुसलमानैरीसाइयैर्यहूदिभिः।
देशभक्तैर्मिलित्वा च कार्या देश समुन्नतिः॥
पुण्योऽयं भारतोवर्षो हिन्दुस्थानः प्रकीर्तितः।
वरिष्ठः सर्वदेशानां धन धर्म सुखप्रदः॥"

विवाहमें वर-शुल्क निषेध व्यवस्था

महाराजकी सूक्ष्म दृष्टिमें समाजमें प्रचलित सभी छोटी-मोटी कुरीतियोंका पूर्ण ज्ञान था और समय-समयपर उसे दूर करनेके लिए विद्वत्परिषद्की व्यवस्था लेकर कुरीति-निवारणमें सफलता प्राप्त की थी।

विवाहमें लेन-देन करारके प्रश्नपर आज देशके कर्णधारोंका ध्यान तीव्र गतिसे आन्दोलनके रूपमें हो रहा है। महाराजने ४५ वर्ष पूर्व अखिल भारतीय सनातनधर्म महासभाकी विद्वत्परिषद् द्वारा उसके निषेधकी व्यवस्था प्राप्तकर व्यापक प्रचार कराया था।

उस व्यवस्थाका हिन्दी रूपान्तर यह है—

"शास्त्रमें अपत्यविक्रमकी घोर निन्दा है और 'अपत्य' शब्दके अर्थमें कन्या और पुत्र दोनों आते हैं, इसलिये प्रत्येक आर्य सन्तानको उचित है कि वह लड़केके ब्याह करनेमें कोई भी रकम लेनेका करार न करे, यह आवश्यक है कि करारकी प्रथा बन्द कर दी जाय।"

"शास्त्रको पूर्ण रीतिसे विचारकर काशीके विद्वानोंकी धर्म परिषद् यह घोषणा करती है कि करार करके कन्याके पक्षवालोंसे तिलक या विवाहके समय अन्य कोई रकम लेना धर्म और समाज हितके विरुद्ध है और लोक-परलोक दोनोंको बिगाड़ना है। जो लोग इस व्यवस्थाको जानकर भी रुपया या जायदाद देनेका करारकर विवाह करेंगे वे पाप और अपयशके भागी होंगे।"

"धर्मशास्त्र और लोक-व्यवहारका विचारकर काशी धर्म परिषद् यह घोषणा करती है कि विवाहमें जहांतक हो सके, कमसे कम बारातियोंको ले जाना चाहिये और जो लोग अधिक बारात ले जाते हैं, उनको समाजकी तरफसे यह निवेदन किया जाना चाहिये कि वे

साढ़े छः करोड़ हिन्दू पर-धर्ममें चले गये। जो लोग जुल्म-जबरदस्तीसे पर-धर्ममें गये हैं, उन्हें शुद्ध करना चाहिए। इनमेंसे बहुत ऐसे भी हैं, जिनको हिन्दुओंने छोड़ दिया है, तिसपर भी वे अपने प्राचीन आचारपर अटल हैं। प्राचीन कालमें ऋषियोंने अनार्योंको आर्य और सभ्य बना लिया था। अतः जो लोग स्वेच्छासे हिन्दू धर्म स्वीकार करना चाहें, उन्हें ऐसा करनेका अधिकार है।

ईश्वरका नाम लेकर चारों ओर घोषणा कीजिये, इससे हिन्दू धर्मका अँधेरा दूर होकर धर्म-सूर्यका उदय होगा और हिन्दू समाज विशाल और बलवान होगा।"

अनाथ : विधवा : रक्षा

पण्डित यज्ञनारायण उपाध्याय तथा पण्डित महादेव शास्त्री (काशी पीठाधीश्वर शङ्कराचार्य) से सङ्गठन सम्बन्धी बातें हो रही थीं। शास्त्रीजीने महाराजसे पूछा—आपके इस उपदेशके अनुसार विधवाकी रक्षा कैसे की जाय ? यदि किसीके विवाहकी आवश्यकता समझी जाय तो उसका विवाह किया जाय या नहीं ?

महाराजका उत्तर : "क्षमा कीजिये—सनातनधर्मी जनतासे सम्मति माँगकर फिर एक बड़ी सभा कीजिये। उस सभाके निर्णयके अनुसार कीजिये। मेरी अपनी राय यह है कि यदि विधवा स्वयं चाहे तो उसका विवाह कर देना चाहिये।

सब धर्मों का आदर : महाराज—सन् १९३६ में डी० ए० वी० कालेज, लाहौरकी जुबलीमें आर्यसमाजके प्रबन्धकोंने महाराजसे निवेदन किया और उन्होंने अपने सभापति भाषणमें स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज द्वारा हिन्दू जातिके सेवाओंका मर्मस्पर्शी वर्णन किया था। काशीमें सारनाथमें बौद्ध यात्रियोंके लिए बिरलाजी द्वारा निर्मित धर्मशालाकी नींव महाराजने रक्खी। सिखोंकी सभामें कई बार गुरुओंके धर्मपर बलिदान होनेकी कथा सुना-सुनाकर उनको प्रेम विह्वल किया। आर्य समाजके एक उपदेशक काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें ईसाई और मुसलमान धर्मपर आक्षेप किया था—जब महाराजको मालूम हुआ तो उन्होंने प्रबन्धकोंको सावधान करा दिया कि ऐसे वक्ताओंको न बुलाया जाय, जिनकी वाणी संयत न हो।

असत्प्रलाप

इतना सब होते हुए भी "मीनिङ्ग ऑफ पाकिस्तान" में दुर्रानीने यह आक्षेप किया है—

उस समयके समाचार पत्रोंमें पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके दौरेका जो विवरण प्रकाशित हुए हैं, उससे स्पष्ट है कि वे ही इस प्रकारके दङ्गोंका सङ्गठन करनेवाले प्रमुख व्यक्ति हैं। पण्डित मालवीयके एक नगरमें जानेके कुछ सप्ताह बाद ही वहाँ भीषण दङ्गा हो गया। फरवरी १९२४ में गाँधीजी जब जेलसे बाहर निकले तो उन्होंने देखा कि सारे देशमें पण्डित मालवीयजीकी भीषण राजनीति व्याप्त है किन्तु उनमें (गाँधीजी) इस स्थितिका सामना करनेका साहस न था। महात्माने इस अग्निको शान्त करनेके लिए कुछ भी उपाय नहीं किया और लगातार सन् १९२३ से १९२७ तक ५ वर्षोंतक मालवीयजीकी दुर्बुद्धि भारतकी राजनीतिक जीवनकी पथ-प्रदर्शिका बनी रही, पर वे कुछ न बोले—महात्माने जब मालवीयजीके हिन्दू राष्ट्रीयतावाद और हिन्दू राज्यके आदर्शको स्वीकारकर लिया तो मालवीयजी स्वयं ही क्षेत्रसे हटकर अपने व्यक्तिगत कार्यमें संलग्न हो गये।

उसी वर्ष प्रयागमें अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्म महासभामें यह प्रस्ताव पारित किया गया कि भारतीय विश्वविद्यालयके नामसे काशीमें एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना की जाय। उसका उद्देश्य इस प्रकार हो :—

(अ) संस्कृत भाषा और साहित्यके अध्ययनकी अभिवृद्धि,

(आ) भारतीय भाषाओं तथा संस्कृतके द्वारा वैज्ञानिक तथा शिक्षा-कलासम्बन्धी शिक्षाके प्रचारमें योग देना।

एवद्देशप्रसूतस्य-सकाशादग्रजन्मनः स्वंस्वंचरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।

काशी में ही क्यों ?

काशीका अर्थ है—काशते-प्रकाशते इति काशी। जहाँसे ज्ञानका प्रकाश मिले। काशीसे ही अनेक आचार्योंने अपने-अपने मतका प्रचार किया था जैसे—शङ्कराचार्य, बुद्ध, कबीर, तुलसी आदि। अतः मालवीयजी महाराजने ५ फरवरी १९१६ बसन्त पंचमीके दिन 'प्रार्चं धर्मं प्रतिफलयितुम्' प्राचीन संस्कृतिके विस्तारके लिए 'हिन्दूनां मानवर्धनः' हिन्दुस्तानमें बसनेवालोंका मान बढ़ानेवाला हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना की।

महाराजकी इच्छा थी कि इस विश्वविद्यालयमें निःशुल्क शिक्षा दी जाय, जिससे निर्धन, असहाय भी शिक्षाका लाभ उठा सकें। उनकी सतत् इच्छा थी कि दस सहस्र विद्यार्थी गुरुकुलकी भाँति निःशुल्क विद्याध्ययन करें।

शिलान्यास

विश्वविद्यालयका शिलान्यास वायसराय लार्ड हार्डिजने रक्खा। समारोहमें भारतीय नरेशोंका जमघट था—उस समयकी छवि निराली और दर्शनीय थी, अद्भुत दृश्य था—'न भूतो न भविष्यति।'

प्रबन्धमें जहाँ मिलिटरीके जवान सुरक्षित हो जाते थे—वहाँ स्कूलके छात्र-सैनिक बराबर डटे रहते थे। मञ्चपर लार्ड हार्डिज, महाराजाधिराज दरभङ्गा और मालवीयजी महाराजका मिलन आकर्षक था।

समारोहमें सम्मिलित महात्मा गाँधीके व्याख्यानसे देशी नरेश भड़क उठे थे, महाराजने उन्हें शान्त किया था। कुछ प्रमुख नरेशोंने विश्वविद्यालयमें अपने चेयरके लिए धनकी घोषणा भी की थी।

धन संग्रह :—का उल्लेख

(राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्तजी, जो महाराजके अनन्य उपासक थे—का वक्तव्य द्रष्टव्य है :—

विश्वविद्यालयका सूत्रपात : चन्दा संग्रह

सन् १९१० के दिसम्बर मासमें प्रयागमें बड़ी भीड़-भाड़ हो रही थी। एक ओर विलियम वेडरबर्नकी अध्यक्षतामें काँग्रेसकी बैठक हो रही थी और दूसरी ओर उसीके साथ सरकारी सहयोगमें

बिरादरीके हितके विचारसे बारातमें कमसे कम पुरुषोंको लायें। और सब प्रकारसे अनावश्यक खर्च बचानेका प्रयत्न करें, इसीमें सब जातिका मङ्गल होगा।"

सभापति—
मदनमोहन मालवीय

पञ्चाङ्ग शोधन : महाराजने समस्त पञ्चाङ्गोंके एकीकरणके लिए ज्योतिष सम्मेलन भी किया था। जिसमें सर्वत्र एकरूपता हो सके।

वृक्षारोपण : आजकल सरकार वृक्षारोपणकी ओर अग्रसर है—महाराजने सन् १९१६ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके समस्त सड़कों तथा अन्यत्र वृक्षों, वनस्पतियोंकी पूर्ण व्यवस्था करा दी थी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सरकारी स्कूलों और कालेजोंमें धर्म शिक्षाका अभाव युवावस्थाके प्रारम्भसे ही महाराजको खटकता था। कालेजसे निकलनेके बाद उन्होंने हिन्दू जातिमें धर्म-शिक्षाके प्रचारके लिए अनवरत उद्योग प्रारम्भकर दिया था। धर्म प्रचारके कार्यमें प्रथम सहयोगी पण्डित दीनदयालु शर्मा (झम्मर) थे। शर्माजीसे महाराजकी मुलाकात सन् १८८६ में कांग्रेसके दूसरे अधिवेशनमें कलकत्तामें हुई थी। दोनों महानुभावोंने वहीं कांग्रेसकी तरह सनातन धर्मकी एक सुसङ्गठित संस्था बनानेका निश्चय किया।

सन् १८८७ में हरिद्वारमें सनातनधर्मियोंकी एक वृहद् सभा पण्डित दीनदयालु शर्माके उद्योगसे हुई। उसमें देशके विभिन्न भागोंसे विद्वान्, सम्मिलित थे और भाषण भी दिया था। उसी सभामें 'भारत धर्म महामण्डल' बनाया गया। महाराज उसके महोपदेशकोंमें गिने जाने लगे। समय-समयपर विभिन्न कार्योंके लिए महाराजने भारतका दौरा किया था, इससे उन्हें समाजकी दुरवस्थाका पूर्ण परिज्ञान हो गया था। वे स्वतन्त्र भारतके निर्माणके लिए अपनी योजना बना चुके थे।

यद्यपि देशमें अनेक विश्वविद्यालय थे, जो सर्वाङ्गीण न थे। उससे कुछ सम्पन्न व्यक्तियोंको ही शिक्षा सुलभ थी और उन्हें छोटी-मोटी सरकारी नौकरियाँ भी मिल जाती थीं किन्तु सर्वसाधारण जनता विशेषतया निर्धन व्यक्तियोंका उससे कोई लाभ न था। ऐसे सर्वसाधारणके लिए सर्वाङ्गीण विश्वविद्यालय, जिसमें मानवोपयोगी सभी शिक्षा दी जा सके। प्राचीन संस्कृतिके विकासके साथ आधुनिक रसायन तथा भौतिक शास्त्र एवं औद्योगिक यान्त्रिक शिक्षा दी जा सके। जहाँके स्नातक अपने-अपने क्षेत्रमें पारङ्गत होकर भारतीय स्वातन्त्र्यमें योग-दान दे सकें तथा भावी भारतीय राष्ट्रीय सरकारका सञ्चालन कर सकें, निर्माण करनेका निश्चय महाराजने कर लिया था। नालन्दा, तक्षशिला जैसे विद्यालयके समान ही वे नये विश्वविद्यालयकी स्थापना करना चाहते थे।

सन् १९०४ में इस योजनाका सूत्रपात प्रथम बार काशिराज महाराजा सर प्रभुनारायण सिंहजीकी अध्यक्षतामें हुआ। सन् १९०५ में काशीके कांग्रेस महाधिवेशनके समय एक सभामें, जिसमें सब धर्मोंके प्रतिनिधि, शिक्षाविद् उपस्थित थे, प्रस्तावित हिन्दू विश्वविद्यालयका स्वागत किया गया।

कुछ लोगोंने सन्देह भी व्यक्त किया था कि क्या ऐसा सम्भव हो सकता है? १ जनवरी १९०६ को राष्ट्रीय महासभा पण्डालमें उसकी घोषणा की गयी। अतः सन्देह करना स्वाभाविक था। सन्देह करनेवालोंको महाराजकी ज्योतिका पता नहीं था, जिसे पागलपनकी बात भी कही गयी।

बड़ी सहायताका वचन दिया और गाड़ी चल निकली। इसी अवसरपर श्री हारकोर्ट बटलर, जो उस समय बड़े लाटके शिक्षामन्त्री थे, मालवीयजी महाराजसे मिले और इनसे बहुत-सी बातें कीं। आपने पहले ही कह दिया कि यदि प्रस्तावित संस्थामें मातृभाषा द्वारा पढ़ानेकी व्यवस्था रही, तो उसमें सरकारी सहायता और सहानुभूतिकी आशा रखना व्यर्थ है। उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि जिस समयतक आप अंग्रेजी भाषामें लिखते, बोलते, पढ़ते-पढ़ाते हैं, तबतक तो हमें शान्ति रहती है क्योंकि उस समयतक हम आपकी सब बातों और चालोंको भली-भाँति समझ सकते हैं, पर जिस समय आप अपनी भाषामें कार्य करना आरम्भ कर देते हैं, तब उसका समझना हमारे लिए कठिन हो जाता है। इस कारण मातृभाषा द्वारा उक्त शिक्षा देनेकी अनुमति सरकारसे किसी अवस्थामें नहीं मिल सकती। न जाने क्या विचार करके कुछ मित्रोंका विरोध रहते हुए भी बाबूने श्री बटलरका इशारा समझकर इस बातको स्वीकार कर लिया और मातृभाषा द्वारा शिक्षा देनेका विचार, एक प्रकारसे छोड़ दिया था यह कहिये कि कुछ दिनोंके लिए स्थगित कर दिया।

इसी समय श्रीमती ऐनी बिसेण्ट देवीके भी तीन व्याख्यान भारतीय विश्वविद्यालयके सम्बन्धमें कलकत्तेमें हुए। इसके उपरान्त एक सार्वजनिक सभामें विश्वविद्यालयकी घोषणा की गई। कलकत्तेमें जो आर्थिक सहायताका वचन मिला था वह प्रकट किया गया और प्रायः ५ लक्षका वचन मिला और धन भी कुछ मिला। हमारी गाड़ी आगे खिसकी। गौरीपुरके जमीन्दार श्री ब्रजेन्द्रराय किशोर चौधरीके मैनेजर श्री मनमोहन घोष बाबू तथा श्री राधाकुमुद मुकर्जी और श्री विनयकुमार सरकारकी —जो नेशनल काउंसिल आफ एडुकेशनके सदस्य थे और अन्तिम दो सज्जन, जो आगे चलकर यहाँके अध्यापक भी हुए—सहायतासे विश्वविद्यालयके विचारका प्रचार बङ्गाली सज्जनोंमें खूब हुआ और कुछ धन भी मिला। परलोकवासी श्री लङ्कट सिंहकी सहायता और उत्साहसे परलोकवासी श्री महाराजाधिराज दरभङ्गासे भी इस सम्बन्धकी चर्चा और सहायताकी आशा हुई। बाबूके लँगोटिया यार और प्रान्तके वयोवृद्ध नेता और कार्यकर्ता, परलोकवासी श्री बाबू गङ्गाप्रसादजी वर्मा भी बाबूके साथ हो लिये और कलकत्ता आ गये। श्री ईश्वरसरनजीने भी साथ दिया। परलोकवासी श्री पण्डित गोकरन नाथ मिश्रजीने भी पूरे सहयोगका हाथ बढ़ाया और गाड़ी चल पड़ी। प्रिय मङ्गलप्रसाद और मैंने बाबूके सफरका प्रबन्ध, धनके खजाञ्चीका काम और इसी प्रकारके फुटकर कार्योंका भार अपने ऊपर ले लिया।

इतने समयके बाद ठीक क्रममें तो चूक हो सकती है पर जहाँतक स्मरण है, विश्वविद्यालयका दौरा बङ्गालमें मालदह और फरीदपुरमें, बिहारमें पटना, मुजफ्फरपुर, भागलपुर और दरभङ्गामें, युक्तप्रान्तमें जौनपुर, काशी, प्रयाग, कानपुर, इटावा तथा पञ्जाबमें अमृतसर और लाहौरमें हुआ। इतनेमें ही प्रायः बीस लाख रुपयोंकी सहायताका वचन मिल चुका था। एक प्रकारसे सारे भारतमें विश्वविद्यालयके आगमनकी दुन्दुभी बज चुकी थी। जनताके उत्साहका ठिकाना न था, मनुष्योंके हृदयमें एक नया भाव और एक नवीन आशाकी बाढ़-सी उमड़ पड़ी थी। कार्यकर्तागण फूले न समाते थे। भिन्न-भिन्न नगरोंकी सभाओंमें दानियोंकी प्रतिस्पर्धा देखने योग्य होती थी।

मुजफ्फरपुरमें एक भिक्षा माँगनेवाली भँगिनने अपनी दिनभरकी कमाई, एक पैसा या एक अधेला, जो उसे मिला था इस यज्ञ-वेदीपर समर्पित कर दिया और दर्शकोंको "शुकलसत्र" की याद दिलाकर चली गई। इसी प्रकार एक व्यक्तिने एक फटी कमीज, जो उसके बदनपर थी, उतारकर

बृहत् स्वदेशी प्रदर्शनी हो रही थी। प्रान्तीय सरकारका लक्ष्य था कि सन् १९०४ की बम्बईकी और सन् १९०६ की कलकत्ताकी प्रदर्शनियोंको नीचा दिखाया जावे। पर वास्तवमें, कुछ लक्ष्य दूसरा ही था। एक मासके लगभग प्रयागमें रहकर भी मैंने अपने उस समयके विचारके अनुसार इस प्रदर्शनीको नहीं देखा।

इसी वर्ष में पढ़ना छोड़कर, बी० ए० में होता हुआ भी परीक्षामें नहीं बैठा। घरपर मेरे सिपुर्द कोई काम नहीं था। समय, उत्साह और स्वास्थ्यकी कमी न थी। पूज्यवर मालवीयजी महाराजसे घनिष्ठता हो गई थी। मैंने उन्हें 'बाबू' पुकारना आरम्भ कर दिया था और उन्होंने भी पिताके सदृश प्रेम और शिक्षा आरम्भ कर दी थी। किन्तु इतना होते हुए भी बाबूके उदार राजनैतिक विचारसे हम बालक लोग सहमत न थे और उनसे इस सम्बन्धमें प्रायः वाद-विवाद हो जाया करता था। वे बड़े प्रेमसे समझानेका यत्न करते थे पर मेरी उस समय गदहपचीसी थी, बात क्यों समझमें आती ? अस्तु।

यह वह समय था जब हिन्दू-कालेजके ट्रस्टियोंमें 'कृष्णमूर्ति'की बात लेकर आपसमें वैमनस्यकी नींव पड़ चुकी थी। हिन्दू-विश्वविद्यालयकी चर्चा सन् १९०४-५ में उठकर एक प्रकार शान्त हो चुकी थी और १९०९ में अलीगढ़में मुस्लिम युनिवर्सिटीकी चर्चाका आरम्भ होकर विचारका स्वरूप पा चुका था। 'गुरु गुड़ ही रहे और चेला चीनी हो गये' की कहावत इस सम्बन्धमें चरितार्थ हो चुकी थी। इसी समय हिन्दू-विश्वविद्यालयकी चर्चा फिर उठ खड़ी हुई।

सिद्धान्तोंको लेकर प्रस्ताव फिर उपस्थित हुआ। श्रीमती ऐनी बेसेण्ट देवी चाहती थीं कि बादशाहका चार्टर लेकर एक सार्वभौम भारतीय विश्वविद्यालय काशीमें खोला जावे, जिसके अन्तर्गत देशके सब प्रान्तोंके कालेज रह सकें और सब जगह यहाँकी परीक्षाके केन्द्र बन सकें। पर इस विचारका अन्त भी एक प्रकारसे हो चुका था और उन्हें इस प्रयत्नमें सफलताकी आशा मिट चुकी थी। इसी अवसर-पर मालवीयजी महाराजने हिन्दू-विश्वविद्यालयका नया विचार नये रूपमें फिरसे उपस्थित किया। प्रयागमें स्यात् इसकी प्रथम बैठक हुई। स्वनामधन्य परलोकवासी श्री पण्डित सुन्दरलालजीसे इस नई सङ्घटित संस्थाके मन्त्रित्वके लिए विनती की गई। उनके पैरोंपर सच्चे ब्राह्मण मालवीयजीकी पगड़ीतक डाली गई, पर उन्होंने हर प्रकारकी सहायताका वचन देते हुए भी और हर तरहसे सहायता देते हुए भी, जबतक सरकारका रुख स्पष्ट न ज्ञात हो जावे तबतक खुलकर स्पष्टरूपमें मन्त्रित्व ग्रहण करनेसे इनकार ही कर दिया। कुछ उपाय न देख पूज्य बाबूने अपने पैरोंपर खड़ा होना ही विचारा और कलकत्तेके लिए प्रस्थान कर दिया। मैं भी उठल्लूके चूल्हेकी तरह बेकार होनेके कारण उनके साथ हो लिया। कलकत्ता पहुँचकर बाबू तो हरिसन रोडपर श्री पण्डित सुन्दरलालजी सारस्वतके गृहपर उतरे और मैं अपनी कोठी श्री शीतलप्रसाद, खड्गप्रसाद, ३०, बरतल्ला गलीमें जा उतरा। पूज्य मालवीयजीने प्रचार आरम्भ कर दिया। परलोकवासी मेरे अत्यन्त प्रियवर, वयसमें छोटे चचा श्री मङ्गलप्रसाद, एम० ए० परीक्षाकी तैयारी कर रहे थे वा स्यात् परीक्षा दे चुके थे। उनके तथा श्री गोकुलचन्दके, जो उनसे और मुझसे भी थोड़े बड़े थे, प्रयत्न और उत्साहसे मेरी कोठीने इस कार्यमें सहायता देना स्वीकार कर लिया। कलकत्ता नगरके बड़े-बड़े महाजनों, साहूकारों और जनताने भी दिल खोलकर इस कार्यमें धन और मनसे सहयोग दिया। स्वनामधन्य वर्तमान बीकानेर-नरेशने भी इस सम्बन्धमें

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि वाइसरायके संरक्षण प्राप्त होनेपर श्रीमान् बाबूसाहबको दुःख हुआ। उन्होंने उस घोषणाको विश्वविद्यालयकी मुख्य घोषणा कहा था : और उसी समय उनके हृदयमें यह भावना स्थिर हो गयी कि एक ऐसी स्वतन्त्र संस्थाका निर्माण आवश्यक है, जिसमें सरकार-का हाथ न हो—फलतः उन्होंने काशी विद्यापीठकी स्थापना की—आगे चलकर वह भी सरकारी विद्यालय हो गया।

उदयपुरकी यात्रा

महाराज जब उदयपुर चन्दाके लिए गये थे तब महाराणा साहबने महाराजको सलाह दी थी कि आपने वकालतका परित्याग कर दिया है अतः एक लाख रुपया आपको इसलिये दे सकता हूँ कि पहले अपने घरका प्रबन्ध करें, परिवार और बच्चोंकी व्यवस्था करें, महाराजने उसे अस्वीकार कर दिया था और वापस आ गये।

महाराणा उदयपुर जब वाराणसी आये थे और हथुआ कोठीमें ठहरे थे—महाराजने उनसे भेंट कर उन्हें विश्वविद्यालय दिखलाया था, उन्होंने एक लाखकी धनराशि विश्वविद्यालयके लिए प्रदान की।

हैदराबादका दान : कुछ भ्रान्तियाँ

मैंने एक पुस्तकमें देखा है कि महाराज जब हैदराबाद चन्दाके लिए गये थे—तो नवाब साहब-ने 'चन्दा देनेसे इनकार कर दिया था—असफल महाराज जब वापस आ रहे थे, तो रास्तेमें किसी समृद्ध व्यक्तिके शवपर उछाला गया रुपया इकत्रित करने लगे—लोगोंके पूछनेपर कि ऐसा क्यों कर रहे हैं, महाराजने उत्तर दिया था कि यहाँसे खाली हाथ काशी जानेपर क्या जवाब दूँगा—जब नवाब हैदराबादको इसका पता चला तो वे बहुत लज्जित हुए और एक लाखका चेक भेज दिया था। यह नितान्त भ्रामक है।

प्रथम—नवाब साहबसे मिलनेके बाद बिना सवारीके पैदल हैदराबादकी सड़कपर यात्रा कर रहे थे, सम्भव नहीं है;

दूसरे—महराज परम आस्तिक थे, शवपर उछाले रुपयेको स्पर्श करना स्वभावतः उनके आचार के विरुद्ध था और

तीसरे—यह कि महाराज किसी भी दशामें ऐसी बात नहीं कर सकते थे, जिससे उस व्यक्तिको चोट पहुँचे या उसे लज्जित होना पड़े, वस्तुस्थिति इस प्रकार है :—

विश्वविद्यालयके लिए चन्देसे प्राप्त एक करोड़की धनराशि समाप्त हो गयी थी, तब तत्कालीन वान्सलर महाराजा बीकानेर सर गङ्गा सिंहजी तथा वाइस चान्सर मालवीयजी महाराजके हस्ताक्षरोंसे दूसरे करोड़की अपील निकाली गयी थी।

अपील प्रकाशित होनेके कुछ दिन बाद महाराजा साहब बीकानेरको निजाम साहबने उसमानियाँ विश्वविद्यालयमें आमन्त्रित किया था—और महाराजा साहबकी अपीलपर सर अकबर हैदरी—प्रधान मन्त्रीने हिन्दू विश्वविद्यालयके लिए एक लाखका चेक महाराजा साहबको दिया था।

प्रदान कर दी थी। इन चीजोंको नीलाम करनेपर सैकड़ों रुपये मिले थे और वे वस्तुएँ भी विश्वविद्यालयको वापस कर दी गई थीं कि ये उसके संग्रहालयमें विवरणके साथ सुरक्षित रखी जावें। यही मुजफ्फरपुरमें एक बङ्गाली महोदयने स्यात् ५ हजार रुपया दान किया था और पुनः उनके गृहपर-जानेपर उनकी पत्नीने अपना बहुमूल्य स्वर्णकङ्कण बाबूको भेंट दिया, जिसे उनके पतिने उसका दूनेसे अधिक मूल्य देकर ले लिया और पत्नीको फिर वापस दे दिया और जिसे उनकी पत्नीने संग्रहालयमें रखनेके लिए पुनः बाबूको दे दिया। यही मुजफ्फरपुरकी एक और घटना भी उल्लेखनीय है। रात्रि हो चली थी, सभामें धन एकत्र हो चुका था। एक ओर उसकी गिनती हो रही थी, दूसरी ओर छोटी-छोटी चीजें नीलाम हो रही थीं। रोशनी जरा कम थी कि एक उचक्का दो थैलियाँ हजार-हजारकी उठाकर चल दिया। पीछे दौड़ हुई पर वह यह जा वह जा नाले और झाड़ियोंमें होकर गायब ही हो गया।

सभी जगह कुछ न कुछ ऐसी घटनाएँ हुई हैं कि जिनका उल्लेख पाठकोंके लिए शिक्षाप्रद और कौतूहलवर्द्धक हो सकता है पर उस ओर न जा मैं दूसरी ओर झुकता हूँ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि विश्वविद्यालयकी दुन्दुभी बजाते हुए बाबू और उनके साथी कलकत्तासे लाहौर पहुँच गये थे। २०,२५ लाखका वचन मिल चुका था। हिन्दू-विश्वविद्यालयका आन्दोलन ब्रह्मपुत्रको बाढ़के सदृश समुद्रकी ओर वेगसे बह रहा था। उसके आगेका पथ रोकना असम्भव हो चुका था। जब शिमला-शिखरसे बाबूके लिए बुलावा आया, बाबूके साथ मैं भी शिमला पहुँचा। परलोकवासी राजा हरनाम सिंहजीकी कोठीमें हम लोग ठहराये गये। बाबू उस समयके वाइसराय लार्ड हार्डिजसे मिलने गये और वहाँसे बड़े प्रसन्न आये और मुझे बुलाकर कहा कि वाइसरायने विश्वविद्यालयको अपनानेका वचन दे दिया है। मेरे काटो तो वदनमें खून नहीं। मैं तो सन्न रह गया और मेरे मुखसे हठात् निकल पड़ा कि—दिस इज दी डेथ निल आफ दी हिन्दू युनिवर्सिटी— अर्थात् यह तो हिन्दू-विश्वविद्यालयकी मृत्यु घोषणा है। अस्तु हम लोग ऊपरसे उतरकर फिर लाहौर वापस आये। लाहौरकी बृहत् सभामें स्वनामधन्य परलोकवासी लाला लाजपतरायने कहा कि— 'चार्टर आर नो चार्टर, हिन्दू युनिवर्सिटी मस्ट एवसाइट'' जिसके उत्तरमें बाबूने कहा कि—''चार्टर एण्ड चार्टर हिन्दू युनिवर्सिटी मस्ट एवसाइट'', इन वाक्योंसे दोनों महान् व्यक्तियोंकी मनोवृत्तिका भली-भाँति पता चल सकता है। अस्तु अब क्या था। अब तो चारों ओरसे लोगोंकी सहानुभूति आने लगी। राजा-महाराजा, उपाधिधारी और देशमें अपनेको सर्वस्व समझनेवाले लोग इधर झुक पड़े और जहाँ गरीब व साधारण लोगोंकी जेबोंमेंसे गाढ़ी कमाईका पैसा एक-एक दो-दोकी संख्यामें भी आता था वहाँ अब बड़े-बड़े लोगोंका बड़ा-बड़ा दान लाखोंकी संख्यामें आने लगा। विश्वविद्यालय जनता और गरीबोंका न रहकर सरकारी छत्रछायाके नीचे मुट्ठी भर राजा-महाराजाओं व बड़े आदमियोंकी संस्था रह गई। लाहौरसे डेपुटेशन आगे बढ़ा, मेरठमें बड़े समारोहसे सभा हुई, १२ घण्टेतकका लम्बा जलूस निकला, परलोकवासी महाराजा दरभङ्गाने आकर शिरकत की और सभापति बनना स्वीकार किया और ५ लाखका दान भी दिया। इसीके पहले पूज्य पण्डित सुन्दरलालजीने भी श्री हारकोर्ट बटलरके कहनेपर मन्त्रित्व स्वीकार कर लिया था। अब बहावका रुख दूसरी ओर चला था और आगे क्या हुआ वह सभी जानते हैं।

"मैं मालवीयजीसे बड़ा देश भक्त किसीको नहीं पाता ।
मैं उनकी पूजा करता हूँ ॥"

वहीं प्रवाहकी धारा इस प्रकार थी :—

"नाश हो उस नरम दलका गरमदल की आँच से ।
मालवीसे मोमदिल जिसमें पिघल जाने लगे ॥"

मालवीयजी महाराज धीर पुरुष थे, महामानव थे, अपनी निश्चित धारणा और दृढ़ विश्वासके विरुद्ध किसी आँधी-तूफानकी परवाह नहीं कर सकते थे । उन्होंने अविचल भावसे उस प्रखण्ड तूफानका सामना किया था । वे इस बातको पसन्द करते थे कि जो छात्र शुद्ध भावसे देश-सेवाकी भावनासे विश्व-विद्यालयमें पढ़ना न चाहे, वह प्रसन्नतासे अपना अध्ययन छोड़कर देश-सेवाका व्रत ले । उनकी आज्ञानुसार सैकड़ों छात्रोंने—उनके चतुर्थ पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीयने भी अध्ययन छोड़कर देश-सेवामें भाग लिया किन्तु अनेक कठिनाइयोंका सामना करते हुए विश्वविद्यालय आगे बढ़ता गया । कभी बन्द नहीं हुआ और समय-समयपर देश धर्म और भारतीय स्वातन्त्र्य संग्रामको सदा सैनिक सहायता देता रहा । विश्वविद्यालय-बहिष्कारके सम्बन्धमें भारतके दो महान् नर पुङ्गवोंके वक्तव्योंका कुछ अंश उपयोगी होगा, जिससे यह स्पष्ट होगा कि दोनोंके लक्ष्य एक-सा है, मार्ग भिन्न हैं । कौन ठीक मार्ग है, इसका विवेचन पाठकोंपर निर्भर है : वक्तव्योंका उद्धृत अंश इस प्रकार है :—

मालवीयजी : २७-११-१९२०

"गाँधीजी कहते हैं चार्टर फेंक दो, लेकिन एक्टमें हम स्वतन्त्र हैं । सब कार्यकर्ताओं, परीक्षकों आदिको कौंसिल मुकर्रर करती है । डिगरी देना-न-देना सब हमारे हाथमें है । चांसलर, प्रो-वाइस-चांसलर सब हिन्दुस्तानी हैं । वाइस-चांसलर—प्रो-वाइस-चांसलरके लिए सरकारकी अनुमति लेनी होती है, लेकिन कोई रोक-टोक नहीं है—किसीको वे (सरकार) नामञ्जूर नहीं करते । यद्यपि बन्धन मुझे प्रिय नहीं है । वे शर्तें लगाना चाहते थे लेकिन शर्तों को बदलवाकर हमने युनिवर्सिटी ली है । इस शर्त को दबसठमें हमने स्वीकार किया—अवसर आनेपर दूर कर देंगे ।

अगर वासुदेव कंसकी शर्तें न मानता, देवकीकी सन्तानको देनेको राजी न होता और कंस आकाशवाणी सुनकर देवकीको मार डालता तो भगवान् कृष्णका जन्म कैसे होता ? हम हिन्दीमें शिक्षा देंगे । मैं नहीं समझता कि विद्यालयके बहिष्कारसे किसी प्रकारका दबाव अंग्रेजोंपर पड़ सकता है । अगर उनके वस्तुओंका बहिष्कार करें तो सम्भव है, उनके ऊपर प्रभाव पड़े—पर विद्यालयोंके छोड़नेसे उनका लाभ है, हानि नहीं और हमारी हानि है—लाभ नहीं । आपको अगर यह शिकायत है कि यह विश्वविद्यालय सरकारी विधानसे बना है इस कारण दूषित है तो मैं यह पूछता हूँ कि क्या रेल भी दूषित है ? रेल भी तो रेल-एक्टके अनुसार चलती है । अगर रेलको हम लोग छोड़ दें तो आज

उस चेकपर मालवीयजी महाराजके समक्ष कई प्रकारकी आपत्तियाँ उपस्थित की गयीं। महाराज सङ्कोचमें पड़ गये और यह निश्चय किया गया कि सम्प्रति इसे अस्वीकार कर दिया जाय क्योंकि निजाम जैसे समृद्धशाली राज्यसे एक लाखका दान विश्वविद्यालयके गौरवके अनुरूप नहीं है, भविष्यमें एक डेपुटेशन जाकर अच्छी रकम प्राप्त की जायगी। इस प्रकारका तार चांसलरको भेजे जानेका निश्चय किया गया—महाराजको यह बात रुचिकर नहीं लगती थी।

तार देनेके पहले मैंने महाराजसे कहा—बाबूजी! क्या इस तारसे महाराजा साहबका अपमान न होगा? उन्होंने कहा यही तो मैं भी सोच रहा हूँ—पता नहीं सबोंके मनमें क्या है? तुम तार रोक दो-न भेजो।

कुछ घण्टों बाद गोविन्दजीने पूछा कि तार चला गया? मैंने कहा तार नहीं भेजा जायगा—यह सुनकर मुझपर नाराज होकर कहने लगे—तुम क्यों बीचमें अड़ङ्गा डाल देते हो। जब बाबूजीने कह दिया था-जाओ, मुझे दो और उन्होंने तार भेज दिया। मैंने महाराजको सूचित कर दिया कि तार चला गया—महाराजने कहा—बुरा हुआ।

महाराजा बीकानेर-चांसलरका उत्तर आया। "चांसलरकी हैसियतसे वह धन मैं स्वीकार करता हूँ।"

महाराज स्वतः जो निर्णय करते थे, उसमें कहीं कोई उलझन नहीं होती थी, लोगोंकी बातोंमें पशोपेश होनेपर परेशानी उनकी बढ़ जाती थी।

महाराजकी इच्छाको भगवान पूरा कर देते थे। एक दिन सेवा उपवनमें दिनमें ११ बजे तैल की मालिस कराते-कराते कुछ चिन्तित हो कहने लगे कि सम्प्रति एक लाख रुपयेकी अत्यन्त आवश्यकता है। इञ्जीनियरिङ्ग कालेजके प्रिन्सिपल किङ्ग साहब की माँग है। कहा गया-आपके लिए धन प्राप्त करना क्या कठिन है? जब इच्छा करें, पूर्ति हो जाया करती है, उन्होंने कहा-उन्हें (प्रिन्सिपलको) देना आवश्यक है और मैं चाहता भी हूँ।

ऐसे ही बातें होती रहीं—इतनेमें तत्कालीन प्रोवाइस चांसलर प्रो० आनन्द शङ्कर बापू भाई ध्रुव सेवा उपवन पहुँचे और महाराजा पटियालाका एक तार महाराजको दिया, जिसमें इञ्जीनियरिङ्ग कालेजके लिए पाँच लाखकी सहायताका उल्लेख था—मालवीयजी महाराज कहने लगे :—

"भगवान्को यह कष्ट करना पड़ा।"

महात्मा गाँधीके शब्दोंमें-महाराज भारतका सबसे बड़े भिखारी थे।

चन्दाके लिए मालवीयजी महाराज जहाँ भी गये, खाली हाथ नहीं लौटे थे।

विद्यालयोंका बहिष्कार

एक ओर विश्वविद्यालयका कार्य सुचारुरूपसे सम्पन्न हो रहा था, उसकी कीर्ति दिग्-दिगन्तमें गूँज रही थी, दूसरी ओर सन् १९२० में महात्मा गाँधीने विद्यालयोंके बहिष्कारका नारा बुलन्द किया—मालवीयजी महाराज इससे सहमत नहीं थे। शिक्षाका बहिष्कार उन्हें कभी और किसी भी दशामें प्रिय नहीं था। उन्होंने इस प्रवाहकी उपेक्षा की—उन्हें अपमानित भी किया गया। स्वयं शिक्षा-बहिष्कारके प्रवर्तक महात्मा गाँधीका भाव मालवीयजी महाराजके लिए यह था कि—

हुई तो निःशुल्क अध्यापन करेंगे किन्तु नगण्य सरकारी अनुदान न मिलनेके कारण त्यागपत्र न दें। हस्ताक्षर पत्र शीघ्र ही उनकी सेवामें पहुँच जायगा।"

मैंने रविवारको प्रातःकाल नैनी जेलमें उन्हें सूचना दे दी (लेखकको यह सुविधा जेल अधिकारियोंसे प्राप्त थी, किसी दिन, किसी समय महाराजसे मिल सकता था) सुनकर महाराज बोले—ऐसी स्थिति हो गयी—तुम ३ बजे रहना।

मध्याह्नोत्तर ३ बजे उपर्युक्त तीनों सदस्य पहुँचे। महाराजने उनका स्वागत किया। उन लोगोंने सरकारी कोप और उसके मार्जनकी विधिसे महाराजको अवगत कराया।

महाराजने अपने ढङ्गसे उन लोगोंको बतलाया कि 'मेरा स्वास्थ्य दुर्बल है, काम नहीं हो पाता, यह सर्वथा उचित है कि मुझे इस भारसे मुक्त हो जाना चाहिये किन्तु 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' जल्दबाजीमें कोई काम नहीं करना चाहिये। अतः 'कश्चित कालः, प्रतीक्षताम्' कुछ समयकी प्रतीक्षा की जाय। सुनकर वे लोग वापस हो गये।

उधर लन्दनमें स्व० डाक्टर सर तेजबहादुर सप्रूने तत्कालीन भारतमन्त्रीसे कहा था कि 'आप लोग भारतमें केवल एक मालवीयजीको महान् और उनका सम्मान भी करते हैं, उन्हें भी जेलमें बन्द कर दिया गया है' सुनकर भारतमन्त्रीको आश्चर्य हुआ था, उन्होंने तत्काल वाइसरायको केबुल दिया कि मालवीयजीको तुरत मुक्त किया जाय।

कुछ ही दिनों बाद जेलमें उन्हें कालिकपेन शुरू हो गया। सरकारको बाध्य होकर सरकारी अस्पताल और वहाँसे उठाकर उनके बँगले (मालवीय भवन) पहुँचा दिया गया। ऐसी दशामें प्रस्तावित त्याग पत्र देनेका प्रश्न ही समाप्त हो गया।

मालवीको आजतक कोई नहीं सर कर सका,
उनसे लड़नेमें यकीनन आप सर हो जायँगे।'

कुछ रोचक-प्रसङ्ग

अस्थायी नियुक्तियाँ

मालवीयजी महराजने अपने कुलपतित्व कालमें कुछ अस्थायी नियुक्तियाँ की थीं।

१. धर्मविज्ञान विभागमें सहायक अध्यापककी अस्वस्थताके कारण तत्कालीन प्रधानाचार्यने अपने पुत्रकी नियुक्ति-पत्रपर कुलपतिकी स्वीकृतिके लिए स्वयं महाराजके पास पधारे थे।

पत्र पढ़नेके बाद कुछ सोचने लगे। उनसे निवेदन किया कि आपने प्राच्य विद्या विभागमें व्याकरण, साहित्य और ज्योतिषमें सर्वोत्कृष्ट स्नातकोंको क्रमशः पण्डित राजनारायण पाण्डेय, पण्डित महादेव शास्त्री तथा पण्डित रामव्यास पाण्डेय ज्योतिषीकी नियुक्ति की है किन्तु धर्म विज्ञान विभागमें सर्वोत्कृष्ट वेदाचार्य पण्डित रामजी द्विवेदी अभी वञ्चित हैं, वे पटनामें वेदका अध्यापन करते थे।

बम्बई–शिमला कैसे जा सकेंगे ? गाँधीजी काशी कैसे आ सकेंगे ? देशका काम कैसे किया जायगा ?

क्या आप रेल छोड़ देंगे ?

युनिवर्सिटी मत छोड़िये ··· जो विश्वविद्यालय मौजूद हैं, उन्हें रहने दीजिये, उनसे काम लीजिये। जितना सामर्थ्य है, वह सब स्वराज्यके पानेमें लगाइये। सब लोग गम्भीर भाव और शीतल बुद्धिसे विचार करें––सबकी बात सुनकर उसपर विचारकर देश-हितका जो मार्ग आपका हृदय बतावे उसका अवलम्बन कीजिये––ईश्वर आपका कल्याण करें।"

महात्मा गाँधी २८-११-१९२०

"मैंने पण्डित मालवीयजीका व्याख्यान भी कल पढ़ लिया- उसमें मेरे पूज्य भाईने जो कहा है कि विद्यार्थियोंको सोचकर जो उनकी आत्मा कहे, उसीपर चलना चाहिये। मैं भी यही कहता हूँ। मैं मालवीजीसे बड़ा देशभक्त किसीको नहीं पाता। मैं सदैव उनकी पूजा करता हूँ। मेरे दुःखको वही दूर करेंगे।"··· मुझसे कुछ दिन पहले एक महाशयने कहा कि तुम पण्डितजी (मालवीयजी) का नाश करना चाहते हो ? आप बनारस मत जाइये लेकिन मैं पण्डितजीकी आत्माको दुःखी नहीं करना चाहता। पण्डितजी नामर्द नहीं हैं। पण्डितजी भारत मात्रके लिए जीते हैं। वह एक विश्वविद्यालयके लिए नहीं मर सकते। यदि आप विद्यालयमें पढ़ना पाप समझकर उसका त्याग करेंगे, तो पण्डितजी-को तनिक भी दुःख नहीं होगा और पण्डितजी आपको आशीर्वाद देंगे।"

(दैनिक 'आज' वाराणसी)

सरकारी कोप : शिक्षकोंकी त्याग भावना

छात्रोंके स्वराज्य दिवस मनाने और झण्डा फहरानेके कारण ब्रिटिश शासनने विश्वविद्यालयके लिए प्राप्त नगण्य अनुदान बन्दकर दिया था। मालवीयजी महाराज कुलपति थे और केन्द्रीय कारागार, नैनीमें राजनैतिक बन्दी थे।

उस समय विश्वविद्यालयके सदस्योंके एक पक्षने एक योजना बनाकर भारत सरकारको अवगत कराया कि मालवीयजी स्वयं राजनीतिक हैं और जेलमें हैं। उनका प्रभाव छात्रोंपर पड़ना स्वाभाविक है, उनके स्थानपर दूसरा कुलपति बनाया जाय तो ऐसी घटनाएँ नहीं हो सकेंगी। फलतः प्रो–वाइस चांसलर स्व० आनन्दशङ्कर बापू भाई ध्रुव, पण्डित बलदेवराम दवे तथा जस्टिस कन्हैयालालजी महाराजसे कुलपतित्वसे त्यागपत्र लेनेके उद्देश्यसे नैनी जेल गये थे।

उपर्युक्त योजना और महाराजसे त्यागपत्र प्राप्त करनेकी बात मालूम होनेपर तत्कालीन रजिस्ट्रार पण्डित इन्द्रदेव तिवारी तथा प्रिंसिपल के० के० माथुरने रात २ बजे लेखकको जगाकर बतलाया कि "कल रविवारको ३ बजे दिनको उपर्युक्त महानुभाव महाराजसे कुलपति पदका त्यागपत्र प्राप्त करनेको प्रयाग जा रहे हैं। उसके पूर्व ही तुम पण्डितजीको समझा दो कि किसी भी दशामें वे त्यागपत्र न दें। यहाँ अध्यापकगण हस्ताक्षरकर रहे हैं कि वे त्यागपत्र न दें। वे अर्ध वेतनपर और यदि आवश्यकता

पण्डित चन्द्रशेखर पाण्डेयकी भी दो मास बाद हिन्दू स्कूलमें नियुक्ति हो गयी ।

३—रणवीर संस्कृत पाठशालाध्यक्ष

पण्डित राजाराम शुक्ल साहित्याचार्य अ० भा० सनातन धर्म महासभाके उपदेशक थे । वे बाहर प्रचारमें थे—पाठशालाके अध्यक्ष पदके लिए शीघ्र नियुक्तिका प्रश्न उपस्थित था—महाराजका ध्यान इस ओर आकृष्ट करनेपर कि इस कार्यमें लगे रहनेपर भी प्रचारमें पण्डित राजारामजी योगदान देते रहेंगे, अनेक अभ्यर्थियोंमें स्कूल बोर्डकी मीटिङ्गमें उनकी नियुक्ति कर दी गयी थी ।

पण्डित मधुसूदन मिश्र

विरला परिवारसे सुपरिचित पण्डित मधुसूदन मिश्र महाराजसे प्रायः मिलते रहते थे ।

गर्मीके दिनोंमें बँगलेके सामने बने चबूतरेपर—जहाँ अब उनकी प्रतिमा लगी है, महाराज रात्रिको शयन करते थे ।

एक दिन मेरी अनुपस्थितिका लाभ उठाकर मधुसूदनजी १० बजे रात्रिके बाद चबूतरेपर चले गये । महाराज बहुत नाराज हो गये । दुःखी होकर मधुसूदनजीने मुझसे कहा कि रातमें जब मालवीय-जीसे मिला तो बहुत नाराज हो गये—वे किसीसे नाराज भी हो सकते हैं, यह सम्भव नहीं है, अवश्य तुमने मेरे विरुद्ध कुछ कह दिया होगा । मैंने कहा कि यह आपका भ्रम है, आप अपनी गलती नहीं समझ रहे हैं, उनके शयन स्थलपर पहुँचकर उन्हें उद्वेलित करें ? निद्रामें खलल डालें ?

महाराजने रातकी घटनासे मुझे भी अवगत कराया—मैंने बतलाया कि उनका भ्रम था कि मैंने उनके विरुद्ध आपसे कुछ कहा है, जिससे आप नाराज हो गये क्योंकि आप किसीसे नाराज भी हो सकते हैं, ऐसा वह नहीं समझते ।

महाराजने कहा कि वह काम चाहता है—कोई स्थान नहीं है, जहाँ उसकी व्यवस्था कर दी जाय । तुम राजा विरलासे कुछ धन ले आओ तो उस धनपर कुछ समयतक चलता रहेगा । उस समय ५०) मासिकपर सहायक अध्यापक नियुक्त होते थे मैंने राजा बलदेव दास विरलासे दो सहस्र की धनराशि विश्वविद्यालय कोषमें जमा करा दिया—उसपर मधुसूदनजीकी अस्थायी नियुक्ति हो गयी । कुछ दिनों बाद स्थायी नियुक्ति भी हो गयी—बादमें पण्डित मधुसूदनजीने साहित्य विभागाध्यक्ष पदपर प्रतिष्ठित होकर अवसर ग्रहण किया था ।

सिनटेकी मीटिङ्ग

सन् १९३८ में कायाकल्पके बाद मालवीयजी महाराज अष्टभुजा (मिर्जापुर) के डाक बँगलेमें स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे । विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रार तीन प्रोफेसरोंके साथ वहाँ पहुँचकर माहाराजसे आग्रह की कि मीटिङ्गमें आपकी उपस्थिति अनिवार्य है अन्यथा डाक्टर भोलानाथ सिंह विजयी हो जायेंगे । महाराजने मीटिङ्गमें पधारना स्वीकार कर लिया ।

उन लोगोंके वापस होनेपर मैंने कहा कि आप यहाँ विश्राम करने आये हैं, इस भीषण गर्मीमें

अध्यक्ष महोदयने बतलाया कि वह काशीसे बाहर हैं, उनका सस्वर-ज्ञान लुप्त हो गया होगा। यह सुनकर महाराजको आश्चर्य हुआ और कहा "पण्डितजी आपकी संस्तुतिपर कुलपतिकी स्थिति मैंने उन्हें वेदाचार्यकी उपाधि प्रदान की है अब आप यह कह सकते हैं कि काशीसे अन्यत्र रहनेके कारण उनका सस्वर-ज्ञान लुप्त हो गया होगा ? यदि यह मान भी लिया जाय कि निरन्तर अभ्यास न करनेपर कुछ कमी आ गयी हो, तो आपकी छायामें वह पुनरुज्जीवित नहीं हो जायगी ?'

अध्यक्षजी निरुत्तर हो गये। महाराजका आदेश हुआ कि 'तार देकर उन्हें बुला लो। पण्डित रामजी द्विवेदीकी नियुक्ति कर दी गयी।

मैं अध्यक्ष महोदयका कोप-भाजन बन गया।

२. धर्मशास्त्र विभागमें शास्त्राचार्य परीक्षामें सर्वोत्कृष्ट प्रज्ञाचक्षु पण्डित रघुनन्दन शर्मा (?) ने सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया था। उन्हें शास्त्रीय सङ्गीतका भी अच्छा अभ्यास था। मालवीयजी महाराजने उनके वैदुष्यसे प्रभावित होकर उन्हें धर्मशास्त्र विभागमें अवैतनिक सहायक अध्यापककी नियुक्ति इस अभिप्रायसे कर दी थी कि स्थान मिलनेपर स्थायी काममें लग जायेंगे। कुछ ही दिनोंमें उन्हें दिल्लीमें स्थान मिल गया। आज उनकी गणना करोड़पतियोंमें है।

मेरे पड़ोसी और साथी पण्डित विश्वनाथ शर्मा पाण्डेय वेदाचार्य और धर्म शास्त्राचार्यने धर्मशास्त्र विभागमें अवैतनिक सेवाकी जिज्ञासा की थी, भावुकतावस मैंने वचन दे दिया कि प्रार्थनापत्र दे दीजिये—अवश्य हो जायगा।

जब महाराजके समक्ष उनका पत्र प्रस्तुत किया—तब उन्होंने कहा कि मैंने तो मना कर दिया था फिर कैसे प्रार्थना पत्र दे दिया। मुझे पण्डित विश्वनाथजीके आचरणपर क्लेश हुआ फिर भी अपने वचनके अनुसार महाराजसे निवेदन किया कि जिस प्रकार आपने स्थायी काम न मिलनेतक रघुनन्दनजीको नियुक्त किया था—दो-दो विषयोंके आचार्य यदि कुछ दिन अध्यापनमें लगे रहेंगे, तो उनके ज्ञानमें वृद्धि होगी, अंग्रेजीवालोंके लिए ट्रेनिङ्ग कालेज है संस्कृतवालोंके लिए ऐसी सुविधा नहीं है, महाराज सुनते रहे—

उस समय कौंसिलके सहायक मन्त्री पण्डित यज्ञनारायण उपाध्याय वहाँ बैठे थे, उपरोक्य बातोंसे उन्हें स्पष्ट हो गया कि मेरे निवेदनमें कुछ बल है—उन्होंने कहा कि इस पदके लिए पण्डित चन्द्रशेखर पाण्डेय उपयुक्त होंगे। मैंने कहा वे इतने सस्ते नहीं हैं, जो अवैतनिक सेवा कर सकें, वे अभी सेण्ट्रल हिन्दू स्कूलमें रिक्त होनेवाले स्थायी पदके लिए परमोपयोगी होंगे।

महराजकी आज्ञा हुई कि लिख दो धर्मशास्त्रमें अस्थायी अवैतनिक अध्यापक नियुक्त किया गया १५) मासिक मार्ग व्ययके साथ।

आगे चलकर पण्डित विश्वनाथ शर्माने अपने पाण्डित्य और मृदु व्यवहारसे अधिकारियोंको प्रसन्न कर कालान्तरमें सङ्काय प्रमुख होकर १५००) से ऊपर मासिक वेतन पानेके बाद अवकाश ग्रहण किया।

प्रेमसे समझाया। "यह विश्वविद्यालय एक गुरुकुल है, जहाँ गुरु-शिष्य निवास करते हैं और शिक्षा देते-दिलाते हैं, सभी अध्यापक आपके सहयोगी आपके बराबर हैं। उनमें ऐसी भावना रखना उचित नहीं है, वे आपके अधीन या नौकर नहीं हैं, यह राज्य नहीं है--जहाँ प्रजा-सा व्यवहार किया जाय। समानताका व्यवहार रखनेमें ही विश्वविद्यालयका गौरव है।"

प्रो-वाइसचांसलर

राजा ज्वालाप्रसादके बाद विश्वविद्यालयके प्रो-वाइस-चांसलर पदके लिए महाराजके समक्ष एक समस्या हो गयी थी। अपने मित्रोंपर दृष्टि दौड़ानेपर उन्हें सात्विकता, विद्वत्ता, न्याय प्रियता और त्याग-भावना-सबका-समन्वय केवल पण्डित एकबाल नारायण गुर्टुजीमें देख पड़ा।

गुर्टुजी उन दिनों प्रयागमें थे। महाराजने पत्र लिखकर उनसे अनुरोध किया था कि इस समय विश्वविद्यालय आपके मार्गदर्शनकी आकांक्षा रखता है। अतः आप कृपाकर प्रो-वाइस-चांसलरका पद स्वीकार करें। शन्होंने उत्तर दिया कि स्वास्थ्यकी दुर्बलताके कारण यह भार वहनमें असमर्थ हूँ। तब महाराजने पुनः उन्हें पत्र भेजा कि इस पवित्र राष्ट्रीय पुकारकी माँगपर यदि श्रीमती एनी बिसेन्ट होतीं, तो आप मनाकर सकते थे? आपको यह पद सँभालना ही होगा और अन्ततः गुर्टुजीको प्रो-वाइस-चांसलर पदका भार ग्रहण करना ही पड़ा था। महाराज सङ्कल्प सिद्ध महापुरुष थे—उन्हें किसी कार्यमें असफलता कैसे सम्भव होती?

विश्वविद्यालय सञ्चालनके लिए योग्य व्यक्तियोंकी खोजमें महाराज सदा तल्लीन रहते थे। कितने ही की वक्र-दृष्टि विश्वविद्यालयपर केन्द्रित थी—वे अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। जैसा कि जेलमें उनसे त्यागपत्र लेनेकी चर्चा की गई है।

महाराजने कभी विशेषाधिकारका प्रयोग नहीं किया था। किसी अध्यापक, कर्मचारीका निष्कासन नहीं हुआ था। महाराजने विश्वविद्यालयके क्षेत्रमें कभी भी पुलिसकी सहायता नहीं ली थी।

वाइसरायके आगमनमें यह प्रिंस आफ वेल्सके आनेपर भी मिलिटरी या पुलिसका प्रवेश महाराजने नहीं होने दिया था—भले ही सादे वेषमें इधर-उधर रहे हों।

सिनेटका चुनाव

महाराज कभी-कभी अपने ही व्यक्तियोंसे ठगे भी जाते थे। सन् १९३८ में विश्वविद्यालयकी सिनेट मीटिङ्गमें विभिन्न समितियोंके लिए सदस्योंका चुनाव था। उनमें एक पक्षको कृषि महाविद्यालयके अध्यक्ष डाक्टर भोलानाथ सिंहसे भय था।

रजिस्ट्रारके साथ तीन व्यक्ति महाराजके पास अष्टभुजा (विन्ध्याचल) डाक बँगलेमें जहाँ वे विश्राम कर रहे थे—पहुँचकर उनसे अनुरोध किया कि मीटिङ्गमें आपकी उपस्थिति आवश्यक है। महाराजने मीटिङ्गमें पधारनेकी अपनी स्वीकृति दे दी थी। उन लोगोंके वापस होनेपर मैंने महाराजसे विवेदन किया कि जो बात आपके इशारे मात्रसे हो सकती है, उसके लिए इस धूपमें व्यर्थ कष्ट उठानेकी क्या आवश्यकता थी। डाक्टर भोलानाथ सिंहको अपना सन्देश दे दें।

आपका वहाँ जाना अहितकर होगा—यदि आप नहीं चाहते कि डाक्टर भोलानाथ सिंह चुने जायँ, तो आप उनको सङ्केत दे सकते हैं, वे चुनावसे विरत हो जायँगे—वे जो कुछ भी हैं, वे आपके बनाये हुए हैं, उन्होंने कहा तुम वहाँकी भीतरी राजनीतिको नहीं जानते हो, मुझे मीटिङ्गकी अध्यक्षता करनी ही है।

मैं यह भली-भाँति जानता था कि महाराजकी अध्यक्षतामें भी वह प्रबल बहुमतसे डा० भोलानाथ सिंह सदस्य निर्वाचित हो जाते, उस दशामें मुझे उन्हें अपमानित होनेकी आशङ्का हो गयी।

मिटिङ्गमें पहुँचनेपर मैंने डाक्टर भोलानाथ सिंहको अलग बुलाकर उनसे अपना नाम वापस लेनेका सङ्केत किया, उन्होंने वहींसे खड़े-खड़े घोषणा कर दी कि मैं इस चुनावसे अपना नाम वापस लेता हूँ, महाराज भी देख-सुन रहे थे, सब लोग आश्चर्य चकित रह गये, दो सदस्योंने कहा—भोलानाथ यह क्या कर रहे हो, उन्होंने मेरी ओर इशारा कर दिया। डाक्टर भोलानाथ सिंहने यह नहीं पूछा कि मैं उनका नाम वापस लेनेके लिए क्यों कह रहा हूँ।

मीटिङ्गके बाद जब घर जाने लगे तो महाराजने पूछा, तुमने डाक्टर भोलानाथको कुछ कहा था—मैंने बतलाया कि यही बात तो मैंने आपसे कहा था कि आप उनको कहला दें किन्तु उन लोगोंके आग्रहको स्वीकारकर आप यहाँ आ गये, उन्होंने कहा—भोलानाथको बुलाओ।

महाराजने उनसे कहा कि भोलानाथ मुझे भ्रममें डाला गया था, जो कुछ हुआ भूल जाना दोनोंके नेत्र गीले हो गये।

कुल-प्रशासक

महाराज प्रतिदिन प्रातः भ्रमण करते और छात्रवासोंका निरीक्षण करते थे और वहाँकी त्रुटियोंके मार्जनके लिए आवश्यक निर्देश दिया करते थे। मध्याह्नोत्तर कालेजोंकी देख-भाल तथा यत्र-तत्र कक्षाओंमें पहुँचकर पठन-पाठनको देखते थे। जिस अध्यापककी आवाज पूरी कक्षातक नहीं पहुँचती थी, उन्हें अलग बुलाकर ऊँचे आवाजमें पढ़ानेका भी निर्देश देते थे।

अपने कुलपतित्व कालमें वर्षोंतक महाराजने सभी कर्मचारियोंके साथ सम-भाव रक्खा था—सबका सदा सम्मान किया। यदि किसी कर्मचारीकी शिकायत मिली तो परिवारके नायककी भाँति समझा-बुझाकर या स्वयं प्रायश्चित करके उसका शमन करते थे। उन्होंने कभी किसी अध्यापक, प्रिंसिपलको कोई आदेश नहीं दिया, उनपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया। आवश्यक होनेपर आदरके साथ उनकी सुविधानुसार अपने मिलनेके लिए उन्हें सूचित करते थे। उनके शासनकालमें किसी भी कर्मचारीको न्याय-निर्णय प्राप्त करनेके लिए न्यायालयोंका सहारा नहीं लेना पड़ा था।

एक बार आर्ट्स कालेजके तत्कालीन प्रिंसिपल रायबहादुर के० वी० रंङ्गास्वामी ऐयङ्गार जो ट्रावनकोर राज्यके शिक्षा सञ्चालक पदसे निवृत्त होकर यहाँ आये थे। कालेजमें उनके लगाये गये कुछ प्रतिबन्धके फलस्वरूप एक प्रोफेसरसे विवाद हुआ था—उन्होंने प्रिंसिपल साहबके पत्राचारको महाराजके समक्ष प्रस्तुत किया। उनमें आदेशात्मक वाक्योंसे महाराजको क्लेश हुआ। उन्होंने ऐयङ्गार साहबको

धूम्रपान सह्य नहीं : अध्यापक नियुक्त

संस्कृत महाविद्यालयमें सांख्य दर्शनके अध्यापकके लिए तत्कालीन प्रिन्सिपल महामहोपाध्याय पण्डित प्रेमनाथ भट्टाचार्यने एक सांख्य, व्याकरण, धर्मशास्त्रादि विषयोंमें प्रकाण्ड विद्वान्‌की नियुक्तिकी संस्तुति की थी और ऐसे विख्यातके लिए महाराजने भी अपनी सहमति दे दी थी किन्तु बादमें महाराजको मालूम हुआ कि विद्वान् महाशय चुरुटके अभ्यस्त हैं। उन्होंने प्रिन्सिपल महोदयसे कहा कि यद्यपि उनमें प्रकाण्ड पाण्डित्य है तथापि मैं इसे पसन्द नहीं करूँगा कि छात्रोंके समक्ष धूम्रपान किया जाय, उनके इस आचरणका प्रभाव छात्रोंपर अच्छा नहीं पड़ेगा—छात्र भी देखा-देखी उनका अनुसरण कर सकते हैं। फलतः केवल 'चुरुट' दोषके कारण उत्कृष्ट विद्वान्‌की नियुक्ति नहीं हो सकी।

उस पदपर विश्वविद्यालयके स्नातक पण्डित हीरावल्लभ शास्त्रीकी नियुक्ति की गयी। महाराज आचरणको सर्वोत्कृष्ट स्थान देते थे।

मैं भी थर्ड डिवीजन हूँ—

प्रो० एच० बी० मलकानी जब ट्रेनिङ्ग कालेजके प्रिन्सिपल बनाये गये तब महाराजका ध्यान आकृष्ट किया गया था कि आपकी सन्स्तुतिके बावजूद भी तृतीय श्रेणीवाले वहाँ प्रवेश नहीं पाते महाराजने, उनसे कहा :—

'मलकानी ! उनकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। मैंने भी थर्ड डिवीजन ही प्राप्त किया था—उन्हें निराश न करना।'

अध्यापकके साथ अन्याय : कुलपतित्वका त्याग

अस्वस्थताके कारण महाराज अष्टभुजा (विन्ध्याचल) के डाक बँगलेमें निवास करते थे। वहाँ महन्थ श्रीराघवेन्द्र गिरिके अतिथि थे। उन दिनों प्रो० भीमचन्द्र चटर्जीके विरुद्ध इञ्जीनियरिङ्ग कालेजमें हड़ताल चल रही थी। छात्रोंकी दृढ़ता थी कि प्रो० चटर्जी हटा दिये जायँ। एक दर्जन छात्रोंने बरामदेमें आसन जमा लिया था। महाराज वहाँ स्वास्थ्य लाभके लिए गये थे। पिछले कई दिनोंसे मलेरियासे पीड़ित थे। निरन्तर १०२ डिग्री तापमान रहता था, उसमें छात्रोंके तापने उन्हें और भी दुःखी बना दिया था। वहाँका वायुमण्डल दूषित होनेसे सिविल सर्जनने महाराजसे आग्रह किया कि वे उस स्थानसे हट जायँ किन्तु अनशनकारी छात्रोंको छोड़कर वे कहीं नहीं जाना चाहते थे। छात्रोंको लेकर महाराजको महन्थजीके अतिथि भवन मीरजापुरमें लाया गया।

वहाँ विश्वविद्यालय कौंसिलकी आवश्यक बैठक हुई। प्रो० चटर्जीके विषयमें कुछ सदस्योंकी राय हुई कि उनको सेवा-कालकी समाप्तितक सवेतन अवकाश दे दिया जाय। छात्रोंकी माँगके अनुसार इस निर्णयसे समस्याका समाधान हो सकता था। उनका अनशन समाप्त हो सकता था। किन्तु बीस वर्ष पूर्व जिस भीम बाबूकी सहायतासे इञ्जीनियरिङ्ग कालेजका विस्तार हुआ था, उनके लिए ऐसा प्रस्ताव महाराजको मान्य नहीं था। वे गुणग्राही थे, जिससे थोड़ी भी सहायता मिलती, उसके वे ऋणी बन जाते थे। कुछ पुराने सदस्योंके हठपर विवश होकर महाराजने प्रस्तावपर हस्ताक्षर तो कर दिया किन्तु उनका हृदय दहल गया, बेचैन हो गये, वेदना बढ़ गयी। एक सदस्यको छोड़कर सभी सदस्य प्रस्ताव लेकर चलते बने।

एक सदस्य डाक्टर भोलानाथ सिंहसे महाराजने रुखाईसे कहा : भोलानाथ, तुम मीटिङ्गमें एक

महाराजने कहा—तुम वहाँकी राजनीति नहीं जानते हो, मीटिङ्गमें पहुँचना आवश्यक है। महाराज सिनेटकी अध्यक्षता करने आर्ट्स कालेजके कामन रूममें पहुँचे और उनके आसन ग्रहण करने के पूर्व ही मैं डाक्टर भोलानाथ सिंहको अलग बुलाकर केवल इतना ही कहा—"आप अपना नाम वापस ले लीजिए" उन्होंने यह नहीं पूछा कि क्यों ? तुरन्त खड़े-खड़े उन्होंने घोषणा कर दी थी कि मैं इस चुनावसे अपना नाम वापस लेता हूँ—यह सुनकर सब लोग अवाक् हो गये—प्रो० गोपाल चन्द्र मुकर्जी, पण्डित कृष्णदेव तिवारी बोल उठे—भोलानाथ ! यह क्या कर रहे हो, उन्होंने मेरी ओर इशारा कर दिया था।

महाराज सब कुछ देख-सुन रहे थे। उन्हें जैसा बताया गया था ठीक उसके विरुद्ध, इस आचरणपर उन्हें न केवल आश्चर्य हुआ बल्कि दुःख भी हुआ कि उन्हें धोखा हुआ।

मीटिङ्गकी वापसीमें महाराजने डाक्टर सिंहको बुलाकर कहा— भोलानाथ ! इस मामलेमें मुझे कुछ गलतफहमी हो गयी थी-उसे भूल जाना।

करुणार्द्र रजिस्ट्रारकी समस्या

पण्डित इन्द्रदेव तिवारी विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रार थे। विद्यार्थियोंकी समस्याओंको स्वयं सहानुभूतिपूर्वक समाधान करनेमें प्रवीण थे महाराज उनका बहुत विश्वास, आदर करते थे और सभी कार्योंका भार उन्हींको सौंप दिया करते थे।

तिवारीजी स्वभावतः जो दूसरोंसे भी काम हो सकता था उसे भी स्वयं करनेमें प्रवृत्त हो जाते थे। परीक्षा सम्बन्धी एक भयङ्कर गलती मालूम होनेपर मईकी प्रखर लू के झोंकोंकी परवाह न कर वे कार्यालय चले गये। उन दिनों कार्यालयका काम पूर्वाह्न होता था। वे लूके लपटमें आ गये। बहुत प्रयत्न और प्रयासके बावजूद भी बचाये न जा सके। ऐसे कर्मठ और विश्वसनीय व्यक्तिके निधनसे महाराज मर्माहत हो गये।

तिवारीजीके कनिष्ठ भाई कृष्णदेव तिवारी बलियामें वकालत करते थे। वाराणसी आकर अपने भाईका कृत्य समाप्त कर बलिया जाने लगे, तो महाराजने उन्हें रोक लिया और बड़े आर्त स्वरमें कहा :—

> "कृष्णदेव ! जो गुजर चुका, उसके चिन्तासे कुछ काम नहीं बनेगा—धैर्य रक्खो—'कालो हि दुरति क्रमः।' यहाँ कार्यालयका और इन्द्रदेवका दायित्व सँभालो—बलिया न जाओ।"

उस समय रजिस्ट्रार पदके लिए एक समस्या खड़ी हुई थी। विश्वासपात्र व्यक्तिकी चाह थी। महाराजने प्रो० श्यामाचरण डेसे अनुरोध किया कि वे इस विषम परिस्थितिमें पुनः रजिस्ट्रार पद स्वीकार करें और ज्वाइण्ट रजिस्ट्रार पदपर पण्डित गङ्गाप्रसाद मेहता तथा असिस्टेण्ट रजिस्ट्रार पदके लिए पण्डित कृष्णदेव तिवारीके नामकी संस्तुति देकर आप उनसे काम लीजिये। डे साहब भी इस परिवारसे प्रेम रखते थे और इस असामायिक घटनासे दुःखी थे। रजिस्ट्रार पदकी अनिच्छा होते हुए भी महाराजके अनुरोधको विवश होकर उन्होंने स्वीकार कर लिया था।

राधाकृष्णन्ने सितम्बर १९४६ में विश्वविद्यालय सञ्चालनका दायित्व सँभाला, उसके बादका उल्लेख, कुलपतियोंकी कार्य-प्रणाली और सरकारी हस्तक्षेपका विशद वर्णन परिशिष्टमें मिलेगा।

एक संस्कृताध्यापकके हटाये जानेपर दुःख--

संस्कृत महाविद्यालयके एक विद्वान् पद्मनाभ शास्त्रीने तत्कालीन प्रिन्सिपल महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्माके समक्ष एक सहयोगी अध्यापकपर नाराज होकर पङ्खा चला दिया था, जिसपर शर्माजी बहुत दुःखी हुए थे। उन्होंने प्रतिज्ञाकर ली कि यह प्रिन्सिपलका अपमान है और ऐसे उद्दण्डका निष्कासन होना ही चाहिए। शर्माजी यह भी जानते थे कि मालवीयजी महाराज दयासागर हैं। क्षमाशील हैं। अतः उन्होंने महाराजको कुछ कहनेका अवसर न देकर अपना निश्चित मत व्यक्तकर दिया था कि यदि इस मामलेमें उदारताका व्यवहार न होगा, तो वह अपना त्याग-पत्र प्रस्तुत कर देंगे ऐसी अनुशासनहीनता वह बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे।

महाराजको विवश होकर चुप रह जाना पड़ा था। इस काण्डपर और उसके भयङ्कर परिणामसे महाराज द्रवित हो गये थे। प्रिन्सिपल शर्माकी दृढ़तासे महाराजकी दया काम नहीं कर सकी। फलतः शास्त्रीजीको विद्यालयसे हटना पड़ा।

महाराजकी धारणा थी—गुण-दोष सबमें होते हैं। मनुष्यसे अपराध हो जाना स्वाभाविक है। यदि अपराधके लिए मनुष्य पश्चात्ताप करता है तो वह सर्वथा क्षम्य है, दण्डेय नहीं। उसको क्षमा कर देना चाहिए। किसीकी जीविकाका हरण करना महापातकोंमें गिना जाता है। अतः भरसक प्रयोग नहीं करना चाहिए।

हिन्दी अध्यापककी नियुक्ति : वैधानिक प्रश्न

आर्ट्स कालेजमें हिन्दी अध्यापकके रिक्त पदपर नियुक्त करनेके लिए एक व्यक्तिको महाराजने वचन दे दिया था। यह बात विश्वविद्यालय क्षेत्रमें गूंज उठी थी—जो महाराजके पार्श्ववर्तियोंको नहीं मालूम था। एक दूसरे विद्वान् भी उस पदके प्रत्याशी थे—लोगोंमें आलोचनाका विषय बन गया था कि प्रत्याशियोंकी योग्यताका विचार किये बिना, कौंसिलके निर्णयके पूर्व महाराजने किसी प्रत्याशीको नियुक्त करनेका वचन कैसे दे दिया ?

सन्ध्या समय महाराजके पार्श्ववर्तियोंने (पण्डित हीरावल्लभ शास्त्री, श्री त्रिलोचन पन्त और लेखक) परामर्शकर महाराजसे इस विषयमें चर्चा की।

लेखकका प्रश्न—आपने व्यक्ति विशेषको हिन्दी अध्यापक पदके लिए वचन दे दिया क्या ?

महाराजका उत्तर—हाँ।

प्रश्न—इसे कौंसिलके अधिकारमें हस्तक्षेप नहीं कहा जायगा ?

उत्तर—लगता है तुम बहुत गुस्सेमें हो। मैंने कौंसिलके सदस्योंसे राय ले ली है—बादमें कौंसिलमें सविद्य हो जायगा।

पण्डित हीरावल्लभ शास्त्री—यह सर्वथा अन्याय होने जा रहा है। एक विद्वान् जो साहित्य-रत्नके छात्रोंको शिक्षा देता है, जिसकी लिखी पुस्तकें एम० ए० कक्षामें पढ़ाई जाती

सहयोगीके साथ अन्यायका विरोध नहीं कर सकते थे, यह निर्णय उचित कहा जायगा ? उन्होंने कहा—बुजुर्गोंके विरुद्ध मैं क्या कह सकता था। महाराजने कहा— पञ्चायतमें सब पञ्च बराबरका स्थान रखते हैं और अन्यायका विरोध न करनेपर पापका भागी बनना पड़ता है।

महाराजकी आज्ञा हुई, कि तार दो प्रस्ताव कार्यान्वित न किया जाय। बतलाया गया कि बात बहुत आगे बढ़ गयी है, उसे रोकना उचित न होगा, तब उन्होंने भीम बाबूको बुलानेकी आज्ञा दी—भीम बाबूको मीटिङ्गकी बात मालूम थी—वह मिर्जापुर पहुँच गये थे। महाराज इस निर्णयसे इतने द्रवित-दुःखी थे मानों हजारों सूईयाँ उनके शरीरमें चुभाई गयी हैं। घोर चिन्तामें निमग्न थे, उनकी उस मुद्रामें पार्श्ववर्तियोंकी घबड़ाहट स्वाभाविक थी। उनसे निवेदन किया गया यदि आज्ञा हो तो आपको महाभारत सुनाया जाय—

सुनते ही कहा—अच्छा लाओ शान्ति पर्व सुनाओ।

जब इस स्थलपर आये :—

दुःखोपघाते शरीरे मानसे चाप्युपस्थिते-
यस्मिनशक्यते कर्तुं यत्नस्तन्नानुचिन्तयेत्-
भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नातु चिन्तयेत्।

सैकड़ों बार इन श्लोकोंकी आवृत्ति हुई—तब उन्होंने कहा—ठीक तो है, सोचनेसे दुःख बढ़ता ही है। यही औषधि है कि इसकी चिन्ता न करें।

शान्तिपर्वका यह स्थल निस्सन्देह महाराजकी उद्विग्नता-शोक-शमनमें कुछ सहायक प्रतीत हुआ किन्तु उनके अन्तस्तलमें वह कसक बनी ही रही—मिटी नहीं, उस दिन उन्होंने भोजन त्याग दिया था।

साढ़े नौ बजे रात्रिको भीम बाबू आये। उन्हें देखते ही महाराज बालकोंकी भाँति फूट-फूटकर रोने लगे प्रायः १५ मिनटतक वे कुछ बोल न सके। भीम बाबू स्तब्ध थे—कुछ देर बाद महाराज कम्पित स्वरमें बोले—

भीमः मैंने पाप किया, मैंने पाप किया, मुझसे अनर्थ हो गया, मेरी बुद्धि भ्रम हो गयी थी, मुझे क्षमा करो।

भीम बाबू : महाराज ! यह आप क्या कह रहे हैं ? आप अपने स्वरूपमें आइये, शिव—अशिव नहीं हो सकता। अन्तमें महाराजने कहा—

'भीम ! अब मैं अपनेको विश्वविद्यालयके कुलपतित्वके योग नहीं पा रहा हूँ। मुझे कोई अधिकार नहीं है कि अब इस पदपर बना रहूँ।'

अपने इस दृढ़ निश्चयके अनुसार महाराज कुलपतिकी खोजमें लग गये और सालभरके भीतर ही सन् १९३६ में महात्मा गाँधीके परामर्शसे डाक्टर राधाकृष्णन्‌को कुलपतिका भार सौंपकर विश्व-विद्यालय प्रशासनसे मुक्त हो गये। यद्यपि उन्हें बहुत बाध्य किया गया— चान्सलर महाराजा बीकानेरने भी अनुरोध किया कि वे ऐसा न करें। किन्तु उन्होंने किसीकी भी बात नहीं मानी। सर्वात्मना उसका त्याग कर ही दिया।

महाराज—तुम बहुत बहस करते हो ? कह तो दिया तुम इसका विरोध करो, बादमें पण्डित रमाकान्त मालवीयने कहा कि तुम पण्डित रामचन्द्र शुक्लसे बात कर लो। मैंने शुक्लजीसे सब बातें बतला दीं—और अपना विरोध भी। उन्होंने महाराजसे एक घण्टा बातें कीं—महाराज अपने वचनपर दृढ़ थे।

सेवा उपवनमें तीन दिनोंतक प्रातः-सायं कौंसिलकी मीटिङ्गमें इस नियुक्तिपर विचार चलता रहा। महाराजकी धारणा थी कि अन्ततः सदस्यगण थककर उनका समर्थन कर देंगे।

तीसरे दिन महाराजने सखेद अपने वचनको वापस घोषित करते हुए दूसरे प्रत्याशीके नियुक्ति की स्वीकृति स्वीकारकर ली थी।

महाराजने कहा—लो तुम जीत गये—मैं हार गया। मैंने कहा—ऐसा न कहें बाबूजी—जबरदस्त झगड़ा फसादसे मुक्ति मिली। वचन भङ्गसे महाराजको कितनी मानसिक पीड़ा पहुँची, कहना कठिन है किन्तु महाराजकी दृष्टिमें मेरा और मान बढ़ गया। क्या ऐसा उदाहरण मिल सकता है कि मालिक अपने विरुद्ध आवाज उठानेकी आज्ञा प्रदानकर सकता है और उसमें अपनी हारपर भी प्रसन्न रह सकता है ? असम्भव है कि यह ऐसा महाराजका विशुद्ध विशाल हृदयसे ही सम्भव था।

महाराज विश्वविद्यालयके जन्मदाता थे। वे चाहते तो विशेषाधिकारसे एक नये पदका निर्माण करा देते, इससे उनके वचनकी रक्षा हो सकती थी किन्तु उन्होंने वैसा न कर कौंसिलकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की। महाराजके जीवनमें यह पहला अवसर था—जब किसीको वचन देकर उन्होंने वापस लिया था।

कुछ दिनों बाद उन्हें भी विश्वविद्यायकी सेवामें नियुक्त कर दिया गया, जिन्हें महाराजने वचन दिया था। जिस विद्वान्‌की नियुक्ति की गयी थी वे अब इस संसारमें नहीं हैं। दूसरे हिन्दीके धुरन्धर अवकाश प्राप्तकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

छात्रोंकी फीस मुक्ति

बाढ़से ग्रस्त उत्तर प्रदेशके देवरिया–गोरखपुर आदिके छात्रोंने फीस मुक्तिके लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत किया था। तत्कालीन प्रो-वाइसचान्सलर एवं प्रिन्सिपल ध्रुवजीने छात्रोंसे कहा जितनी फीस-मुक्तिकी सुविधा विश्वविद्यालयने दे रखी है वह पूरी हो चुकी है, इससे अधिक फीसकी मुक्ति नहीं हो सकती, जो लोग फीस देनेमें असमर्थ हैं, उन्हें पढ़ाई छोड़कर अन्य कामपर लग जाना चाहिए।

बिहारमें भी भयङ्कर भूकम्पके कारण अपार धन-जनकी क्षति हुई थी। महाराजने उनके लिए व्यापक रूपसे सहायताका प्रबन्ध जनता सरकारसे भी कराया था। विश्वविद्यालयमें पढ़नेवाले उधरके छात्रोंपर भी उसका बहुत प्रभाव पड़ा था। विद्यार्थी समुदाय महाराजके पास पहुँचकर अपने आचार्यकी वाणीसे उन्हें अवगत कराया, महाराजको आचार्यजीके उत्तरसे क्लेश हुआ, उन्हें बुलाकर उन्होंने कहा :—

"मैं गरीब माता-पिताका पुत्र हूँ, इससे गरीब विद्यार्थियोंके कष्टको समझता हूँ। आप इतने ऊँचे पदपर विराजमान हैं कि आपको नीचेकी स्थितिका कुछ पता नहीं है। जिन छात्रोंके माता-पिताकी कुछ आमदनी नहीं है, वे विश्वविद्यालयकी लम्बी फीस न दे सकनेके कारण विद्यासे वञ्चित रह जाते हैं, यह बस मुझे पीड़ा पहुँचाती है। पता नहीं इन छात्रोंमें कितने ध्रुव, प्रह्लाद, शिवाजी, राणाप्रताप छिपे हैं।"

है, उसके लिए आफिस नोट देता है, 'हि हैज नो टीचिङ्ग इक्सपीरियन्स' और आपने विचार किये बिना किसीको वचन दे दिया है।

महाराज—देखता हूँ, सभी नाराज हैं।

लेखक—बाबूजी ! आपने वचन दे दिया है तो कौंसिल वही करेगी, जो आपने वचन दिया है अर्थात् आपके वचनको पुष्ट कर देगी।

महाराज—कौंसिल कुलपतिके आदेशको पुष्ट करती है, वचनको नहीं।

लेखक—यहाँ अन्याय हो रहा है बाबूजी ?

महाराज—तुम समझते हो कि अन्याय हो रहा है तो इसका विरोधकर सकते हो।

लेखक—प्रश्न है कि जब सदस्यगण हामी भर चुके हैं, तो किससे विरोध किया जाय ?

पण्डित हीरावल्लभजी—आपके वचनके विरुद्ध कोई सदस्य कैसे आपत्ति उठावेगा ?

महाराज—सभामें सब पञ्च बराबरके होते हैं, उन्हें उचित बातको विचारकी स्वतन्त्रता होती है।

लेखक—इसके विरोधके लिए आपकी आज्ञा है ? और यह उचित होगा ?

महाराज—सच्ची बातके लिए ईश्वरसे भी नहीं डरना चाहिए—प्रसन्नतासे विरोधकर सकते हो।

यहाँ यह बतला देना उचित होगा कि जो लोग महाराजके विशाल हृदयको नहीं पहचानते थे, वे समझ लेते थे कि महाराज किसीका मान लेकर पूछते हैं, उस व्यक्तिको वे चाहते हैं—और उनके नाम व्यक्त करनेपर हामी भर देते हैं। वस्तुतः महाराज सब तरहकी जानकारी प्राप्त करनेपर जन-मतका विश्वासकर निर्णय करते थे।

यह प्रश्न जटिल बन गया था सेवा उपवनमें। वहाँ महाराज उन दिनों निवास करते थे। दूसरे दिन यहाँ रजिस्ट्रार पण्डित गङ्गाप्रसाद मेहता—महाराजसे मिलने आये। लेखकने उनसे प्रश्न किया कि आपने इस नियुक्तिमें कैसे अपना मत व्यक्त कर दिया ! उन्होंने कहा—महाराज चाहते थे। लेखकने महाराजसे कहा—बाबूजी ! मेहताजी कह रहे हैं कि आप चाहते थे इसलिए हामी भर दी थी—महाराजने कहा क्यों मेहता ?

मेहताजी—महाराज दोनों योग्य हैं।

महाराज—'तदेकं वद निश्चित्य।'

तबतक महाराजके बड़े पुत्र पण्डित रमाकान्तजी आ गये और कहा—बाबू आप क्यों इस प्रपञ्चमें पड़ते हैं। पण्डित रामचन्द्र शुक्लको हिन्दी विभागाध्यक्ष पद दिया जा रहा है, उनसे परामर्शकर लेना चाहिए। महाराजने कहा कि क्या मुझमें हिन्दी पदके निर्वाचनकी क्षमता नहीं है, मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलनका सभापति रह चुका हूँ।

लेखक—बाबूजी ! हिन्दी साहित्य सम्मेलनका सभापतित्व तो सेठ जुगलकिशोर बिरला भी कर चुके हैं। गोस्वामी गणेश दत्तजी भी सभापति हो चुके हैं।

चतुर्वेदीजीने रातकी सारी घटना उन्हें बतायी तथा विद्यार्थीके फीस मुक्तिके बारेमें भी बताया। आपकी तरफसे २५-३० रुपये सहायता करनेका वचन देनेपर भी यह छात्र यहाँसे नहीं गया। तब उन्होंने डाट लगायी थी, वही छात्र है। रातभर इसने इनकी सेवा की है। महाराजने कहा—विद्यार्थी, तुम परीक्षा शुल्क सहित सारी फीससे मुक्तकर दिये जाओगे। परिश्रमसे सेवा करना। माताकी चादरमें दाग न लगने देना। महाराज अन्तर्यामी थे। विद्यार्थी सहायताके लिए पहुँचा था। उसे अन्दर नहीं जाने दिया जा सकता था। अतः ऐसी घटना घटी की महाराजको भी मेरी स्थितिकी जानकारी हो गयी और उस व्याजसे विद्यार्थीको सफलता प्राप्त हो गयी।

'ऐसो को उदार जग माहीं।'

सीनेटका चुनाव—

१९३८ में सीनेटका चुनाव था। महाराज उन दिनों अस्वस्थताके कारण विन्ध्याचल अष्ट-भुजाके अतिथि गृहमें विश्रामकर रहे थे। रजिस्ट्रार पण्डित गङ्गाप्रसाद मेहता तीन प्रोफेसरोंके साथ वहाँ पहुँचकर महाराजसे अनुरोध किया कि सीनेटकी चुनाव आपकी ही अध्यक्षतामें होनी चाहिए अन्यथा अमुक पार्टी जीत जायगी, महाराजने अपनी उपस्थितिकी स्विकृति प्रदान कर दी। मैंने उनसे आग्रह किया कि आप यहाँ विश्राम करने आये हैं, इस गर्मीमें आपका यहाँसे हटना अच्छा नहीं होगा। यदि आप किसी व्यक्ति विशेषकी सदस्यता नहीं पसन्द करते हैं तो वे अपना नाम वापस ले लेंगे किन्तु आप वहाँ न चलें, उन्होंने कहा—तुम वहाँकी राजनीति नहीं जानते हो चलना ही पड़ेगा।

मीटिङ्गमें पहुँचते हुए—मैंने व्यक्ति विशेषको कह दिया कि आप अपना नाम वापस ले लें—उन्होंने वहींसे घोषणा कर दी कि मैं इस चुनावसे अपना नाम वापस लेता हूँ। सभी सदस्य स्तब्ध हो गये स्वयं महाराजको भी ऐसी सम्भावना नहीं थी।

घर पहुँचकर महाराजने कहा—मुझे गलत बताया गया था तुम उन्हें बुला लो—घर आनेपर महाराजने यह स्वीकार किया कि मुझसे भूल हुई—मनसे निकाल देना।

कोर्टका चुनाव

विश्वविद्यालयकी सर्वोच्च व्यवस्थापिका सभा कोर्टका चुनाव डाक्टर राधाकृष्णन्‌की अध्यक्षतामें हुआ था। कुछ लोगोंका विचार था कि इसमेंसे दो प्रभावशाली सदस्योंका पुनर्निर्वाचनन हो तो अच्छा होगा। यदि चुनाव किया जायगा तो वे कथमपि असफल न होंगे। इसके लिए यह तय किया गया कि उनकी जगह दो ऐसे नाम आवें, जिनका निर्विरोध होना स्वीकार हो सके। एकके नामपर महात्मा गाँधीका दूसरे नामपर सरदार पटेलके नाम प्रस्तावित किये गये।

डाक्टर राधाकृष्णन्‌ने दोनों महाशयोंसे दरियाफ्त किया कि क्या उन्हें स्वीकार है? सरदार पटेलके साथ अपनी स्वीकृति भेज दी। गाँधीजीका कोई उत्तर नहीं आया। मौनं स्वीकृति लक्षणम् मान लिया गया। मीटिङ्गमें अध्यक्षने घोषणाकर दी कि चुनाव किया जाय, इसपर काँग्रेसी प्रोफेसर असरानीने चुनावका विरोध किया कि इन नामोंपर चुनाव नहीं किया जाय। निर्विरोध निर्वाचन हो। इसपर वोट लिया गया। फलतः सब सदस्योंने निर्विरोध निर्वाचन सहर्ष स्वीकारकर लिया। फलतः दोनों महानुभाव निर्विरोध चुने गये। प्रभावशाली सदस्य असफल रहे।

"मुझे अपने अध्ययनकालमें फीसकी कठिनाइयोंका दृश्य आज भी दिखायी पड़ता है, इससे इन छात्रोंके कष्टका अनुभव करता हूँ।"

"मुझे यह प्रिय नहीं है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें अध्ययन करनेवाला छात्र फीस न दे सकनेके कारण अपनी पढ़ाई छोड़ दे।"

महाराजने कौंसिलसे अपीलकर उन सभी छात्रोंकी फीस माफ करा दी। उनको स्वयं यह धारणा थी कि यदि वे गरीब-माता-पिताके सन्तान न होते तो वे इतनी ऊँचाईपर नहीं पहुँचते। उनकी प्रबल इच्छा थी कि इस विश्वविद्यालयमें निःशुल्क शिक्षा दी जाय।

यों तो कोई भी दुःखी व्यक्ति या छात्र महाराजकी सहायतासे वञ्चित नहीं रहता, जब वे बाहर रहते थे किन्तु एक छात्रकी सहायता उन्होंने उस स्थितिमें भी किया था—जब वे कायाकल्प कुटीमें ४५ दिनोंके लिए बन्द थे।

उसी समय फीससम्बन्धी कुछ कड़ा प्रतिबन्ध भी लगाया गया था, महाराजसे भी वचन लिया गया था कि फीस-मुक्तिके मामलेमें अपने अधिकारका प्रयोग कम करनेकी कृपा करें। यह आयुर्वेदका छात्र था। उसकी फीस कई वर्षोंसे सैकड़ों रुपये बाकी चली आ रही थी। बिना अदायगीके अन्तिम परीक्षामें सम्मिलित नहीं हो सकता था। मैंने छात्रको समझाया कि यदि महाराज बाहर होते तो सम्भव था कि प्रतिबन्ध होते हुए भी तुम्हारी कठिनाई दूर हो जाती। यहाँ वे कुटीमें हैं, तुम आयुर्वेदके छात्र हो, यह जानते हो कि कोई उनसे कुटीमें मिल नहीं सकता। तुम यहाँ प्रवेश पा नहीं सकते। मैं तुम्हारी बात पहुँचा नहीं सकता, अतः चन्दा एकत्रकर अपना काम चलाओ, मैं महाराजकी तरफसे २५) की सहायता तुमको कर दूँगा।

छात्रके हृदयमें मेरी बातोंका कोई असर नहीं पड़ा, मेरे साथ ही रहने, भोजन करने लगा और तीन दिनतक वह कुछ नहीं कहा तब मैंने चिढ़कर कह दिया कि तुम्हारी परीक्षा सन्निकट है, जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हो वह कदापि सम्भव नहीं है कि पूरा हो सके। व्यर्थ समय बर्बाद मत करो किन्तु उसपर कोई असर नहीं पड़ा। वह बिल्कुल मौन रहा।

उसी रात अचानक एक घटना घटी। लगभग १० बजे रात्रिमें मुझे वमन और दस्त होने लगे। पता नहीं कबसे मैं मकानके सामनेवाले बड़े चबूतरेपर अचेतावस्थामें पड़ा हुआ था। पण्डित भीमसेन चतुर्वेदी रातको लघुशङ्का करने निकले। टार्चकी रोशनीमें मुझे देखकर नौकरों और उस विद्यार्थीकी सहायतासे मुझे अन्दर ले जाकर---चतुर्वेदीजीने किसी प्रकार मेरे मुँहमें कोई औषधि दी थी। मुझे उसका कोई ज्ञान नहीं था।

प्रातः ६ बजे आँख खुलनेपर चतुर्दिक ध्यानसे देखा—नौकरको सङ्केत किया। महाराजको कुछ नहीं बतलाना—नौकर जब महाराजके पास पहुँचा, उन्होंने मेरे बारेमें पूछा—वह कुछ नहीं बोला। उन्हें मेरी अस्वस्थताका परिज्ञान हो चुका था और वे कुटीसे बाहर निकलना चाहते थे। नौकरने आकर मुझे समाचार दिया कि बाबूजी आपको देखना चाहते हैं। तुरत मेरा वस्त्र बदलवाया गया। कुर्सीपर बैठाया गया। नौकर तथा वह विद्यार्थी, चतुर्वेदीजी तथा कविजीके साथ कुटीके बरामदेमें पहुँचाया गया। देखते ही महाराज मुझपर बरस पड़े—तुम्हारी यह स्थिति मैं रातभर तुम्हारी चिन्तामें व्यग्र था। तुम मेरे मुँहमें कालिख लगाना चाहते थे, ऐसी स्थितिमें मैं कुछ कर न सका? उस छात्रको देखकर महाराजने पूछा वह कौन व्यक्ति है?

पुस्तकालय ग्रामीणोंके लिए है

राव साहब रङ्गनाथन् कुछ कालतक विश्वविद्यालय पुस्तकालयाध्यक्ष थे, जिन्होंने पहलेकी सारी व्यवस्थाको उलट-पलट दिया था। दर्शनार्थियोंका प्रवेश पुस्तकालयमें बन्द करा दिया था, जो आधुनिक वेष-भूषा, सूटेड-बूटेड न थे। इसकी देखभालका काम मुझपर था।

एक दिन गोरखपुरका एक परिवार, जहाँसे विश्वविद्यालयको अच्छी धनराशिकी सहायता प्राप्त थी। धोती-कुर्ता होनेके कारण रोक देना पड़ा था, जो मेरे परिचित भी थे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि उनकी पार्टीके साथ ऐसा व्यवहारकर रहा हूँ। सारी स्थिति समझाकर उनसे अनुरोध किया कि आप लोग कृपाकर महाराजका दर्शन करें और इस स्थितिसे उन्हें अवगत करावें। मैं भी वहाँ पहुँच रहा हूँ।

वे लोग पुस्तकालय प्रवेशकी बात महाराजको सुना रहे थे, वह भी मेरे द्वारा तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उसी समय मैं पहुँच गया। उन्होंने पूछा—तुमने इन लोगोंको पुस्तकालय देखनेसे मनाकर दिया—ऐसा क्यों ?

स्वीकार करते हुए मैंने महाराजसे निवेदन किया, श्री रङ्गनाथन्जीकी शैलीके अनुसार आपने पुस्तकालय-भवनका निर्माण नहीं कराया था। उन्होंने भीतरसे बन्द होनेवाले दरवाजेको बाहरसे करा दिया है। काउण्टरको काटकर विकृतकर दिया है और प्रयोगमें आनेवाली पुस्तकोंको नीचे हालमें रखवाकर ऊपरवाले विभागोंको खाली कराकर बन्द करा दिया है, दर्शनार्थियोंको विशेषकर कुर्ता-धोती-वालोंका प्रवेश बन्द करा दिया है, ये सब बातें करते-करते स्वयं रङ्गनाथन् साहब भी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने मिलनेके लिए समय ले रक्खा था।

महाराजने मेरी सब बातें रङ्गनाथन् साहबको बतलाकर उन्हें समझाया—यह पुस्तकालय छात्रों-अध्यापकोंके लिए तो बना ही है। उन ग्रामीणोंके देखनेके लिए भी है, जो उसे देखकर अपने क्षेत्रमें पुस्तकालयोंका निर्माण करा सकें, पुस्तकोंके रख-रखावकी व्यवस्था करा सकें, सूटेड-बूटेड या सम्पत्तिशाली व्यक्ति तो स्वयं पुस्तकालयोंका निर्माण कर सकते हैं। उनको देखनेकी उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी साधारण जनता को। आपने ऐसा प्रतिबन्ध लगाकर उचित नहीं किया, उसे हटा दें और पुस्तकालयमें सबका प्रवेश सुलभ करा दें।

परीक्षासे रोक

महाराजकी उपस्थितिमें यह नियम बना दिया गया था कि जिन छात्रोंकी उपस्थिति ७५ प्रतिशतसे कम हो, वे परीक्षासे रोक दिये जायँ, इससे सैकड़ों छात्र परीक्षासे वञ्चित हो रहे थे। तत्कालीन एम० एल० ए० पण्डित यज्ञनारायण उपाध्यायने बतलाया था कि डाक्टर सम्पूर्णानन्दने विश्वविद्यालयको फिलहाल पचास हजारका अनुदान उत्तर प्रदेश सरकारकी ओरसे दिया है, आगे भी देनेका वचन दिया है, उन्होंने आग्रह किया है कि छात्रोंकी अनिवार्य उपस्थितिके नियमको केवल इस वर्षके लिए ढीलाकर दिया जाय।

महाराज कायाकल्प कुटीमें थे—बाहर-भीतरका कोई सम्वाद नहीं पहुँचानेका प्रतिबन्ध था तथापि छात्रोंके भविष्यका विचारकर परीक्षा सन्निकट होनेके कारण उपरोक्त समाचार महाराजको

डाक्टर राधा कृष्णन्का प्रशासन :

डाक्टर राधाकृष्णन् सप्ताहमें तीन दिन कलकत्ता और तीन दिन काशीमें तथा प्रतिवर्ष ६ मास लन्दनमें व्यतीत करते थे। इङ्गलिश विभागके अध्यक्ष डॉ० यू० सी० नाग तथा गणित विभागाध्यक्ष प्रो० वी० वी० नालिकर प्रशासनमें उनके दायें-बायें हाथ कहे जाते थे—डाक्टर राधाकृष्णन्की प्रतिभा तथा भाषणचातुर्यसे बहुधा बहुत कम लोग उनसे मिलते थे, जिससे उनके विरुद्ध कुछ काना-फूँसी प्रारम्भ हो गयी थी। विशेषकर स्नातक मण्डलके निर्वाचित सदस्य विशेष चिन्तित थे। और इस बातके प्रयत्नमें थे कि दायाँ-बायाँ हाथके रहते कुछ कल्याण होना सम्भव नहीं है। प्रश्न यह था कि चुनावमें दोनों निश्चय ही चुने जायँगे चाहे कोई भी उनके विरोधमें खड़ा किया जाय।

जस्टिस बलराम उपाध्याय, पण्डित कृष्णदेव तिवारी, बाबू उदय सरोज शाह, पण्डित रामव्यास ज्यौतिषीके समक्ष मैंने प्रस्ताव बना दिया कि इनके बदले महात्मा गाँधी तथा सरदार वल्लभ भाई पटेल निर्वाचित किये जायँ। सदस्यकी स्थितिमें पण्डित रामव्यास ज्यौतिषीने प्रस्ताव भेज दिया था, डाक्टर राधाकृष्णन् झल्ला गये। उन्होंने उन दोनों महानुभावोंको तार देकर पूछा—पटेल साहबने सहर्ष स्वीकृति प्रदानकर दी थी।

कोर्टकी बैठकमें पहले तो अध्यक्ष डाक्टर राधाकृष्णन्ने आपत्ति उठायी कि उन लोगोंसे स्वीकृति लिये बिना प्रस्ताव भेजा गया है, अतः यह व्यवहार्य नहीं है।

पण्डित रामव्यासजीने उत्तर दिया कि मेरा काम आपने स्वयं कर दिया है, अतः वह सर्वथा व्यवहार्य है, उन नामोंसे विश्वविद्यालयकी शोभा है। अध्यक्षजीने कहा कि गाँधीजीका कोई उत्तर नहीं आया, पटेलजीने स्वीकृति दी है—रामव्यासजीने कहा—गाँधीजीने विरोध तो नहीं किया—अतः 'मौनं स्वीकृति लक्षणम्' अध्यक्षजीने इन नामोंपर चुनावकी घोषणा कर दी, तत्कालीन काँग्रेसी प्रोफेसर असरानी साहबने आपत्ति उठायी कि इन नामोंपर चुनाव नहीं होना चाहिए। समस्त सदस्य खड़ा हो गये। "नो नो"की आवाजसे मण्डल गूंज उठा—गाँधीजी और पटेल साहब निर्विवाद सदस्य मान लिये गये—डाक्टर नाग और प्रोफेसर नालिकरकी सदस्यता समाप्त हो गयी, जिससे डाक्टर राधाकृष्णन् कुछ बलहीन हो गये।

प्रो०-चान्सलरका चुनाव

दरभङ्गाके महाराजाधिराज डाक्टर कामेश्वर सिंहजी बहादुरका समय व्यतीत होनेपर पुनः निर्वाचन हुआ था। उनकी अध्यक्षतामें कोर्टकी मीटिङ्ग हुई थी, वे कोर्टके सम्मानित सदस्य महाराज कुमार विजयानगरम्के अतिथि थे। डाक्टर राधाकृष्णन्ने सम्भवतः ट्रावङ्कोर नरेशका नाम प्रस्तावितकर दिया था।

प्रोफेसर डाक्टर गोपाल त्रिपाठीने महाराज कुमारको सुझाव दिया था कि महाराजाधिराज आपके मेहमान हैं, उनकी अध्यक्षतामें ही किसी अन्यका निर्वाचन उपयुक्त नहीं प्रतीत होता, फलतः महाराजाधिराज पुनः प्रो०-चान्सलर चुन लिये गये।

डाक्टर राधाकृष्णन् काशी विश्वविद्यालयसे नाराज होकर विदा हुए थे। भारत सरकारने युनिवर्सिटी कमीशनका चेयरमैन बना दिया था, उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी व्यवस्थामें घोर परिवर्तन करा दिया—आज उसका विकृत स्वरूप वर्तमान है। जिसका उल्लेख परिशिष्ट पृष्ठ···· पर किया गया है।

आर्टस् कालेज हालमें २ बजे दिनको बालिकाओंके नृत्यकी स्वीकृति दे दी थी। उसमें टिकट भी लगाया गया था।

उस दिन उसी हालमें प्रातःकाल ८ बजे रविवासरीय गीता प्रवचन थी, उसमें सम्मिलित होनेके लिए महाराज वहाँ पहुँचे। कारसे उतरते ही नृत्यके संयोजक—मन्त्रीने, जो कुछ समय पहले यहाँकी सेवामें आये थे—कहा कि महाराजको सूचितकर दिया जाय कि आज २ बजे इस हालमें बालिकाओंके नृत्यमें पधारनेकी कृपा करें। महाराज तबतक हालमें पहुँच चुके थे।

संयोजकका निवेदन किस प्रकार महाराजसे कहा जाय, यह दुस्साहसका काम था। गीता प्रवचनके समाप्तिपर पुनः संयोजकने सङ्केत किया, तब लेखकने कहा—बाबूजी ये महाशय कुछ निवेदन करना चाहते हैं। संयोजकने अपना अभिमत प्रकट किया। सुनते ही महाराज भड़क उठे, शरीर तन गया, कहा तुम कौन हो, तुमने यहाँकी मर्यादाका ध्यानकर यहाँकी नौकरी स्वीकार की है? आदि-आदि बीचमें लेखकने निवेदन किया कि यह विषय असाधारण प्रतीत होता है। खड़े-खड़े बात करना ठीक नहीं है। अच्छा होता इन्हें बँगलेपर बुलाकर जो समझना चाहते हैं समझ लें, मन्त्रीजीको बँगलेपर आनेका आदेश देकर कारमें बैठ गये। उनके शरीरमें कम्पन, नेत्रोंमें सुर्खी दौड़ गयी थी। उनकी इस स्थितिको देखकर उनको स्मरण दिलाया कि इस संयोगको क्या कहा जायगा कि जिस हालमें प्रति एकादशी कथामें ध्रुव,प्रह्लाद, अम्बरीष, विदुला, सावित्री आदिकी धार्मिक कथाएँ होती रहीं, प्रति रविवारको गीता-प्रवचन होता रहा, वहाँ अब बालिकाओंका नृत्य भी होने जा रहा है, वह भी आपकी उपस्थिति में? महाराज चुप-चाप सुनते रहे और उनके शरीरका रङ्ग और सूर्ख होता गया।

घर पहुँचकर कपड़ा पहने ही धम्मसे चारपाईपर गिर पड़े। मन्त्री महाशयको महाराजके पास पहुँचाकर मैं कार्यालयमें आकर विचार करने लगा कि इसका अन्त कैसे किया जा सकता है? महाराजको इस स्थितिसे कैसे शान्ति लायी जाय? थोड़ी देर बाद देखा मन्त्री महाशय रूमालसे आँसू पोंछते बाहर निकले और चले गये। सम्भवतः वह प्रो—वाइसचान्सलर राजा ज्वालाप्रसादको महाराजकी स्थितिसे अवगत कराया था और राजासाहबको महाराजकी बुलाहटका समाचार दिया था, परिणाम समझ-कर राजासाहब महाराजके पास न आकर अपना सामान पैक करनेका आदेश दिया, जिससे शामकी गाड़ीसे अपने घर रवाना हो जायँ क्योंकि महाराज इस नृत्य-कृत्यसे क्षुब्ध हो गये तब यहाँसे हट जाना ही उचित होगा। महाराजसे मिलने राजासाहब नहीं आये।

राजासाहबने इस बातकी चेष्टाकी कि यदि महाराजको ढङ्गसे समझाकर उनका क्रोध शान्त किया जा सके तो अच्छा है। राजासाहबने लेखकको बुलाकर कहा कि :—

> महाराजकी इस स्थितिमें मुझे क्षमा माँगनेका भी साहस नहीं है, तुम किसी भी प्रकार उनका क्रोध शान्त कराओ, जो होना था वह तो होगा ही—एक बज रहा है। टिकट बिक चुके हैं—नृत्य होगा—शामको बिजनौर चला जाऊँगा। उनका कष्ट बना ही रह जायगा, अतः उनके दिलसे क्रोध निकल जाय तो बहुत बड़ा सङ्कट कट जायगा। किसी औरमें तो यह साहस नहीं है, मुझे विश्वास है कि तुम उनके क्रोध-शमनको दूर कर सकोगे—तुम्हारी बातें वे नहीं टालेंगे।

राजासाहबके इस वार्ता और दुःख मिश्रित वाणीसे मैं स्तब्ध हो गया—क्या उत्तर देता?

दे दिया गया। उन्होंने रजिस्ट्रारको आदेश दिया था कि ७५ प्रतिशतकी उपस्थितिको इस वर्षके लिए मीटिङ्गमें पास करा दें। इससे सैकड़ों छात्रोंका कल्याण हो गया।

उत्तर पुस्तिका निरीक्षण

जौनपुरके एक छात्रने बी० ए० की परीक्षाकी कापी स्वयं महाराजको देखनेका अनुरोध किया था। प्रो० श्यामाचरण डे रजिस्ट्रार थे। महाराजने उत्तर पुस्तिका देखनेकी जिज्ञासा की। ये सहायक रजिस्ट्रार पण्डित कृष्णदेव तिवारी जी, दोनों अवाक् हो गये, महाराज समझ गये। ऐसा नियम नहीं है, उन्होंने कहा :—

> विश्वविद्यालयका वाइसचान्सलर उत्तर पुस्तिकाका निरीक्षण करना चाहता है। तत्क्षण डे साहब हाथ जोड़कर छात्रकी उत्तर पुस्तिका महाराजके समक्ष प्रस्तुत कर दी, छात्रका अभियोग मिथ्या था।

चेयरकी मर्यादा : कोर्ट मीटिङ्गकी अध्यक्षता

महाराजके कुलपतित्व ग्रहण करनेके कुछ दिन बादकी मीटिङ्गमें डाक्टर भगवानदासजीने महाराजके कार्योंकी कटु आलोचना की थी।

उस समय प्रो०-चान्सलरको कोई भी मीटिङ्गकी अध्यक्षताका विधान था। उनकी अनुपस्थितिमें वाइस-चान्सलर अध्यक्षता कर सकते थे। प्रो०-चान्सलर महोदय उपस्थित नहीं हो सके थे। महाराजको ही कोर्ट मीटिङ्गकी अध्यक्षता करनी थी। किन्तु अपने ऊपर किये गये आरोपका उत्तर उस चेयरपर देना उन्हें प्रिय नहीं था। अतः महाराजने श्रीमती डाक्टर एनी बिसेण्टसे निवेदन किया कि वे कृपाकर कोर्ट मीटिङ्गकी अध्यक्ष पदको सुशोभित करें।

डाक्टर बिसेण्ट तथा अन्य सदस्योंने भी महाराजसे ही अध्यक्षता के लिए अनुरोध किया कि अध्यक्ष पदपर बने रहते हुए उत्तर दे सकते हैं—महाराजने यह कहकर सदस्योंका अनुरोध अस्वीकार कर दिया कि अध्यक्षको अपनी अध्यक्षतामें आरोपोंका उत्तर देना अशोभन एवं चेयरकी मर्यादाके विरुद्ध होगा। अतः श्रीमती बिसेण्ट चेयर ग्रहण करें।

अंग्रेज जज साहबने क्षमा माँगी

महाराजके याचक वैजनाथ तिवारीने बताया था कि महाराज जब मन्सूरीसे प्रयाग आ रहे थे, उनके डिब्बेमें एक अंग्रेज जज साहब भी यात्रा कर रहे थे। प्रातःकालीन सन्ध्याके लिए महाराज बाथरूममें थे और बाथरूमका कुछ जल डिब्बेमें भी आ गया था, इसपर जज बहुत क्रुद्ध हुए, आवाज सुनकर महाराजने बाथरूमसे पूछा वैजनाथ क्या बात है? बतलाया कि डिब्बेमें कुछ पानीसे किचविच हो गया है। इससे बिगड़ रहा है। इसपर महाराजने कहा—बाल्टीसे लेकर डिब्बेको भर दो—वैजनाथने वैसा ही किया। अब तो जजकी क्रोधाग्नि भड़क गयी। महाराजको वस्त्र बदलनेके लिए जब बक्सेसे धवल वस्त्र निकाला, बक्स बन्द करनेपर जजने देखा—ऊपर एम० एम० मालवीय लिखा था, देखकर स्तम्भित हो गया। महाराज जब बाथरूमसे निकले, तब उसने महाराजसे क्षमा माँगी और वैजनाथसे कहा—डिब्बेसे पानी निकालकर तौलियेसे सुखा दो।

कालाग्नि सदृशः क्रोधे—क्षमया पृथिवी समः

डाक्टर राधाकृष्णन्के कुलपतित्वमें राजा ज्वालाप्रसाद, प्रो०-वाइस-चान्सलरने विश्वविद्यालय

वञ्चित नहीं था। यथार्थतः सेवा-उपवन अपने नामका सार्थक रहा है। विश्वविद्यालयके भीतर जब कुलपति निवास (मालवीय भवन) तैयार हो गया, तब महाराज उसमें आ गये किन्तु उनके थोड़ा भी अस्वस्थ होनेपर बाबूसाहब अपनी कोठी लिवा ले जाते थे और अपनी देख-रेखमें रखते थे। बाबू साहबके कड़ा प्रतिबन्धके कारण महाराजसे मिलनेवालोंको बड़ी कठिनाई होती थी। वे स्वयं सामनेके दरवाजेपर अपना आसन बना लेते थे। उधर महाराजको मिलनेवालोंका अभाव बराबर खटकता था। वे भी परेशानी अनुभव करते थे।

कुछ दिन बाद महाराजजी पीछेकी ओर बाहर कुर्सी लगवाकर बैठने लगे। दर्शनार्थी दूसरे रास्तेसे खेत होकर आने लगे। जब यह क्रम बाबूसाहबको मालूम हुआ तब उन्होंने कहा—मैं तो हार गया। महाराजने कहा—भैय्या कितनी दूरसे लोग कुछ मन्तव्य लेकर आते हैं और बिना मिले वापस जानेपर उन्हें कितना कष्ट होगा। यह सोचकर मेरा दिल दुःखी होता है,मेरी थोड़ी तक्लीफसे लोगोंके मिल लेनेसे उन्हें कुछ सान्त्वना मिल जाती है, तो चिन्ताकी बात नहीं है। बाबूसाहब निरुत्तर हो जाते।

दक्षिणाकी व्यवस्था

श्रीमान् गुप्तजीने अपनी पत्नीकी श्राद्धमें विद्वानोंको आमन्त्रित किया था। उनके विद्वान् शब्दका आशय केवल विद्वान् ब्राह्मणसे नहीं था प्रत्युत किसी भी जातिका संस्कृतज्ञ हो। समारोहमें उपस्थित विद्वानोंमें सर्वप्रथम गुप्तजीने महाराजका पाद प्रक्षालनकर तिलक-मालासे सत्कारकर उन्हें ५) दक्षिणा दी थी तत्पश्चात् डाक्टर भगवान दास आदि की। जब वे मुझे दक्षिणा देने लगे, मैंने आपत्ति की। उन्होंने कहा तुम्हें लेना पड़ेगा। लोगे कैसे नहीं ? मैंने कहा शास्त्रानुसार मैं दान लेनेका अधिकारी नहीं हूँ, आपके आदेशसे यदि स्वीकारकर लूँगा तो मुझे अतिशय क्लेश होगा। यहाँ पूज्य बाबूजी (मालवीयजी महाराज) विराजमान हैं। यदि उनका आदेश मिल जाय कि मेरा दान लेना शास्त्र वचनके विरुद्ध नहीं है, तो अवश्य ले लूँगा।

महाराजने कहा—शिवप्रसाद। 'यह ठीक कह रहे हैं, शास्त्र यही आज्ञा देता है कि क्षत्रियको दान नहीं लेना चाहिए। शास्त्रके विरुद्ध तुम्हारा लड़ना ठीक नहीं है, विशेषकर उस स्थितिमें, जब दान गृहीताको उस दानसे क्लेश पहुँचता है। वहाँपर उपस्थित अन्य सज्जनोंने दानको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारकर लिया किन्तु उन्होंने शास्त्रका अवलम्बन लिया है तो उचित यही है कि तुम इन्हें बाध्य न करो।'

पुरोहितपर क्षुब्ध

बाबूसाहबके पुरोहित प्रयाग जाकर रणवीर पाठशालामें अध्यापक पदके लिए महाराजकी आज्ञा प्राप्त करना चाहते थे। उस समय यह नियम था कि विश्वविद्यालयके स्नातकोंको ही पद दिया जाया करे। इससे महाराजने उन्हें आज्ञा नहीं दी।

काशी आकर उन्होंने यह प्रचारकर दिया कि डाक्टर साहब मुझसे कुछ रुपया चाहते थे, इसलिए सफलता नहीं मिली। उन दिनों महाराजके बड़े पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीय सेवा उपवनमें ही निवास करते थे, जब वे प्रयाग पहुँचे। महाराजसे मेरे विरुद्ध उस प्रचारकी बातसे उनको भी अवगत करा दिया था।

गीता प्रवचनकी वापसीके बाद मैं महाराजके पास नहीं गया था। लगभग एक बजे पत्रोंका बहान लेकर उनके पास आकर देखा, वे आँखें बन्द किये घोर चिन्तामें निमग्न हैं। नौकर तेल मर्दनकी प्रतीक्षामें ऊँघ रहा है। मैंने पूछा बाबूजी आरामकर चुके हों तो डाक लाऊँ। नौकरने बतलाया कि अभी तो मालिश भी नहीं हुई, साहब स्नान-भोजन नहीं हुआ। सुनकर कड़े स्वरमें नौकरको डाटा तुम बतला नहीं सकते थे—डेढ़ बज रहा है, कुछ होश है तुम्हें ?

फटकार सुनते ही महाराज बोल उठे—उसे क्यों डाटते हो उसका कोई दोष नहीं है, उससे नाराज मत होओ मैं राजा ज्वालाप्रसादकी प्रतीक्षामें हूँ। अब मेरा साहस जाग उठा। मैंने कहा—राजासाहब कोई अजनबी नहीं थे कि आप तेल मालिश करते समय बात नहीं कर सकते। स्नान-भोजन करते समय वह आ जाते तो तबतक इन्तजार न करते ? यह ठीक नहीं हुआ बाबूजी। अति-काल हो गया—आदि कहते-सुनाते उन्हें कुछ कहनेका अवसर दिये बिना कहता ही गया, बादमें कहा शायद आप प्रस्तुत नृत्य प्रोग्रामके विषयमें राजा साहबका इन्तजार करते होंगे।

राजासाहबने मुझे बुलाया था। आप जानते हैं यदा-कदा नेत्र पीड़ासे वह पीड़ित रहते हैं और इस समय इतने कष्टमें हैं कि दोनों नेत्रोंपर पट्टी बँधी है, हिलडुल नहीं सकते, यहाँ आने लायक स्थितिमें वह नहीं हैं।

नृत्यके सम्बन्धमें अपनी गलतीके पश्चात्तापके साथ उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया है, जिससे कोई अप्रिय घटना न घट सके—जैसा कि पिछले कई अवसरोंपर हो चुकी है। आजके अशोभन प्रोग्रामके लिए टिकट बिक चुके हैं, नृत्य आरम्भ होने ही वाला है। अब वह नहीं रुक सकता और न तो रोकने-का प्रयास करना उचित होगा। इस समय यही सोचना है कि कोई अप्रिय घटना न होने पावे—जिसके लिए राजासाहबने पूरा प्रबन्ध कर ही लिया है। अतः उनकी प्रार्थना है कि इस गुरुतर अपराधको इस बार क्षमाकर दें और इस अशोभन नृत्य प्रोग्रामको निर्विघ्न समाप्त होनेकी आज्ञा और आशीर्वाद दें।

महाराज युक्तिसङ्गत बातका आदर करते थे। चाहे वह बालककी बात हो 'युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि'

उपर्युक्त निवेदनसे कुछ आश्वस्त होकर उठ बैठे। कुछ सोचकर उन्होंने पूछा : प्रबन्धसे पूर्णतः सन्तोष है ? तत्क्षण ही उत्तर दिया—जी-बाबूजी पूर्ण रूपसे। उन्होंने कहा : कह दो कर लें, भविष्यमें इसकी पुनरावृत्ति न होवे।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातु महंति॥

सेवा उपवन

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनासे पूर्व महाराज राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्तजीके नवगा स्थित सेवा उपवनमें निवास करते थे। उनका पारिवारिक सम्बन्ध था और पिता-पुत्र जैसा सम्बन्ध भी था। महाराजका सारा व्यय गुप्तजी वहन करते थे।

सेवा उपवन तो महाराजका अपना घर-सा ही था। देशका कोई भी नेता वहाँके आतिथ्यसे

महाराजने मुझसे कहा "तुम समझते थे कि तुम्हारी चोरी पकड़ी नहीं जायगी। बड़े छिपे रुस्तम निकले" सुनकर मैं स्तब्ध हो गया। पूछा--मैं समझा नहीं कि क्या मेरी चोरी पकड़ी गयी स्पष्ट कीजिये बाबूजी "तुम्हें आदमीको समझकर बातें करनी चाहिए। ओछे लोग भी होते हैं, यद्यपि यह कल्पना है, निराधार है किन्तु शिवप्रसादके कानमें यदि यह बात पहुँचेगी तो उन्हें कितना क्लेश होगा, मुझे यही चिन्ता है।"

उधर बाबूसाहबको किसी प्रकार इस बातकी सूचना मिल गयी थी, उन्होंने अपने पुरोहितजी-की न केवल भर्त्सना की बल्कि यह भी कहा था कि तुम्हारी जबान क्यों नहीं जल गयी। उन्होंने उनका अन्नजल न ग्रहण करनेकी आज्ञा दे दी थी। बहुत अनुनय-विनय और बड़ी शक्तिका प्रयोग करनेपर ही बाबू साहबने अपना आदेश वापस लिया था।

बाबूसाहबके जमाता बाबू भगवानदासजीने महाराजके बँगलेपर फोन किया था। फोन उठानेपर उन्होंने कई बार दोहराया--तुम कौन हो? उत्तर दिया गया अमुक हूँ किन्तु आपका व्यवहार अनुचित लग रहा है, जो उस स्थानकी गरिमाके विरुद्ध है। आपको इसका ध्यान रखना चाहिए।

मेरी आवाज श्रीमान् गुप्तजी सुन रहे थे--उसी समय महाराजके बँगले पधारे, मुझे आवाज दी और कहा--अभी फोनपर तुम्हारी बातें सुनकर आ रहा हूँ। भीतर गाड़ीमें आ जाओ। उन्होंने मुझे हृदयसे लगाकर धीरेसे कहा--तू मेरा सच्चा भाई है, दुनिया जानती है कि यह मेरा जमाता है--कभी उसे कोई अच्छी बात कहनेका साहस नहीं करता। तुमने थोड़ा ही सही कुछ सीख तो दी भगवान तुम्हारा भला करे।

सन् १९३२ में बाबूसाहब प्रयागमें महाराजके घर बरामदेमें अपना स्थान बना लिया था। महाराजमें उनकी असाधारण पूज्य भावना थी। मैं एक पत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए बाबूसाहबके तकियेके पाससे उनकी पेन उठायी और कहा कि बाबूजीसे हस्ताक्षर कराना है। उन्होंने कहा—पागल तो नहीं हो गये हो। मेरे गन्दे हाथोंसे प्रयोगमें आनेवाले पेनको बाबूजीके हाथमें देकर उनके हाथोंको क्यों मलीन करना चाहते हो। इस बातका तो तुमको ध्यान रखना चाहिए। उन्होंने उसी समय बाजार भेजकर नया पेन मँगा दिया। यद्यपि महाराजका हस्ताक्षर दूसरे कलमसे हो चुका था।

प्रारम्भिक समयमें महाराजके साथ विश्वविद्यालयके चन्दाके लिए गुप्तजीने भारत-भ्रमण किया था और सहायता कार्यमें अपना पूरा योगदान दिया था। जैसा कि पहले प्रकरणमें उनका वक्तव्य आ चुका है, जब विश्वविद्यालयका संरक्षण सरकारने स्वीकार कर लिया, तब श्री गुप्तजीको सह्य नहीं हुआ। हठात् उनकी वाणी निकल पड़ी कि यह तो विश्वविद्यालयकी मृत्यु घोषणा है और उन्होंने तत्काल विद्यापीठके स्थापनाका सङ्कल्प किया था, जो सरकारी नियन्त्रणसे मुक्त हो और किया भी वैसा था--बादमें वह भी सरकारके नियन्त्रणमें आ गयी।

महाराजकी नीतिसे असन्तुष्ट--किन्तु वे अविचल (स्वयं विवेक)

"रौलट एक्ट" विरोधी आन्दोलनके परिणामसे गाँधीजीने १ अगस्त १९२१ को सरकारसे असहयोगकी घोषणा कर दी। देशमें क्रान्ति मच गयी। जालियाँवाला बाग हत्याकाण्ड, पञ्जाबमें अत्याचार और जाँच कमीशनके समक्ष जनरल डायरके बयानने बारूदमें आग रखनेका काम किया। सरकारने आन्दोलन दबानेमें कोई कसर नहीं रखी। गोलियाँ चलायी, लाठी-डण्डे चलाये, धर-पकड़, जायदाद

जप्त हुई, रोग बढ़ता गया। गाँधीजी पूज्य हो गये। उनके आदेशसे बहुत-से वकीलोंने वकालत छोड़ी खिताबवालोंने सरकारी खितावें लौटायीं और कितने ही व्यक्तियोंने सरकारी नौकरियोंका त्याग कर दिया। चतुर्दिक असहयोगकी आग भड़क उठी।

स्कूल-कालेजकी घोषणापर महाराजने प्रयागकी महती सभामें कहा :—

"सरकारी स्कूलों, कालेजोंका बहिष्कार ठीक नहीं है, असामयिक है, यह गलत रास्ता है। स्कूलोंमें बच्चोंको भेजनेसे सरकारको कोई मदद नहीं मिलती। जब देशी या राष्ट्रीय संस्थाएँ स्थापित हो जायँ तभी बच्चोंको यहाँसे उठाना चाहिए।"

२७ जुलाई १९२१ को बम्बईमें काँग्रेसकी बैठकमें सत्याग्रह और बायकाटके प्रस्तावमें प्रिन्स आफ वेल्सके बायकाटका प्रस्ताव पास हो गया। महाराजने उस प्रस्तावका विरोध किया था।

पण्डित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु दास, मौलाना आदि जेलमें और इधर मालवीयजी महाराज हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्रिन्स आफ वेल्सका स्वागत कर रहे थे। महाराजकी नीतिसे लोग बहुत असन्तुष्ट हुए। महाराजके पुत्र गोविन्दजी तथा बहुतसे छात्रोंने विश्वविद्यालयका त्यागकर दिया पर महाराज विचलित नहीं हुए।

उन दिनों एक चित्रमें विश्वविद्यालयको शिवमूर्ति बनाया गया था—महाराज उसे पकड़े बैठे दिखाये गये थे और डाक्टर एनीबेसेण्ट उसपर फूल चढ़ा रही थीं।

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्ति,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा चेष्टम्,
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

दिसम्बर १९२१ में मालवीयजी महाराजके प्रयाससे लार्ड रीडिङ्ग और गाँधीजीकी भेंट हुई। समझौतेकी कुछ बातें तय हुईं किन्तु सरकार उनपर कायम न रह सकी और आन्दोलन शुरू हो गया। ४ फरवरी १९२२ को चौरी-चौराका हत्याकाण्ड हुआ। लोगोंका भ्रम था कि मालवीयजी महाराजने गाँधीजीको देशकी परिस्थिति समझाकर आन्दोलन बन्द करा दिया, इससे जनता महाराजसे चिढ़ गयी (बात ऐसी नहीं थी)। गाँधीजीने स्वयं आन्दोलन बन्द किया। महाराजने केवल समर्थन किया था। इसके बाद गाँधीजी गिरफ़्तारकर लिये गये और उन्हें ६ वर्षकी सजा मिली।

इस स्थितिमें मालवीयजी महाराज सरकारकी दमन नीतिको सहन न कर सके। अपनी ६० वर्षकी वृद्धावस्थामें उन्होंने पेशावरसे आसामतक दौरा किया। गोरखपुर जिलेमें व्याख्यान न देनेकी महाराजको निषेधाज्ञा मिली। उन्होंने उसे अमान्य कर बरहज, देवरिया, रामपुर, कसिया, पड़रौना, गोरखपुर, खलीलाबादमें महाराजने व्याख्यान दिया—सरकारने उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की। आसाम, पञ्जाबमें भी १४४ का उल्लङ्घन हुआ था।

निषेधाज्ञा १४४ की नोटिसपर लोगोंने महाराजको इस दौरेके लिए बहुत मना किया किन्तु उन्होंने कहा :—"यदि समरमपास्य नास्ति मृत्युर्भय मिवियुक्तमतिः प्रमातु पूरम। अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमि मुधा मलिनं यशः कुरुध्वम्।

महाराजने निर्द्वन्द्व सर्वत्र अपना वक्तव्य सुनाया।

राज वहाँ फिर पकड़े गये और स्पेशल ट्रेनसे नैनी जेल भेज दिये गये। कुछ दिनों बाद वे बीमार हो गये, सरकारी अस्पताल भेजे गये और वहाँसे एकाएक छोड़ दिये गये। दिल्लीमें काँग्रेसका अधिवेशन था, महाराज उसके अध्यक्ष चुने गये थे। दनकौर स्टेशनसे ट्रेन छोड़कर मोटरसे रवाना हुए—जमुना पुलपर पकड़ लिये गये, तीन-चार दिन बाद प्रयाग पहुँचा दिये गये। अगले वर्ष कलकत्ता काँग्रेसके अधिवेशनके लिए महाराज पुनः अध्यक्ष चुने गये। आसनसोल स्टेशनपर पकड़े गये। सप्ताह बाद प्रयाग छोड़ दिये गये।

काँग्रेस नेशलन पार्टी

साम्प्रदायिक बँटवारेके विषयमें मतभेद होनेके कारण महाराजने श्री माधव श्री हरि अणेके साथ १९ अगस्त, १९३४ को कलकत्तामें एक स्वतन्त्र काँग्रेस नेशलन पार्टी बनायी। २८ दिसम्बर, १९३५ को काँग्रेसकी पचासवीं वर्षगाँठपर उस स्थानपर वहीं काँग्रेसकी बैठक हुई थी, महाराजके हाथों उसकी स्मृति-शिला रखी गयी।

सन् १९३२ में महाराजने एक युनिटी कान्फ्रेन्स बुलायी और उसे सफल बनाया।

वायसरायको सुझाव

राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्सकी प्रेरणा

सन् १९२९ में महाराजने दक्षिण प्रान्तके दौरेके पश्चात् लन्दन जाते समय वायसरायको बम्बईमें इस आशयका एक पत्र दिया कि सारा देश असन्तोषकी ज्वालासे जल रहा है। आप अपनी सरकारसे अनुरोध करें, एक राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्स बुलाकर भारतको स्वतन्त्रता दिलानेका मार्ग प्रशस्त करावें।

राष्ट्रीय अपमान

जनवरी सन् १९३२ में महाराजने एक लम्बा पत्र लिखा—

'श्रीमान्! आप जानते थे कि गाँधीजी वर्तमान समयके भारत वर्षके सबसे महान् पुरुष हैं। भारतके असंख्य नर-नारियों द्वारा अपने जीवनकी पवित्रता, निःस्वार्थता और देश तथा मानवताके हितोंकी अलौकिक भक्तिके लिए पूजे जाते हैं। और संसारके सभी भागोंमें उनका आदर होता है।' आपके गाँधीजीसे न मिलनेको अस्वीकारकर देनेसे देशमें भयङ्कर परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है। यह दुःखका विषय है कि आपने इस बातका अनुभव नहीं किया कि देशकी सरकारके वर्तमान अध्यक्ष आपसे मिलनेकी शिष्टताकी आशा करनेका ऐसे महापुरुषको अधिकार था। उस शिष्टताका त्याग करके आप दिल्लीके समझौतेसे निर्धारित मार्गसे विमुख हुए हैं, इससे आपने भारतवर्षका राष्ट्रीय अपमान किया है।

महाराजने सन् १९३२ में एक पुस्तिका प्रकाशित करायी थी, जिसमें उन्होंने कहा था :—

"सारा देश तीव्र असन्तोषकी ज्वालासे जल रहा है। जो लोग काँग्रेसवादी नहीं हैं और जिन्होंने अबतक राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं रखा है, वे भी आन्दोलनसे सहानु-

काँग्रेसको सहायता

दिल्लीसे चलते समय सब्जी मण्डीसे दस हजार (विक्टोरिया–जार्जके सिक्के) महाराजने मँगाया था, जो एक बोरियामें था। बनारस पहुँचनेपर उन्होंने आज्ञा दी कि इसे किदवई साहबको दे आओ। मैं पञ्जाब मेलसे लखनऊ पहुँचा। बतलाया गया कि अभी पाँच मिनट पहले किदवई साहब ऐशबाग स्टेशन गये हैं। फैजाबाद जानेके लिए बोरिया लिये ऐशबाग स्टेशन पहुँचा। टिकट खिड़कीपर अकेले किदवाई साहबने कहा—लाहौल विला कूबत—बोरियासे आधा इधर कर दो—आधा अमीनाबाद पार्कमें मोहनलालको दे देना। दो भाग करनेमें पता नहीं किधर ज्यादा था—और किधर कम।

यह धन काँग्रेसके प्रथम चुनावमें सहायताके लिए था, उसके कुछ समय पहले काकोरी ट्रेन डकैती हो चुकी थी, सर्वत्र पुलिसकी कड़ी निगाह थी, मुझे नहीं बताया गया था। लखनऊ पहुँचनेपर कोई मुझे लेने आवेगा। गाड़ी चले जानेपर लखनऊसे फोनकर दिया गया कि मैं लखनऊ नहीं पहुँचा। बनारसमें खलबली मच गयी, कहीं हत्याकर रकम लूटी तो नहीं गई। आदि, मैं अमीनाबाद पार्क मोहनलालजीको बाकी रुपये देकर राजा अवधेश सिंहजीके यहाँ भोजन किया। उन्होंने स्टेशन पहुँचा दिया। मैं अपने पिताजीके पास अमेठीमें रुक गया, तीन दिन बाद वाराणसी आनेपर सबको प्रसन्नता हुई।

भारतीय व्यवस्थापिका सभाके सदस्य

सन् १९०९ में प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभासे दो सदस्य चुनकर भारतीय व्यवस्थापिका सभामें भेजे जानेका नियम बना। महाराज उक्त कौन्सिलके एक सदस्यके बराबर होते रहे। कौन्सिलमें रहकर महाराजने समय-समयपर प्रेस ऐक्ट, शर्तबन्द कुलीप्रथा, रौलट बिल, क्षमा विधान, नमक कर, सोनेकी दर और वस्त्र व्यवस्था रक्षण आदि बिलोंपर सरकारकी तीव्र आलोचना की। सरकारकी पक्षपात पूर्णनीतिमें कोई परिवर्तन न देखकर उन्होंने सन् १९३० में सदस्यताका त्याग कर दिया। कौन्सिलमें महाराज प्रभावशाली माने जाते थे। लार्ड रीडिङ्ग (वासरायके सेक्रेटरी) श्री ड्यूबोल महाराजका बहुत सम्मान करते थे। कौन्सिलमें महाराजके 'स्वराज्यपर' भाषणके बाद उन्होंने महाराजसे अलग मुलाकात की और कहा --पहले हमको समझाइये कि आप स्वराज्यके उपयुक्त हैं भी ? महाराजने कहा—

'बैठिये बातें करूँगा'

प्राइवेट सेक्रेटरीने कहा, आपसे बातें करनेमें मुझे भय है कि कहीं मैं आपकी बातें मान न लूँ,

व्यवस्थापिका सभाका त्याग—पूरे सत्याग्रही

लार्ड हार्डिजने महाराजपर जैसा सन्देह किया था, वैसा ही राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्सके अवसर-पर रेमजे मेक्डानलने भी किया था और कहा था—

हम मिस्टर गाँधीको उतना खतरनाक नहीं समझते, जितना आपको।

२ अप्रैल, १९३० को महाराजने व्यवस्थापिका सभाका परित्याग कर दिया। १ अगस्त १९३० को लोकमान्य तिलककी पुण्य तिथि मनायी गयी। जुलूसमें काँग्रेस कमेटीके अन्य कई सदस्योंके साथ मालवीयजी महाराज भी थे। पुलिसने रोक दिया और नेताओंको पकड़कर जेल पहुँचा दिया। दूसरे दिन महाराजपर १००) जुर्माना हुआ।

२७ अगस्त, १९३० को दिल्लीमें डाक्टर अन्सारीके घरपर काँग्रेस वर्किङ्ग कमेटी थी—महा-

(२)

रवि शशि सिरजनहार प्रभु, मैं बिनवत हौं तोहि ।
पुत्र सूर्य सम तेज युत, जग उपकारी होहि ॥१॥
होवे पुत्र प्रभु राम सम, अथवा कृष्ण समान ।
वीर धीर बुध धर्म दृढ़, जग हित करे महान् ॥२॥
जो पै पुत्री होय तो, सीता सती समान ।
अथवा सावित्री सदृश, धर्म शील गुनखान ॥३॥
रक्षा होवै धर्म की बढ़ै, जाति को मान ।
देश पूर्ण गौरव लहै, जय भारत सन्तान ॥४॥
मैं दुर्बल अति दीन प्रभु, पै तुव शक्ति अपार ।
हरहु असुभ शुभ दृढ़ करहु, बिनवौं बारम्बार ॥५॥
स्थावर जङ्गम जीव में, घट-घट रमता राम ।
सतचित आनन्द घन प्रभु, सब विधि पूरन काम ॥६॥
अंश उसी के जीव हो, करो उसी से नेह ।
सदा रहो दृढ़ धर्म चिर, बसो निरामय देह ॥७॥

महावीर दलके लिए

महावीर को इष्ट है ब्रह्मचर्य का नेम ।
दृढ़ता अपने धर्म में सारे जग से प्रेम ॥
घट-घट व्यापक राम जपु रे, ।
मतकर बैर झूठ मत भाखे, ॥
मत पर धन हर मत मद चाखे ।
जीव मत मार जुवा मत खेले ॥
मत परतिय लख यही तेरो तपर ।

छात्रावस्थाकी रचनाएँ

अपनी मस्तीके दिनोंमें, जब महाराज इण्टरमिडिएट कक्षाके छात्र थे तब उन्होंने 'फक्कड़ सिंह, उपनामसे हिन्दीमें प्रहसन लिखा था । प्रहसनकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

गरे जूही के है गजरे पड़ा रङ्गी दुपट्टा तन ।
भला क्या पूछिये धोती तो ढाके से मँगाते हैं ॥
कभी हम वारनिश पहने कभी पंजाब का जोड़ा ।
हमेशा पास डंडा है, ये फक्कड़ सिंह गाते हैं ॥
न ऊधो से, हमें लेना न माधो का हमें देना ।
करे पैदा जो खाते हैं व दुखियों को खिलाते हैं ॥
नहीं डिप्टी बना चाहें न चाहें हम तासेलदारी ।
पड़े अलमस्त रहते हैं यूँ ही हम दिन बिताते हैं ॥

भूति प्रकटकर रहे हैं और यथासम्भव उसकी सहायताकर रहे हैं। व्यवस्था नष्ट हो रही है, सरकारकी प्रतिष्ठा कम हो गयी है, सरकारका आर्थिक दिवाला हो रहा है। जनताकी देश स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके निश्चयको कुचलनेवाली सरकारकी वर्तमान नीतिकी पर्याप्त परीक्षा हो चुकी है और वह सर्वथा व्यर्थ हो चुकी है।"

इस प्रकार कांग्रेस और धारा सभाओं द्वारा महाराजने लगातार सत्तर वर्षोंतक शिक्षित समुदायमें विचारोंकी अजस्र धारा बहायी है।

'यत्सारभूतं तदुपासनीयम्' के अनुसार उनकी नीति सदा काम निकालने की थी। महाराज कांग्रेस महाधिवेशनोंमें अन्य नेताओंके समान केवल भाषण ही देकर चुप नहीं रहते, वे उसके क्रियान्वयनमें वर्षभरतक देशका चक्कर लगाकर जनताको उद्‌बोधित भी करते रहते थे।

स्वरचित कविताएँ

प्रार्थना (१)

सब देवनके देव प्रभु सब जगके आधार।
दृढ़ राखो मोहि धर्ममें बिनवौं बारम्बार ॥१॥
चन्दा सूरज तुम रचे, रचे सकल संसार।
दृढ़ राखो मोहि सत्यमें, बिनवौं बारम्बार ॥२॥
घट-घट प्रभु तुम एक अज अविनाशी अविकार।
अभयदान मोहि दीजिए, बिनवौं बारम्बार ॥३॥
मेरे मन मन्दिर बसौ, करो ताहि उजियार।
ज्ञान भक्ति प्रभु दीजिये, बिनवौं बारम्बार ॥४॥
सतचित्त आनन्द घन प्रभु सर्वशक्ति आधार।
घन जल-जल बल धर्मबल, दीजै सुख संसार ॥५॥
पतित उधारन दुखहरन दीनबन्धु करतार।
हरहु असुभ शुभ दृढ़ करहु, बिनवौं बारम्बार ॥६॥
जिमि राखे प्रह्लादक, लै सिंह वतार।
तिमि राखो असरन शरण, बिनवौं बारम्बार ॥७॥
पाप दीन अरु दरिद्रता और दासता पाप।
प्रभु दीजै स्वाधीनता, मिटै सकल सन्ताप ॥८॥
नहि लालच वस लोभ बस, नाही डर वस नाथ।
तजों धरम बरम दिजिये, रहिय सदा मम साथ ॥९॥
जाके मन प्रभु तुम बसो, सो डर कासौं खाय।
सिर जावै तो जाय प्रभु, मेरो धरम न जाय ॥१०॥
उठो धरमके काम में, उठो देशके काम।
दीनबन्धु तुव नाम ले, नाथ राखियो लाज ॥११॥

'डारन' समस्या

मूलिहौं सो हँसि माँगिबो दान को रंच वही हितपानि परासन ।
भूलि हैं फागु के रागु सबै वह ताकहि ताकि के कुंकुभ मारन ।।
सो तो भयो सब हीं 'मकरन्द' जू दाखहि चाखि के बेर बिसारन ।
जापर चीर चुराय खड़े वह भूलि हैं कैसे कदम्ब की डारन ।।

ढूढ्यों चहुँ झँझरीन झरोखन ढूढ्यों किते भूदाव पहारन ।
मंजुल कुंजन ढूँढ़ि फिर्‌यो पर हाय मिल्यो न कहूँ गिरिधारन ।।
लाक्त नाहि तऊ परतीति सह्यो इतनी दुख प्रीति के कारन ।
जानत स्याम अजों उतही चित चौंकत देखि कदम्ब की डारन ।।

महाराज रसिक भी थे । शृङ्गार रसपर उनका एक दोहा इस प्रकार है :—

शृङ्गार रसकी कवितापर महाराजका विचार

यह रस ऐसो है बुरो, मत को देत बिगारि ।
याते पास न आवहू जब लौं होय अनारि ।।

यहाँ अन्तिम 'अनारि' शब्दमें श्लेष है अर्थात् 'अज्ञान अनाड़ी—दूसरा स्त्री-विहीन ।

सोरठा

गुष्ठी जनन को साथ रसमय कविता मोहि रुचि ।
सदा दीजिये नाथ जब जब इहाँ पढ़ाइयो ।।

ये सब आरम्भिक पुरानी कविताएँ हैं ।

हिन्दू धर्मोपदेश

संघे शक्तिः कलौयुगे

हिताय सर्वलोकानां निग्रहाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय प्रणम्य परमेश्वरम् ।।१।।
ग्रामे ग्रामे कथा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा ।
पाठशाला मल्लशाला प्रति पर्व महोत्सवः ।।२।।
अनाथाः विधवा रक्ष्याः मन्दिराणि तथा च गौः ।
धर्म संघटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धिनम् ।।३।।
स्त्रीणां समादरः कार्यो दुःखितेषु दया तथा ।
अहिंसकान हन्तव्या आततायी वधार्हणः ।।४।।
अभयं सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं धृतिः क्षमा ।
सख्याः सदाऽमृत मिव स्त्रीभिश्च पुरुषस्तथा ।।५।।
कर्मणा फलमस्तीति विस्मर्तव्यं न जातु चित् ।
भवे पुनः पुनर्जन्म मोक्षसावनुसारता ।।६।।

न देखें हम तरफ उनकी जो हमसे नेक मुँह फेरें ।
जो दिल से हम से मिलते हैं, झुक उनको देख जाते हैं ॥
नहीं रहती फिकर हम को कि लावें तेल औ लकड़ी ।
मिले तो हलवा छन जावे नहीं झूरी उड़ाते हैं ॥
सुनो यारो जो सुख चाहो तो पचड़ेसे गृहस्थी के ।
छूटो फक्कड़पना ले लो यही हम तो सिखाते हैं ॥
हमें मत भूलना यारो बसे हम पास 'मन मोहन' ।
हुई है देर जाते हैं तुम्हारा शुभ मनाते हैं ॥

यह कविता तो है ही महाराज अपने सच्चे स्वरूपका दर्शन भी इसमें करा देते हैं ।

अहले योरप पूरा जैंटिलमैन कहलाता है हम ।
डोंटसे बाबू टु मी मिस्टर कहा जाता है हम ॥
हिन्दुओं का खाना पीना हम को कुछ भाता नहीं ।
चीफ चमचे से कटे होटल में जा खाते हैं हम ॥
कोट औ पतलून पहने हैट एक सिरपर धरे ।
इवनिंग में वाक करने पार्क को जाते हैं हम ॥

महाराज अपनी युवावस्थामें 'मकरन्द' उपनामसे 'राधिका रानी' समस्याकी पूर्ति की थीं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीकी मासिक पत्रिकामें प्रकाशित होती थी—

सवैया

इन्दु सुधा बरस्यो नलिनीन पै बै न बिना रवि के हरखानी ।
त्यौं रवि तेज दिखायो तरु बिनु इन्दु कुमोदिनी ना विकसानी ॥
न्यारी कछू यह प्रीति की रीति नहीं 'मकरन्दजू' जात बखानी ।
साँवरो कामरीवार गुपाल पै रीझि लटू भई राधिकारानी ॥
वे कबते उत ठाढ़े अहै इत बैठि अहौ तुम नारि चुपानी ।
थाकी तुम्हें समुझावत सामतें ऐ ही मैं रावरि बानि न जानी ॥
मोहि कहा पै य है मकरन्द हुँ जो कहुँ खीझि के रूसन ठानी ।
आजु मनावे न मानति हौ कल्ह आपु मनाइ हौ राधिकारानी ॥
माँगत मोतिन माल नहीं, नहिं माँगत तों सौ मैं भोजन पानी ।
सारी न माँगत हौं 'मकरन्द' न थारी अनेक सुगन्धन सानी ॥
माँगत हौं अधरा रस रंजक सोऊ न दीज तु हौ सनमानी ।
सूमता एती तुम्हें नहिं चाहिये बाजति हौं चहूँ राधिकारानी ॥
धूम मची वृज फागुरी आजु बजे डफ झाँझ अबीर उड़ानी ।
ताकि चलैं पिचुका दुहुँ ओर गलीन पै रँग की धार बहानी ॥
भीजे निगोड़े उड़े मकरन्द दुहूँ लखि सोभा न जात बखानी ।
ग्वालन साथ इतै नन्दलाल उतै सँग ग्वालिन राधिकारानी ॥

श्लोकोंका हिन्दी अनुवाद

कलियुगमें एकता ही में शक्ति है।

परमेश्वरको प्रणामकर सब प्राणियोंके उपकार हेतु बुराई करनेवालोंको दबाने और दण्ड देनेके लिए धर्मकी स्थापनाके लिए, धर्मके अनुसार सङ्गठन—मिलापकर गाँव-गाँवमें सभा करनी चाहिए।

गाँव-गाँवमें कथा बैठानी चाहिए, गाँव-गाँवमें पाठशाला खोलनी चाहिए, गाँव-गाँवमें अखाड़ा खोलना चाहिए और हर पर्वोंपर मिलकर उत्सव मनाना चाहिए।

सब भाइयोंको मिलकर अनाथोंकी, विधवाओंकी, मन्दिरोंकी और गाँवोंकी रक्षा करनी चाहिए और इन कार्योंके लिए दान देना चाहिए। स्त्रियोंका सम्मान करना चाहिए, दुखियोंपर दया करनी चाहिए। उन जीवोंको नहीं मारना चाहिए जो किसीपर चोट नहीं करते। मारना उन्हें चाहिए जो आततायी हों, जो स्त्रियों या किसी दूसरे के धन-धर्म या प्राणपर वार करते हों। स्त्रियोंको, पुरुषों-को भी निडरपन, सच्चाई, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य धारण और क्षमाका अमृतके समान सदा सेवन करना चाहिए।

इस बातको नहीं भूलना चाहिए कि अच्छे कर्मोंका फल अच्छा और बुरे कर्मोंका फल बुरा होता है और कर्मानुसार ही बार-बार जन्म लेना पड़ता है या मोक्ष प्राप्त होता है।

घट-घटमें रमनेवाले भगवान् विष्णुका, सर्वव्यापी ईश्वरका सुमिरन सदा करना चाहिए, जो एकमें अद्वितीय है यानी जिनके समान दूसरा कोई नहीं है—जो दुःख और पापको हरनेवाले हैं। जो सब पवित्र वस्तुओंसे अधिक पवित्र, सब मङ्गल कार्योंके मङ्गल स्वरूप, सब देवताओंके देवता हैं और समस्त संसारके आदि सनातन—अनन्ता अविनाशी पिता हैं।

सनातन धर्म, आर्य समाजी, ब्रह्म समाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध आदि सब हिन्दुओंको चाहिए कि अपने-अपने विशेष धर्मका पालन करते हुए एक दूसरेके साथ प्रेम और आदरसे व्यवहार करें।

अपने विश्वासमें दृढ़ता, दूसरेकी निन्दाका त्याग, मतभेदमें सहनशीलता और प्राणी मात्रसे मित्रता रखनी चाहिए।

सुनो धर्मके निचोड़को और सुनकर उसके अनुसार आचरण करो, जो काम अपनेको बुरा और कष्टदायक जान पड़े, वह दूसरोंके साथ नहीं करना चाहिए।

मनुष्यको चाहिए कि जिस कामको वह नहीं चाहता है कि कोई दूसरा उसके साथ करे, उस कामको वह भी दूसरेके प्रति न करे क्योंकि वह जानता है कि यदि उसके साथ कोई ऐसी बात करता है, जो उसको प्रिय नहीं है तो उसको कैसी पीड़ा पहुँचती है।

न तो कोई किसीसे डरे और न किसीको डर पहुँचाये। श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार श्रेष्ठ पुरुषोंकी वृत्तिमें दृढ़ रहते हुए ऐसा जीवन जीये जैसा सज्जनको जीना चाहिए।

प्रत्येकको उचित है कि वे यह भावना रखें कि सब लोग सुखी रहें, नीरोग रहें, सबका भला हो, कोई दुःख न पावे। प्राणियोंके दुःखको दूर करनेमें तत्पर वह दया बलवानोंकी सेवा है। धर्मानुसार चलनेवालोंको कभी इसका त्याग नहीं करना चाहिए।

देशकी उन्नतिके कामोंमें जो पारसी, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, देशभक्त हों, उनके साथ मिलकर काम करना चाहिए।

स्मर्तव्यः सततं विष्णु सर्वभूतेष्ववस्थितः ।
एक एवाद्वितीयो यः शोक पाप हरः शिवः ॥७॥

पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगलम् ।
देवतं देवतानां च लोकानां योऽव्ययः पिता ॥८॥

सनातनीयाः समाजाः सिक्खाः जैताश्च सौगताः ।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः भावयेयुः परस्परम् ॥९॥

विश्वासे दृढ़ता स्वीये परनिन्दा विवर्जनम् ।
तितिक्षः मतमे देषु प्राणिमात्रं मित्रता ॥१०॥

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वाचाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषानं समाचरेत् ॥११॥

यदन्यं विहितं वेच्छेदात्मनः कर्म पुरुषः ।
न तत्परस्य कुर्वंति जानतप्रियमात्मनः ॥१२॥

जीवितुंयः स्वयं चेच्छेत्कथं सोन्यं प्रघातयेत् ।
यद्यदात्मनि चेच्छत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥१३॥

न कदाचिद्विमेत्वन्यान्न कंचन विभीषयेत् ।
आर्यवृत्ति सभालं व्यजीवेत्सज्जन जीवनम् ॥१४॥

सर्वे च सुखिनाः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिदुःखभाग्भवेत् ॥१५॥

इत्युक्त लक्षणा प्राणि दुःखध्वंसुत तत्परा ।
दया बलवतां शोभा न त्याज्याधर्मचारिभिः ॥१६॥

सारसीयेनुंसलमानेरी लाइये चहूदिभिः ।
देशभुक्त्ये मितित्वा च कार्या देशसेमन्मति ॥१७॥

पुण्यो यं भारतवर्षो हिन्दुस्थानः प्रकीर्तितः ।
वरिष्ठः सर्व देशानां धनधर्म सुखप्रदः ॥१६॥

गायन्ति देवा किलगीतकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।
स्वर्गपवर्गस्य च हेतु भूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥१९॥

मातृ भूमिः पितुर्भूमिः कर्म भूमिः सुजन्मनाम् ।
भक्तिमर्हति देशो यं सेव्यः प्राणैधनैरपि ॥२०॥

चातुवर्ण्य यत्र सृष्टं गुण कर्म विभागशः ।
चत्वारं आश्रमाः पुण्याः चतुर्वर्गस्य साधकाः ॥२१॥

उत्तमः सर्वधर्माणां हिन्दू धर्मो यमुच्यये ।
रक्ष्यः प्रचारणीयश्च सर्वलोकहितैषिभिः ॥२२॥

समदर्शिता

शिमलामें महाराज बीकानेरसे मिलनेका समय प्रातः ९ बजे निर्धारित था। महाराज उस समय बाल बनवा रहे थे और नाईसे हिन्दूविश्वविद्यालयके सम्बन्धकी बातें समझा रहे थे।

मैंने उनका ध्यान महाराजासाहबसे ९ बजे मिलनेकी ओर दिलाया और कहा कि वे आपकी प्रतीक्षामें होंगे, देर हो रही है। तब उन्होंने कहा :—

> मैं इस भाईसे आवश्यक बातें कर रहा हूँ, जो महाराजासाहबके मिलनेसे कम महत्त्व नहीं रखती, उन्हें कहला दो कि आज नहीं मिलूंगा, कल शामको मिलूंगा।

पण्डिताः समदर्शिनः

मिलनेवालोंके प्रति यह भाव देशके उस पूज्य महापुरुषका था, जो न केवल काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके संस्थापक बल्कि—कुलपति भी थे। प्रत्युत अगणित धार्मिक संस्थाओंके संरक्षक और धारा सभाके प्रतिष्ठित क्रियाशील माननीय सदस्य थे। अपनी लम्बी सेवा-अवधिमें मिलनेके सम्बन्धमें मैंने केवल एक बार उनके मुखसे अत्यन्त सङ्कोचके साथ ८॥ बजे रातको उनके मुखसे निकलते सुना था :—

आज चूर-चूर हो गया हूँ, बोलनेका जी नहीं चाहता, यदि आज किसीसे न मिलता तो अच्छा था। उस दिन विश्वविद्यालयके प्रबन्ध समितिकी बैठक दो बजेसे हो रही थी। बजटका मामला था—साढ़े आठ बजे समाप्त हुई थी। इससे थकावट बढ़ गयी थी, उनके मुखसे न मिलनेकी बात तो निकल चुकी थी किन्तु शीघ्र ही कहने लगे।

> 'किस कष्टसे लोग यहाँतक आवेंगे और बिना मिले वापस चले जायेंगे, इससे उन्हें अधिक कष्ट होगा।'

यह आश्वासन देनेपर कि आप आश्वस्त रहें, आगन्तुकको इस तरह समझा दिया जायगा कि वे बुरा नहीं मानेंगे। तब उन्होंने समझानेका ढङ्ग बतलाया कि ऐसे मृदु शब्दोंमें समझाना चाहिए कि उनको जरा भी अप्रिय न लग सके।

इन वाक्योंमें कितनी कारुणिक विवशता झलकती है।

त्याग

महाराजने प्रस्तावित 'सर'की उपाधि अस्वीकारकर दिया था, डाक्टरेटकी उपाधिके लिए उन्होंने बतलाया था कि मैंने पिताजीको वचन दिया था कि संस्कृतमें एम० ए० पास करूँगा—वह नहीं कर सका। अब कोई उपाधि नहीं लूँगा। सर आशुतोष मुकर्जीने उपाधि प्रदानके लिए निमन्त्रित किया था—महाराजने उत्तर भी नहीं दिया था।

इकबाल साहबने व्यंग्य किया था—

> 'कर चुके खिदमत बहुत कुछ कौम की।
> देखिये होते हैं कब 'सर' मालवी'॥

किसीने इसका जवाब इस प्रकार दिया है :—

> आ के मैदान में वह कब पीछे हटे।
> किस तरह बन जायँगे 'सर' मालवीय॥

हिन्दुस्तानके नामसे प्रसिद्ध यह भारतवर्ष बड़ा पवित्र देश है धन, धर्म और सुखका देनेवाला यह देश सब देशोंसे उत्तम है।

कहा जाता है कि देवता लोग यह गीत गाते हैं कि वे लोग धन्य हैं, जिनका जन्म भारतभूमिमें होता है, जिसमें जन्म लेकर मनुष्य स्वर्गका सुख और मोक्ष दोनोंको पा सकता है।

यह हमारी मातृभूमि है, पितृभूमि है—जो लोग सुजन्मा हैं, जिनके जीवन बहुत अच्छे हुए हैं, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि महापुरुषोंके, महात्माओंके, आचार्योंके, ब्रह्मर्षियोंके, राजर्षियोंके, पुरुषोंके, कर्मवीरोंके, शूरवीरों, दानवीरोंके, स्वतन्त्रताके प्रेमी देशभक्तोंके उज्ज्वल कामोंकी यह कर्मभूमि है। इस देशमें हमको परम भक्ति करनी चाहिए और प्राणोंसे, धनसे भी इसकी सेवा करनी चाहिए।

सर्व धर्मोंमें उत्तम इसी धर्मको हिन्दू-धर्म कहते हैं। जो लोग समस्त संसारका उपकार चाहते हैं, उनको उचित है कि इस धर्मकी रक्षा और इसका प्रचार करें।

आम पौष्टिक है

प्रेसिडेण्ट पटेलके साथ महाराजने उत्तर प्रदेशका दौरा किया था। लखनऊसे पटेलसाहब कानपुरकी ओर और पूर्वी भाग बस्ती, गोण्डा, गोरखपुरकी ओर बढ़े। लखनऊमें किसी सज्जनने महाराजके लिए बड़े-बड़े तीन टोकरियोंमें सफेदा आम डिब्बेमें रखवा दिया था। बाराबङ्की स्टेशन-पर कई फलवाले चाकू लिये गये आमकी तीनों टोकरियाँ अपने डिब्बे इण्टर क्लासमें लायी गयीं। महाराजके नौकर और रसोइया दोनों बीमार थे, उस समय केवल गोविन्दजी और मैं साथमें था। गोविन्द मालवीयने आमोंपर अपनी दृष्टि लगायी और कहा कि क्यों न इसका स्वाद लिया जाय? बस्ती पहुँचते-पहुँचते तीनों टोकरियाँ, जिनमें २०० से कम आम न होंगे, स्वाद लेनेमें हम दोनोंने समाप्तकर दिया था। महाराजको बस्ती मिडिल स्कूलमें ठहराया गया था। वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने कहा कि मैं केवल आम और दूध लूँगा, भोजन नहीं करूँगा। तुम और गोविन्द अपने लिये भोजन बना लो। मैंने बतलाया कि जो तीन टोकरियाँ थीं हम दोनोंने बस्ती आते-आते समाप्त कर दिया, सुनते ही महाराज अट्टहास करने लगे। विनोद मुद्रामें कहने लगे। आम बहुत पौष्टिक है, इसका कल्प किया जाता है। आराके मेरे एक वकील मित्र आमके दिनोंमें नित्य २५० आम चूसकर ऊपर से आधा सेर दूधका जलपान करते थे, उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। तुम लोग वहाँ-तक नहीं पहुँच सकते।

गोविन्दजीने महाराजके लिए किसी प्रकार रोटी बना दिया। उनको आमोंकी गर्मीसे बैठनेमें तकलीफ हो रही थी—मैंने बाटी बना ली। उससे हम लोगोंका काम चल गया। मैंने गोविन्दजीसे कहा कि बाबूजीका पैर थोड़ा दबा दीजिये, नहीं तो वे सो नहीं पायेंगे। उन्होंने अपनी असमर्थता व्यक्त की कि बैठनेमें तकलीफ हो रही है। तुम्हीं कर दो—मैंने ज्योंही हाथ लगाया, उन्होंने कहा गोविन्द—मैंने कहा मैं हूँ, उन्होंने कहा, यह तुम्हारा काम नहीं है, गोविन्दको भेजो—मैंने बतलाया, आमोंकी गर्मी और दीर्घ भोजन पाकर बैठनेमें असमर्थ हो रहे हैं। गोविन्दजी यह काम कर सकते हैं और मुझे यह अधिकार नहीं है क्यों? आपको कष्ट होगा, अच्छी नींद नहीं आयेगी। इसलिए नौकरके अभावमें थोड़ा सेवाकर रहा हूँ। इसमें आपको आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उन्होंने कहा अच्छी बात है। पर इसको नियमित बनानेकी न करना। तुम्हारा हाथ भी कड़ा है, मेरा शरीर बरदास्त नहीं करता। उन्होंने मेरी हथेली पकड़कर शरीर दबानेकी विधि बतलायी, जब नाक बजने लगी तो छोड़ दिया।

राजासाहबको इस प्रस्तावसे इतनी प्रसन्नता हुई कि हर्षातिरेकका सम्वरण न कर उन्होंने महाराजको सुना दिया—महाराजने कहा :—

'सूझ अच्छी है किन्तु इसका क्रियान्वयन नहीं होगा। देशके धनिकों, धार्मिकोंकी सहायतासे विश्वविद्यालयका निर्माण हुआ है, वे यशस्वी हैं। इसमें मेरा कुछ यश नहीं है कि मेरी मूर्ति लगायी जाय। वह भी मेरी उपस्थितिमें।'

एक बार सन् १९३४ में विश्वविद्यालयके कार्यसे बम्बईकी यात्राके लिए ५००) महाराजकी आज्ञासे एडवान्स लिया गया था। साथमें लेखक, गोविन्द मालवीय और सुन्दरजी भी थे। बम्बई पहुँचनेपर शीघ्र ही कुछ धन प्राप्त हो गया था।

गोविन्द मालवीयने कहा—आफिससे जो धन ५००) मँगाया था, यात्रा बिल बनाकर हिसाब एडजेस्ट करा लेना। उन्हें बतलाया, आजतक तो ऐसा नहीं किया जाता रहा, एडवान्सकी रकम हमेशा वापस कर दी जाती है। उन्होंने कहा कि युनिवर्सिटीके कामसे आये हैं तो एडजेस्ट करानेमें कोई हर्ज नहीं है। हम लोगोंकी बातचीत महाराज साथवाले कमरेसे सुन रसे थे।

मध्याह्नोत्तर जब हम सब उनके कमरेमें बैठे थे तब उन्होंने पूछा कि ५००) की एडजेस्टकी बात तुम लोग कर रहे थे। इसपर गोविन्दजीने तपाकसे कह दिया कि बाबूजी इसे तो एडजेस्ट करना ही चाहिए। इसपर उन्हें वह फटकार पड़ी कि वह बोलने लायक नहीं रह गये। महाराजने भर्त्सना करते हुए कहा—क्या विश्वविद्यालय मुझसे भिन्न है ? तुम्हें इतनी दुर्बुद्धि क्यों हुई ?

सन् १९३१ में महाराजकी पत्नी, पुत्री तथा पड़ोसकी अन्य ५ स्त्रियाँ, नौकर-चाकरके साथ पशुपतिनाथ दर्शनार्थ नेपालकी यात्रा की थी। साथमें लेखक भी था। यात्रा गोपनीय रखी गयी थी। महाराजकी आज्ञा थी कि वहाँ इस पार्टीकी महाराजाको मेहमानी नहीं करनी होगी किन्तु किसी प्रकार नेपाल नरेशको महाराजके परिवारके यात्राकी भनक लग गयी थी।

रक्सौल स्टेशनपर पहुँचते ही राज्य कर्मचारियोंके दलने प्रश्न किया कि आप लोग मालवीयजी महाराजके परिवारके हैं ? मेरे स्वीकारात्मक उत्तरपर उन्होंने कहा हमलोग तीन दिनोंसे आपलोगोंके आगमनकी प्रतीक्षा हर ट्रेनमें करते रहे हैं। आपलोग महाराजाधिराजके अतिथि हैं और आप लोगोंको तबतक यहाँ स्टेटके रेस्टरूममें रहना है, जबतक काठमाण्डू पहुँचनेके लिए सवारियोंका प्रबन्ध न हो जाय।

लेखक कुछ क्षण सोचता रहा। माताजी बहुत उच्चकोटिकी देवी थीं। वे सुन चुकी थीं कि महाराजाधिराजका अतिथि होनेका निषेध किया गया है। शायद इससे सहमत नहीं होंगी। उस दशामें नेपाल नरेशका अपमान होगा। स्वीकार करनेपर महाराजकी आज्ञाका उल्लङ्घन होगा। साहस बटोरकर कहा कि—माँ बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गयी है, मेरी प्रार्थना है कि आप कृपाकर महाराजाधिराजका आतिथ्य स्वीकार करनेकी अनुमति प्रदान करें। मैं बाबूजीको (महाराज मालवीयजीको) मना लूँगा। अभी तार भेजकर तथा पत्रमें स्थितिका विवरण लिखकर उन्हें सूचित कर दूँगा कि हमलोग राज्यके अतिथि हैं। माताजीकी आज्ञा हुई कि तुम जैसा उचित समझो, करो—तुम उचित ही करोगे। सात दिनोंतक प्रतिदिन पशुपतिनाथका, दर्शनीय स्थानोंका भ्रमण किया गया। पार्टीके संरक्षणार्थ कर्नल मान सिंहके साथ दर्जनों सैनिक थे।

माताजीने महारानीसे तथा लेखकने महाराजा युद्ध शमशेर बहादुरसे मुलाकात की थी। महा-

सरदार अमर सिंहने जो भविष्यवाणी की थी—सत्य सिद्ध हुई।

मालवीय की हिजो से वाँ शायरे पञ्जाब अब
खाँ बहादुर जो न हो सकते वे सर हो जायँगे ॥
इनकी शेरो में मजमत मालवीय को देखकर
खुश अराकाने हुकूम सर बसर हो जायँगे ॥
मालवी को आज तक कोई नहीं सर कर सका
उनसे लड़ने में यकीनन आप सर हो जायँगे ॥

कवि अकबर महाराजके प्रशंसक थे—

इकबाल साहबपर व्यङ्ग किया था—

हजार शेख ने दाढ़ी बढ़ायी सन की सी।
मगर वह बात कहाँ मालवी मदन की सी ॥

निरभिमानिता—त्यागी दानशीलता

महाराजको जब कोई कहता, आप तो इस युगके ब्रह्मर्षि हैं, वे कहते थे—नारायण-नारायण-ऐसा कहकर उस नामको कलङ्कित मत किजिये। मैं उन पूतपावन महर्षियोंका चरण रज लेनेका भी अपनेको अधिकारी नहीं समझता। वे अपनी स्तुतिसे अप्रसन्न होते थे—मनुस्मृतिका यह श्लोक उनकी जिह्वापर बना रहता था—

'सम्मानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजो विषादिवाः'

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थानके उपाध्यक्ष डाक्टर शिवमङ्गल सिंह 'सुमन'ने छात्रावस्थामें विश्व-विद्यालयकी कीर्तिगान तथा महाराजका गुणानुवाद किया था। उसे वह महाराजके समक्ष महात्मा गाँधीको सुना रहे थे। महाराजने कहा—"यह अंश निकाल दो, यह नहीं रहेगा।" गाँधीजीने कहा—यह अंश अवश्य रहेगा—नहीं निकलेगा। विवश होकर महाराजको मौन हो जाना पड़ा।

इस प्रसङ्गमें एक मजेदार बात यह है :—

सन्त देवरहवा बाबाने स्व० पुरुषोत्तमदास टण्डनको 'राजर्षि' की उपाधिसे सम्मानित किया था। बादमें उनकी इच्छा हुई कि डाक्टर राधाकृष्णन्‌को 'ब्रह्मर्षि' पदसे विभूषित कर दिया जाय। डाक्टर राधाकृष्णन्‌ने अपनी स्वीकृति भी सम्भवतः दे दी थी। पत्रोंमें प्रकाशित भी हो गया था कि डाक्टरसाहबके लिए सरकारी तन्त्र व्यवस्थामें लीन है।

डाक्टर राधाकृष्णन् महोदयका ध्यान आकृष्ट करनेपर कि मालवीयजी महाराज इस महान् गौरव पदकी महत्ता स्वयंको उनके चरण-रज लेनेका भी अधिकारी नहीं समझते थे। यह आप अच्छी तरह जानते थे। आश्चर्य है कि आपने उसकी प्राप्तिके लिए अपनी स्वीकृति कैसे प्रदानकर दी ?

सम्भवतः इस पत्रने उन्हें सोचने-सँभलनेका अवसर दिया होगा और ब्रह्मर्षि पदका प्रोग्राम रदकर दिया गया।

सन् १९३८ में जब विश्वविद्यालयकी चहारदीवारी बनवाई थी। गोपुर निर्माणका प्रश्न विचाराधीन था। उस समय राजा ज्वालाप्रसाद आवश्यक पत्रके विषयमें बात कर रहे थे, उनको सङ्केत किया गया कि फाटकके सामने विस्तृत भूमिमें गोलाकार चबूतरे बनवाकर उसके बीचमें महाराजकी आदमकद मूर्ति लगायी जाये, जिससे विश्वविद्यालयमें प्रवेश करनेवालोंको स्वरूपका दर्शन प्राप्त हो सके।

गोविन्दजी महाराजको अपने पक्षमें समर्थन देनेके लिए राजी नहीं कर सके। तब उन्होंने महाराजको अनुकूल करनेके लिए लेखकसे मन्त्रणा की थी।

उपयुक्त अवसर देखकर लेखकने महाराजसे सहायक रजिस्ट्रारकी नियुक्तिके सम्बन्धमें चर्चा चला दी और कहा :—'बाबूजी! आप अब इन सब प्रपञ्चमें क्यों पड़ते है?' उन्होंने कहा—'मैं नहीं चाहता कि मेरे परिवारका या मेरा कोई सम्बन्धी इस विश्वविद्यालयके किसी पदपर रहे, इसलिए उस व्यक्तिका समर्थन करता हूँ।'

महाराजको निजी व्ययके लिए एक हजारकी धनराशि प्रतिमास बिरला बन्धुओंकी ओरसे आती थी। सन् १९३३ में गोविन्द मालवीयने इन्श्योरेन्सका काम प्रारम्भ किया था। तब यह रकम न भेजनेके लिए महाराजने सेठ जुगलकिशोर बिरलासे कहा। वे सुनकर दुःखी हुए और बहुत अनुनय-विनय करनेपर राजी हुए थे।

सेठ जुगलकिशोर बिरलाको किसीने बतलाया था कि महाराजके जार्ज टाउन प्रयागवाले मकानपर बीस हजारका ऋण है, सेठजीने बीस हजारका चेक भेज दिया था। महाराजने कहा इसे वापस करो। इसपर महाराजसे—कहा गया कि सेठजी जब यहाँ आयें तब समझाकर वापस करना उचित होगा अन्यथा वे दुःखी होंगे। सेठजीके मिलनेपर महाराजने चेक वापस करनेको कहा तो सेठजी रो पड़े। अन्ततः उनके कष्टका स्मरणकर दुःखी मनसे उसे स्वीकार करना पड़ा।

महाराज अपने लिये किसीसे भी कुछ ग्रहण नहीं करते थे। केवल दो व्यक्तियोंकी सहायता स्वीकार करते थे। बिरला बन्धुओंका मासिक तथा काशीमें स्थानीय राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्त का। बाबूसाहब—प्रायः अपने निवास स्थान सेवा उपवनमें अपने साथ, अपनी देख-रेखमें रखते थे। मालवीय भवनसे आग्रहपूर्वक उन्हें उठा ले जाया करते थे।

यह विचित्र बात है कि यदि परिवारके या सम्बन्धियोंमें कोई योग्य व्यक्ति हो तो उसकी सेवासे विश्वविद्यालय वञ्चित रहे और व्यक्ति आपके सम्बन्धी होनेके कारण पद न प्राप्तकर सके तो आप अब अपनी सर्वसत्ता सम्पन्नता—कर्तुमकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थनका त्यागकर—दूसरोंसे किसीके लिए संस्तुति करते रहें। यह भले ही आपको अनुचित न प्रतीत होता हो, हमलोगोंको अच्छा नहीं लगता। महाराजने कहा : 'अच्छी बात है, तुम लोगोंको बुरा लगता है तो अब मैं नहीं कहूँगा।'

ऐसी स्थितिमें एक तीसरे व्यक्ति सहायक रजिस्ट्रार बने। महाराजके निकटतम सम्बन्धी न हो सके।

महाराजने जितनी विभिन्न संस्थाएँ (हिन्दू महासभा, सनातन धर्म महासभा, सेवा समिति, महावीरदल, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय आदि) स्थापित की थी। उन्हें दूसरोंको सौंप दिया था। केवल काशी हिन्दूविश्वविद्यालयका प्रबन्ध कुछ दिनोंतक अपने नियन्त्रणमें इसलिए रखा था कि भावी स्वतन्त्र भारतकी बागडोर सँभालनेके लिए उपयुक्त पात्रोंको तैयार करना था। आगे चलकर उसे भी त्याग दिया। यह सर्वविदित है कि काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके स्नातकोंने देशके विभिन्न क्षेत्रोंमें पदोंपर प्रतिष्ठित होकर स्वतन्त्र भारतके सञ्चालनमें योगदान दे रहे हैं।

दयार्द्र-दानशीलता

बात लगभग सन् १९३६की है। महाराज प्रायः ७ बजे प्रातः पैदल घूमने निकलते थे। एक

रानीको आशीर्वाद स्वरूप भेंट देनेके लिए काडमाण्डूमें एक भी स्वदेशी वस्तु न मिल सकी थी। माताजी-को दुःख हुआ था। महारानीसे उन्होंने इस बातकी शिकायत भी की कि आपके यहाँ स्वदेशी वस्तुओंका अभाव खटकता है। महारानीने आश्वासन दिया कि शनैः-शनैः यथाक्रम स्वदेशी वस्तुओंके प्रयोगकी व्यवस्था होगी।

महारानीकी ओरसे माताजीको भेंटमें अनेक वस्तुएँ प्रचुर कीमती वस्त्र, कस्तूरी—मोती जड़ित सुन्दर माला, चाँदी कण्ठकी भुजाली आदि अनेक सामान मिले थे। केवल कस्तूरी मालाकी कीमत दस हजार लगायी गयी थी।

काशी आनेपर सब सामान महाराजके समक्ष रक्खा गया। उन्होंने कहा—सब सामान विश्व-विद्यालयमें जमा करा दें। कहा गया कि ये सामान माताजीको मिले हैं, इनपर एकमात्र अधिकार उन्हींका है। महाराजने कहा—वाइसचान्सलरकी पत्नीको मिले हैं, इसलिए ये सब जमा करा देना चाहिए। ब्राह्मणके घरमें ये सब नहीं रखना चाहिए, सबकी आँखें उन वस्तुओंपर लगी थीं। माताजीने कहा था कि जैसी आपकी इच्छा किन्तु भुजाली ठाकुर साहब (शिवनाथ सिंह) को दे दिया जाय। महाराजने कहा : नाम मत लें, ये क्रोधी हैं, अनन्ततः कुछ वस्त्रोंको छोड़कर सब सामान विश्वविद्यालयमें जमा करा दिया गया था।

महाराजा जोधपुर जब काशी आये थे—महाराजकी अस्वस्थतामें उनके दर्शनार्थ पहुँचे थे। दवाके लिए पाँच सहस्रकी धनराशि उन्होंने प्रदान की थी, जिसे महाराजने धार्मिक पुस्तक प्रकाशनके लिए भेज दिया था।

उदयपुरके महाराजाकी एक लाखकी धनराशि परिवारमें लगानेकी महाराजाकी आज्ञा अस्वीकार कर वापस आ गये थे।

स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखलेका उद्गारः

'त्याग किया मालवीयजीने : गरीब घरमें पैदा होकर वकील हुए, धन कमाया, अमीरीका मजा चखा और चखकर उसे देशके लिए ठुकरा दिया। त्याग इसे कहते हैं।

असहयोग आन्दोलन चलानेके लिए रुपयोंकी कमी हो गयी थी। सरकारके भयसे कोई गुप्त सहायता भी नहीं देता था। काँग्रेसके बड़े-बड़े नेता जेलोंमें थे। जब किसी प्रकार पैसोंकी समस्या सुलझती नहीं दिखायी दी तब मौजूद काँग्रेस कार्यकर्त्ता महाराजके पास पहुँचे। महाराजने कहा—'मेरा प्रयागका मकान गिरवी रखकर काम चलाओ, आगे देखा जायगा।'

कर्यकर्त्ताओंके ऐसा न करनेके अनुरोध करनेपर महाराजसे कुछ निजी चिट्ठियाँ धनके लिए लेकर चले गये, जिसपर चार हजार रुपये चन्दामें मिल गये थे।

एसेम्बलीकी सदस्यताके लिए जब प्रथम बार काँग्रेसके उम्मीदवार खड़े किये गये थे, तात्कालिक कार्यारम्भके लिए महाराज पाँच हजारकी धनराशि लेखक द्वारा श्री रफी अहमद किदवईके पास लखनऊ पहुँचवायी थी।

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके सहायक रजिस्ट्रार पदकी नियुक्तिके लिए गोविन्द मालवीय अपने सम्बन्धीके लिए प्रयत्नशील थे। महाराज एक अन्य व्यक्तिके लिए—

थे, पूछा कि सिसको मथुरा चलना है। हिन्दू महासभाके प्रधानमन्त्री देवराज शर्मा आदि थे, सबने वाह कर दी।

जब ट्रेन रवाना हुई तो महाराजने पूछा—मथुराका टिकट लाये हो न! हाँ कहनेपर उन्होंने कहा—उसे अटैचीमें डाल दो, उसे किसीकी यात्राके लिए नहीं मँगाया है। पिछली बार तुमने मथुरासे इलाहाबादका टिकट खरीदा था तो दिल्लीसे मथुरातक तो मुफ्तमें बिना टिकट यात्रा की थी। रेलवेका गद्दा, पङ्खा, पानी, रोशनी आदि इस्तेमाल किया, उसका नुकसान हुआ कि नहीं? इसलिए उसकी क्षतिपूर्तिके लिए यह टिकट मँगाया है।

आजके जन-साधारण या व्यक्ति विशेषसे भी ऐसा आचरण सम्भव हो सकता है? असम्भव है। उदात्त भावना और आदर्श चरितनायक ही ऐसा करनेकी क्षमता रख सकते हैं।

असत्यसे चिढ़

विश्वविद्यालयमें आँख, कान, नाकके एक विशेषज्ञ डाक्टरने महाराजको बतलाया था कि वे अविवाहित हैं। डाक्टर हृष्ट-पुष्ट, हँसमुख अपने कार्यमें पूर्णतः दक्ष थे। वे प्रतिदिन हास्पिटल जाते समय पहले एकबार महाराजको देख लिया करते थे।

एक दिन 'लीडर'में डाक्टरसाहबके सम्बन्धमें एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें उनकी पत्नीकी दुर्दशाका उल्लेख था। समाचार सुनकर महाराजको आश्चर्य हुआ। कैसे उसने कहा था—अविवाहित है। जिस दिन लीडरमें लेख प्रकाशित हुआ था, उसी दिनसे डाक्टरसाहबका आना भी बन्द हो गया।

कुछ दिन बाद जब महाराके कानमें दर्द उठा तो डाक्टरसाहबके बुलानेकी बातपर उन्होंने मना कर दिया था।

जब गोविन्दजीको मालूम हुआ कि बाबूजीके कानमें दर्द है और वे उन डाक्टरसाहबको पसन्द नहीं करते तो वह महाराजसे बहस करने लगे—उन्होंने कहा, उसने यह क्यों कहा था कि वह अविवाहित है? गोविन्दजीका कहना था यह उनकी व्यक्तिगत बात थी। उनके प्रोफेसनकी बात अलग है, उससे तो लाभ उठाना चाहिए—महाराजने कहा, तुम बहस मत करो मैं उसे नहीं चाहता।

छात्र-छात्राएँ बहुधा महाराजसे आटोग्राफ माँगते थे—छात्रोंके लिए :

'सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देश भक्तात्मत्यागेन सम्मानार्हं सदा भव॥

छात्राओंके लिए—

'जो पै पुत्री होय तो सीता सती समान।
अथवा सावित्री सदृश, रूप-शील गुनखान॥

परनिन्दा निन्दा विवर्जनम्

किसीकी आलोचना या बुराई महाराजको प्रिय नहीं थी। एक सज्जनने अपने एक साथीकी मूर्खताकी बात महाराजको सुनाया था, जो वर्षों पुरानी थी। महाराज चुपचाप सुनते रहे, फिर उन्होंने कहा—

"आपने यह कथा क्यों याद कर रखी है? इससे आपके साथीको कुछ लाभ

दिन ज्यों ही फाटकसे निकले एक बुढ़िया गोबरकी टोकरी सिरपर रखे उसी ओर जा रही थी, महाराजने ग्रामीण बोलीमें उससे बातचीत शुरू की :—

प्रश्न—तोहार घर कहाँ हव ?

उत्तर—सुन्दरपुर,

प्रश्न—घरमें का काम होत हव

उत्तर—दुइ है बैटवाह वें भइया, उनहिन कछु मेहनत मजूरी करि लेत हैं, हमइसे गोबर बीनिके गोहरी बनाइके बेंचके कुछ पइसा पाइ जाति हवे—पहिले हमार घर त इहियाँ रहल भइया बाकी त मालवीयजी कुछ लेइ लिहलन !

प्रश्न—खेत ओत नाहिन बाय ।

उत्तर—नाहीं भइया, खेती बारी, हमारे कछु नाहिन,

महाराज करुणार्द्र होकर आज्ञा दी, एक आई० वी० ई० प्लाज । तत्काल बुढ़ियाको ५) दिया गया ।

महाराज गरीबोंका कितना ध्यान रखते थे, उसमें कभी चूक नहीं होने देते थे । उन दिनों दाढ़ी की बनवाई दो पैसे मात्र था । महाराज दाढ़ी प्रति दूसरे दिन बनवाते थे । यानि महीनेमें १५ दिन नाईको १५) दिलाते थे, पर यह नियम स्थानीय था । बाहरका उनका रेट ५) प्रति दाढ़ी बनवानेमें दिया जाता था ।

सत्यनिष्ठा-क्षतिपूर्ति

ऐसेम्बलीका शारदीय अधिवेशन दिल्लीमें हो रहा था, उसमें सम्मिलित होनेके लिए महाराज रवाना हुए । प्रयागसे दिल्लीका रिटर्न टिकट सेकेण्ड क्लासका लिया गया ।

प्रयागमें मकर संक्रान्तिके दिन उन्हें पुनः आना था । नौ दिन बाद दिल्लीसे चलते समय टिकट देखा तो उसपर ८ दिनके अन्दर आनेका उल्लेख था । ट्रेनमें बैठनेपर महाराजका ध्यान आकर्षित किया गया । सेठ घनश्यामदास बिरला और बाबा राघवदास भी उसी ट्रेनसे यात्रा कर रहे थे । सबने टिकट देखा—दिनकी गणना की । नौ दिन हो चुके थे महाराज स्वयं गिनती की और कहा कि इसमें कुछ गलती है, तुम प्रयाग पहुँचकर स्टेशन मास्टरको बताना, लेखक इण्टर क्लासमें आ गया ।

मथुरा स्टेशनपर बाबा राघव दासने सूचित किया कि महाराजकी आज्ञा है कि दूसरा टिकट प्रयागका ले लिया जाय । मथुरासे प्रयागतकका दूसरा सेकेण्ड क्लासका रिटर्न टिकट ले लिया गया ।

प्रयाग पहुँचकर स्टेशन मास्टरको पहला टिकट दिखलाया उन्होंने ८ के स्थानपर १८ दिन बना दिया । यह विचारणीय है कि महाराजको कैसे मालूम कि उस टिकटमें कुछ गलती मालूम होती है और गलती थी भी—जिसे बिरलाजी या बाबा राघवदास नहीं जान सके थे ।

अब प्रयागसे दिल्ली लौटते समय मथुरावाले रिटर्न टिकटपर यात्रा की गयी । १८ दिनवाला टिकट रख लिया गया था कि शीघ्र ही नागरीप्रचारणी सभाके कोषोत्सव समारोहमें महाराजको सम्मिलित होना था और उससे बनारसकी यात्रा की गयी थी ।

बनारस यात्राके लिए दिल्ली स्टेशनपर महाराजने कहा कि मथुरातक एक सेकेण्ड क्लासका टिकट ले लो । समझमें नहीं आया कि किसके लिए ? टिकट तो ले लिया, कुछ लोगोंसे जो पहुँचाने आये

गर्भ मन्दिरमें सर्वसाधारणका प्रवेश वर्जित था, दूरसे ही दर्शन किया जाता था। मन्दिरके पुजारीने महाराजसे कहा—"आपके साथ जितने ब्राह्मण हों, भीतर पधारें", महाराजने आपत्ति की कि ऐसा क्यों ? क्या द्विजातिके लोग भीतर जाकर दर्शन नहीं कर सकते ? उत्तर—ऐसी व्यवस्था नहीं है महाराज।

प्रश्न— क्या नित्य सन्ध्योपासन करनेवाले आचारवान् क्षत्रिय भी प्रवेश पानेके अधिकारी नहीं हैं ? उत्तर—हाँ महाराज।

महाराजने कहा—सुन्दरम् तुम और वैंजनाथ भीतर प्रवेशकर सकते हैं। शिवधनी सिंह नहीं, मैं ऐसे मन्दिरमें नहीं जाना चाहता, जहाँ द्विज भी प्रवेश न पा सकें।

उस समय हरिजनोंके मन्दिर प्रवेशका आन्दोलन छिड़नेकी बात चल रही थी। महाराजसे प्रार्थना की गयी कि इस समय आपको मन्दिरके भीतर जाना ही उचित होगा। यदि आप भीतर जाये बिना लौट जायेंगे तो बाहर इसका प्रचार बढ़ जायगा। अतः भीतर जाना ही ठीक होगा। शाम की होनेवाली सभामें अपना मन्तव्य उद्वेषित कर दीजियेगा। महाराजने विवश होकर प्रार्थना की और शामकी महती सभामें सब मन्दिरोंके लिए ऐसी व्यवस्था अपनानेका सुझाव दिया कि गर्भ मन्दिरमें केवल पुजारी ही जाया करें। बाहरसे ही सर्वसाधारण दर्शन प्राप्त करें। वही व्यवस्था सब मन्दिरोंमें व्यवहृत है।

इस यात्रामें हमलोगोंने कन्याकुमारीका भी दर्शन किया था।

मृत्युके लिए भाव

महाराज उन दिनों सेवा उपवनमें निवास करते थे। उन्हें ज्वर हो गया था। ज्वर १०५ डिग्रीतक पहुँच गया था। उस स्थितिमें यह विचार चल रहा था कि रातको उनके पास किसे सुलाया जाय, जो रातमें उनकी आवश्यकताका निवारण कर सके। महाराजने सुनकर मनाकर दिया कि किसी की आवश्यकता नहीं है।

दरवाजेके बाहर नौकरको सुला दिया गया था कि महाराज जब लघुशङ्काके लिए बाहर निकलेंगे तो दरवाजेपर नौकरको जगाकर ही बाहर निकल सकेंगे। वे लघुशङ्काके लिए उठे—दरवाजे-पर सोये हुए नौकरको देखकर उसे न जगाकर दूसरा दरवाजा खोलकर आधी कोठीकी परिक्रमाकर वे लघुशङ्का-गृह गये और वापस आकर घड़ेसे अपनी कुहनी लगाकर जलसे हाथ धो रहे थे। गोविन्दजी-ने देख लिया था। पूछा—बाबूजी आप यह क्या कर रहे हैं ? नौकरको जगा लेना चाहता था। उन्होंने कहा—

> "नौकर दिनभरकी मेहनतके बाद आरामसे सोया था, उसे कैसे जगाता ? क्या किसी भी मालिकका भाव अपने नौकरके प्रति ऐसा देखा या सुना जा सकता है ?
>
> सज्जनस्य हृदयं नवनीतस्य यद्वदन्ति कषयस्तदलीकं
> अन्य देह विलसत्परितापात् सज्जनो द्रवतिनो नवनीतम् ॥

विनोदप्रियता

प्रेसीडेण्ट बी० जे० पटेल और महाराजका दौरा साथ-साथ करनेका निश्चय हुआ था। लखनऊ पहुँचनेपर निश्चय हुआ कि पटेलसाहबका प्रोग्राम कानपुरके लिए नोटिस बँट चुकी है। बहुत तर्क-

होगा नहीं, इसे कहने और सुननेवालेको भी लाभ नहीं मिलेगा। ऐसी कथाएँ याद रखिये और सुनाइये, जिससे सुननेवालोंके हृदयमें धर्म-बल बढ़े, कर्त्तव्य पालनकी स्फूर्ति उत्पन्न हो और जो किसी मित्रके गौरव को बढ़ावे।"

आश्रितोंका ध्यान

महाराज दक्षिण भारतकी यात्रामें ट्रावनकोर राज्यके पहाड़ी प्रदेशमें रातको ९ बजे पहुँचे। साथका रसद समाप्त हो गया था। रास्तेकी एक दूकानपर चावल, अमेरिकन आटा और रवा ले लिया गया था। श्री के० वी० रङ्गास्वामी ऐयङ्गारके मकानपर पहुँचकर महाराजने कहा—

'यह एक बड़े प्रतिष्ठित, सात्विक और आचारवानका आवास है, सुन्दरम् तो यहाँ भोजन करेंगे ही, तुम्हारे और मोड़ी (नौकर) के लिए भी उपयुक्त होगा। मेरा और वैजनाथ (रसोइये) के लिए दूधसे काम चल जायगा।'

मैंने कहा, मेरा भी दूधसे काम चल जायगा। तब महाराजने वैजनाथको आज्ञा दी कि दीवाल-के ऊपर धुलवाकर चौका साफ कराकर चावल-दाल चढ़ा दो। जब आधा हो गया मेरा दूध लाओ। कहा गया कि १० मिनटमें चावल तैयार हो जाता है, थोड़ा ले लिजिये, उन्होंने कहा—'भोजनकी इच्छा पहलेसे नहीं थी—देखा कि तुम लोग आलसमें उपवास कर बैठोगे, इसलिए अपने भोजन करनेकी बात चला दी सो अब तो तुम लोग भोजन कर ही लोगे, मेरा दूध मँगाओ।'

दूसरे दिन महाराजके लिए अमेरिकन आटाका प्रयोग उचित न समझकर रवाको होरिसापर चन्दनसे महीनकर महाराजके लिए फुल्का बनवा दिया था। भोजन करते समय कहने लगे ऐसा सुस्वादु फुल्का जीवनमें कभी नहीं खाया था। कहाँसे आटा लिया था ? आटा बनानेका वृत्तान्त सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए थे।

महाराजने आम खिलाकर स्वयं पानी पिलाया था

रामेश्वर स्टेशनसे कुछ मिल दूर समुद्र तटपर धनुष्कोटि नाम तीर्थ स्थान है। महाराजने वहाँ स्नानके लिए खड़ाऊ पहने स्फूर्ति और साहससे समुद्री रेतमें पैदल यात्रा की थी। हम सब साथियोंसे चला नहीं जाता था, उनके बहुत पीछे रह जाते थे। ऊपर प्रखर धूप थी। महाराज हमलोगोंसे काफी दूर रहते थे वापसीमें स्टेशन पहुँचते-पहुँचते हमलोग चित्त पड़ गये।

स्टेशनपर मिलनेकी प्रतीक्षामें बैठे एक अंग्रेज सज्जनसे महाराज बातें करने लगे। किन्तु उनकी दृष्टि मेरी ओर थी, उन्होंने इशारासे मुझे बुलाया और कहा, तुम्हें प्यास लगी है। पहले आम खालो तब मैं पानी पिला देता हूँ। पानी-आम सब उनके डिब्बेमें था। अंग्रेज महाशयसे उन्होंने कहा—"जरा ठहरिये, धूप और रेतमें इस युवकको पैदल चलना पड़ा है, जिससे थक गया है और प्यासा है इन्हें पानी पिला दूँ तब आपसे बातें करूँ।"

एक आम खानेके बाद दूसरा आम भी दिया। कहा इसे भी खालो तब पानी पिलाऊँगा और वैसा ही उन्होंने किया, बादमें मैंने साथियोंको पानी पिलाया और महाराजको किसी चीजकी आवश्यकता नहीं हुई।

रामेश्वरम् एकादशीके दिन पहुँचे थे। स्नानके बाद भगवानके दर्शनार्थ पहुँचे, उनके साथ श्री सुन्दरम्—याचक और मैं था। स्थानीय व्यक्तियों और महाराजके दर्शनार्थियोंकी भारी भीड़ थी।

किया कि यह बात सत्य है कि आज मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊँगा ? मैंने कहा—बात तो कुछ ऐसी ही लगती है, निश्चयात्मक कुछ नहीं कह सकता। उन्होंने मित्रोंसे मिलनेके लिए मोटरकी माँग की। दोनों मोटरें मेरे नामसे थीं। एक मोटरमें पेट्रोल भराकर फूल-मालासे सजाकर उनके हवाले कर दिया।

१० बजे दिनसे ५ बजे शामतक उन्होंने युनिवर्सिटीका दौरा किया। मित्रोंसे मुलाकात, चाय, नाश्ता करते—सबको यह सूचित करते हुए कि आज मैं जेल जा रहा हूँ। ५ बजे उन्होंने पूछा—पुलिस मुझे कब लेने आवेगी। मैंने बतलाया आप साधारण व्यक्ति तो हैं नहीं कि पुलिस आपको दिनमें गिरफ्तार करनेका साहस कर सकेगी। अशान्तिका भय हो सकता है। पुलिसको यदि आना होगा तो रातमें ही आ सकती है। वह फिर एक चक्कर लगाने चले गये। घण्टे भर बाद लौटकर महाराजसे विदा लेने पहुँचे—कहा—"बाबूजी, आई ऐम गोइङ्ग टु जेल टु डे" महाराजने आशीर्वाद दिया : "गाड ब्लेस यू लूक हीयर सुन्दरम्। यू मस्ट रीड भगवद्गीता ह्वे देयर" महाराजका आशीर्वाद चल ही रहा था कि वहाँ पण्डित गोविन्द मालवीय पहुँच गये। उनसे भी सुन्दरम् साहबने कहा—गोविन्द हम जेल जा रहे हैं, पुलिस गिरफ्तार करने आवेगी। उन्होंने कहा, तुम मूर्ख हो, गधा हो, तुमको इतनी समझ नहीं कि पुलिस तुम्हें सूचना देकर गिरफ्तार करने आयेगी।

इन सब लोगोंके साथ महाराज भी अट्टहासकर उठे थे और इस मजाकमें पूर्णतः सम्मिलित थे किन्तु गोविन्दजीने बीचमें ही भङ्गकर दिया—उन्हें सुनियोजित योजनाकी जानकारी नहीं थी। सुन्दरम् साहब मुझसे बहुत नाराज हो गये थे।

विश्वविद्यालयकी प्रबन्धकारिणीमें महाराजकी अध्यक्षतामें विचार और बहस हो रही थी, एक विभागने एक भङ्गिन कर्मचारीके वेतनका विचारके वेतनके लिए ९) मासिककी संस्तुति की थी। एक रिटायर्ड जज महोदय भी सदस्य थे, उन्होंने आपत्ति की थी कि ९) मासिक बहुत है। उसे तीन रुपये मासिक दिया जाना चाहिए। उसे और भी ऊपरसे आमदनी हो सकती है। सुनकर महाराज मुस्कुराने लगे और सदस्यसे पूछने लगे कि सदस्य महोदयको अन्य तरीकेकी आमदनीसे क्या तात्पर्य है ? इसपर सभी सदस्य हँसने लगे। भङ्गिनका ९) मासिक वेतन स्वीकृत हो गया था।

अधिकारियोंकी श्रद्धा

ब्रिटिश शासनमें सरकारी अधिकारी अंग्रेज या हिन्दुस्तानी सभी सर्वत्र—सफेद पगड़ी देखकर महाराजसे नत मस्तक हो जाते थे। उनका अत्यधिक सम्मान करते थे। इस प्रकारके सम्मानका भाव अदालतमें भी देखनेमें आया था। काशी हिन्दूविश्वविद्यालय कार्यालयके एकाउण्टेण्ट आदिके दुरभिसन्धिसे इञ्जीनियरिङ्ग कालेजमें गबन हो गया था, जिसमें तत्कालीन प्रिन्सिपल चार्ल्स ए० किङ्गपर कलङ्क लगनेकी सम्भावना थी। महाराज स्वयं इस मामलेमें स्थानीय जिला-जजके न्यायालयमें अपनी गवाही देने उपस्थित हुए थे। महाराजकी सुविधाका ध्यान रखते हुए—लञ्चके बादका समय निर्धारित किया गया था।

महाराजके लिए मञ्चपर जजके दाहिनी ओर बगलमें कुर्सी रखी गयी थी। जैसे ही महाराज न्यायालय कक्षमें प्रवेश करनेवाले थे, जजसाहब अपनी कुर्सी छोड़कर अपने चेम्बरके दरवाजेपर खड़े

वितर्कके बाद महाराजने पटेलसाहबसे कहा आपका कानपुर जाना ही उचित है, ऐसा न होनेपर दुनिया कहने लगेगी यह तो मालवीयजीका प्रोग्राम हो गया—पटेलसाहबको कानपुर अकेले जाना पड़ा।

राजा ज्वालाप्रसादजी प्रो-वाइस-चान्सलर थे। हँसमुख और विनोदी थे। सबको हँसते-हँसाते रहते थे। एक दिन विश्वविद्यालयके सम्बन्धमें सरकारको भेजे जानेवाले पत्रका महाराज संशोधन कर रहे थे। राजासाहब चुप बैठे थे। बीचमें धीरेसे मजाक करके खिल-खिला पड़े। लेखकने भी अट्टहास किया। महाराजने तुरन्त रोका :

"राजा ज्वालाप्रसाद विश्वविद्यालयके प्रो-वाइस-चान्सलरको यह नहीं भूलना चाहिए कि वह इस समय आफिसियल कार्यसे वाइसचान्सलरके समक्ष उपस्थित हैं।" तत्क्षण राजा-साहबने क्षमा माँग ली थी। कुछ देर बाद कह उठे—लो भाई पण्डितजी हमारी बेअदबीसे नाराज हो गये, इसपर महाराज भी मुसकुरा दिये।

ज्योतिषाचार्य पण्डित रामव्यास पाण्डेय महाराजसे मिलने आये थे। मुझे जोरोंकी आवाज लगायी—राजासाहब! राजा ज्वालाप्रसाद महाराजसे अन्दर कमरेमें बातेंकर रहे थे, मैं भी वहीं था। आवाज सुनते ही राजासाहब कुर्सी छोड़ चुके थे। महाराजने कहा—बैठो तुम्हें नहीं बुलाया है किन्तु वे बाहर चले आये थे। ज्योतिषीजी देखकर स्तब्ध हो गये। मैंने तो अपने राजासाहबको आवाज दी थी। आपसे मैं इतनी धृष्टताकर सकता हूँ ?

राजासाहब पुनः भीतर गये—महाराजने कहा "तुम समझते हो तुम्हीं राजासाहब हो, इन्हें भी लोग राजासाहब कहते हैं। तुमने सरकारकी कृपासे पदकी प्राप्ति की है और यहाँके विद्वान् प्रेमसे पुकारते हैं। तुम्हें यह तो सोचना चाहिए था कि तुम्हें ऐसी अदबीसे कोई पुकार नहीं सकता था।"

बम्बईमें पण्डित गोविन्द मालवीय, श्री सुन्दरम् और मैं आपसमें हँसीकर रहे थे। सुन्दरम् साहबने मेरी मूछोंकी भर्त्सना की थी। प्रायः सभी मूँछवालोंका वह मजाक किया करते थे। महाराज दूसरे सटे हुए कमरेमें हमलोगोंका मजाक सुन रहे थे। उनसे नहीं रहा गया। अपने कमरेमें हमलोगोंको बुलाया और पूछा—अभी तुमलोगोंमें क्या बहस हो रही थी ? मैंने कहा बाबूजी ये सुन्दरम्जी आज मेरी मूछोंपर टूट पड़े हैं। महाराजने कहा : "सुन्दरम्! जितने मूँछवाले हैं, उन्हें मैं अपना पुत्र समझता हूँ और बेमूँछवालोंको अपनी पुत्रियाँ।" हमने ताली पीट दी।

श्री सुन्दरम्की वाचालता और उत्तेजनात्मक भाषणपर पञ्जाब प्रान्तीय महावीर दलके दलपति लाला शिवरामजी एक मजाककी योजना बनायी थी, उसमें मेरे सहयोगका भी आग्रह किया था। अनिच्छापर भी मुझे विवश होकर उनका साथ देना पड़ा था किन्तु महाराजको इस बातसे अवगत कराकर साथ ही यह भी निवेदन किया था कि वे श्री सुन्दरम्-को सावधान करनेकी कृपा न करें।

योजना यह थी कि आज पुलिसने श्री सुन्दरम्को गिरफ्तार करनेकी सूचना दी है, यह सूचना विश्वविद्यालय परिसरमें प्रचारित हो गया। श्री सुन्दरम्ने मुझसे दरियाफ्त

बनाना था। काशीके एक सम्भ्रान्त व्यक्तिने महाराजके नामसे नवाबसाहबके नाम तार भेज दिया था कि मेरी संस्तुति है आप अमुकको अपने मन्त्रिमण्डलमें ले लें। नवाबसाहबने महाराजको लिखा कि अत्यन्त खेद है कि मन्त्रिमण्डल बन जानेपर आपकी सूचना मिली, जिससे वह नहीं हो सका, कृपाकर क्षमा कीजियेगा।

महाराजको रहस्य मालूम हो गया था, उन्होंने नवाबसाहबको लिखा था कि मैं ऐसी संस्तुति किसीके लिए भी नहीं कर सकता कि आप अमुकको मन्त्रिमण्डलमें ले लें।

डाक्टर माधव श्री हरि अणे केन्द्रीय सरकारके मन्त्रिमण्डलमें थे। तब विश्वविद्यालयके एक छात्रने महाराजके नामसे डा० अणेको पत्र लिखा था कि उसे अच्छीसे अच्छी नौकरी दिला दें। अणे-साहबने उसे आदरसे रख लिया था। उन्हें पत्रके सम्बोधनने, पत्रकी असलियतपर सन्देह उत्पन्न कर दिया था।

अणेसाहबने अपने पत्रके साथ महाराजके नामसे दिया गया पत्र भी भेज दिया था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि 'आप मुझे हमेशा माई डीयर अणे' लिखते थे, यह 'मिस्टर' सम्बोधनमें कैसे हो गया ? उन्होंने उत्तर दिया था कि वह मेरा पत्र नहीं था किन्तु उसको कोई दण्ड न दिलाना।

स्पष्टवादिता

सन् १९१८ के अप्रैल मासमें २७, २८ और २९ तारीखको वायसरायने गत महायुद्धके लिए जन-धन तथा अन्य सामग्री एकत्र करनेके लिए भारतीय नेताओंकी एक सभा बुलायी थी। उसमें 'सम्राट्के प्रति भारतकी राजभक्ति' वाले प्रस्तावके समर्थनमें गाँधीजीका भाषण हुआ था।

उसके बाद महाराजने वायसरायको सम्बोधितकर कहा—'कि भारतके आधुनिक इतिहाससे एक शिक्षा लीजिये। औरङ्गजेबके जमानेमें सिक्ख गुरुओंसे उनकी सत्ता और प्रभुत्वका मुकाबला किया था। गुरु गोविन्द सिंहने छोटे-छोटे लोगोंको, जो आगे बढ़े, अपनाया और गुरु-शिष्यके बीचमें जो अन्तर है, उसे एकदम मिटाकर उन्हें दीक्षित किया। इस तरह गुरु गोविन्द सिंहने उन लोगोंके हृदयपर अपना अधिकार जमा लिया था।

अब मैं भी यही चाहता हूँ कि आप अपनी शक्तिभर प्रयत्न करके भारतीय सिपाहियोंके लिए ऐसी व्यवथाकर दीजिये, जिससे युद्धस्थलमें अन्य देशोंके जो सैनिक उनके कन्धेसे कन्धा मिलाकर युद्ध करते हैं, उनके बराबर, वे अपनेको समझ सकें। मैं चाहता हूँ कि इस अवसरपर गोविन्द सिंहके उत्साह एवं साहससे काम लिया जाय।

महाराज ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनमें इतना साहस था कि जिस बातको वे ठीक समझते थे, उसमें चाहे कोई उनका साथ दे न दे, अकेले ही मैदानमें खम ठोककर डटे रहते थे। मालवीयजी महाराज कभी तो एक विनम्र सेवकके रूपमें रहकर, कभी नेताके रूपमें आगे आकर, कभी पूरे कर्ता-धर्ता बनकर और कभी कुछ थोड़ा विरोध प्रदर्शित करनेवालेके रूपमें प्रकट होकर, कभी असहयोग और सत्याग्रह आन्दोलनके विरोधी होकर और कभी घोर सत्याग्रही बननेके कारण सरकारी जेलोंमें जाकर उन्होंने कांग्रेसमें विविध रूपसे सेवा की थी।

सन् १९३० में जब सभी कांग्रेसी सदस्योंने एसेम्बलीकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया था, उस समय महाराज वहीं डटे रहे। उसके चार माह बाद ही ऐसा समय आया। महाराज उस समय भी

हो गये। महाराज जब मञ्चपर पहुँचे, तब जजसाहब लौटे—दोनों सज्जन एक साथ ही अपनी-अपनी कुर्सी सँभाले।

जजसाहबके मनमें यह बात आयी होगी कि सर्वोच्च राष्ट्रनेताको गवाहके रूपमें यदि कुर्सीसे उठकर उनका स्वागत करूँगा तो वह ताजका अपमान समझा जायगा और महान् विभूतियोंके समक्ष भी यदि कुर्सीपर बना रहूँगा तो अभद्रता होगी। निस्सन्देह उन्हें यही मार्ग अपनाना पड़ा था।

महाराज जब नैनी केन्द्रीय कारागारमें बन्दी थे, उनकी सुविधाके लिए सम्भवतः ऊपरी आदेश था कि उनका सहायक किसी भी दिन किसी समय उनसे कारागारमें मिल सकता था। यद्यपि परिवार तथा अन्य लोगोंके लिए रविवारका दिन निर्धारित था।

विरोधी भी भक्त

इण्डस्ट्रियलकी रिपोर्टके लिए सरकारकी ओरसे एक सदस्य श्री राजेन्द्र मुकर्जी थे। सभी सरकारी सदस्य थे। प्रजाके प्रतिनिधिके रूपमें केवल महाराज सदस्य थे। सर राजेन्द्र बहुत नीचेसे सरकारकी कृपासे आकाशपर पहुँचे थे, उन्हें सरकारकी आलोचना सह्य नहीं थी। महाराज सरकारकी बराबर कटु आलोचना करते थे। इससे वह महाराजसे बहुत नाराज रहा करते थे।

कमीशनकी बैठकें हुईं—रिपोर्ट-बार-बार लिखी फाड़ी गयी। अन्तमें फाइनल रिपोर्ट तैयार होनेपर महाराजसे हस्ताक्षरके लिए कहा गया, उन्होंने इन्कारकर दिया और अपनी रिपोर्ट देनेकी बात कहीं। इसपर सर राजेन्द्र बहुत बौखला गये और महाराजके लिए अपशब्दका भी प्रयोगकर दिया था।

कमीशनकी रिपोर्ट अन्य सदस्योंके हस्ताक्षरसे तैयार हुई। महाराजने भी अपनी अलगसे रिपोर्ट दी। दोनों रिपोर्टें साथ छपीं, महाराजकी रिपोर्ट सरकारमें अच्छी मानी गयी। वह कलकत्ता विश्व-विद्यालयसे एम० ए० कक्षाके कोर्समें रक्खी गयी।

इसके बाद एक दिन महाराज सर राजेन्द्रसे मिलने उनके घर गये। अपने घर महाराजको देखकर वह आश्चर्य चकित रह गये और कहने लगे, मैंने तो आपको बहुत बुरा-भला कहा—तब भी आप मेरे घर आये। देशके काममें हमसब एक हैं।

इसका परिणाम यह हुआ कि सर राजेन्द्रके हृदयमें महाराजके प्रति बहुत सम्मान बढ़ गया और तबसे वह महाराजके कार्योंमें बराबर सहायक होते रहे। महाराजके शुद्ध चरित्र और द्वेषरहित भावनाका चमत्कार था।

लार्ड चेम्सफोर्डकी आलोचना

जालियाँवाला बाग हत्याकाण्डके बाद महाराजने कौन्सिलमें वायसराय लार्ड चेम्सफोर्डकी बड़ी कटु आलोचना की थी। उसके बाद जब वायसराय बनारस आये थे तो महाराजने उन्हें विश्वविद्यालय देखनेको बुलाया। वे आये और देखकर प्रसन्नता व्यक्त की और कहा—

'आपने यह बड़े महत्वका काम किया है। लगे रहियेगा तो कभी यह संसारमें एक बड़ी शान का विश्वविद्यालय हो जायगा।'

महाराजके नामका उपयोग

कुछ दिनोंतक नवाबसाहब छत्तारी युक्तप्रान्तके सर्वेसर्वा थे। उनका अपना मन्त्रिमण्ड

क्रिया केवलमुत्तरम् ।

उधर सरकार समझती थी कि मालवीयजी उसके गुप्त विरोधी हैं । काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके सम्बन्धमें जब महाराजने वायसराय लार्ड हार्डिजसे भेंट की थी, तब पहला प्रश्न उन्होंने महाराजसे किया था :

'मेरे पास आपकी यह शिकायत है कि आप सरकारके गुप्त विरोधी हैं ।'

राउण्ड टेबल कान्फ्रेन्सके अवसरपर महाराज लन्दनमें बादशाह पञ्चम जार्जसे मिले थे, कुछ रुखाईमें उनका पहला प्रश्न था :—

प्रश्न—आप श्री गाँधीके अनुयायी हैं ?

उत्तर—मैं उनका सहयोगी हूँ ।

बादशाह—देखिये श्री मालवीय, हिन्दुतानमें हमारे एक भी आदमीपर वार होगा, तो उसके लिए मैं एक लाख आदमी यहाँसे भेजूँगा ।

उत्तर—आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? आप हमारा हक स्वीकार करें और भारतमें दरबारकर औपनिवेशिक स्वराज्यकी घोषणा करें, इससे भारतीय जनता आपको धन्य-धन्य कहेगी और ऐशियामें आपका कीर्तिमान होने लगेगा । आपके एक आदमीपर वार हो और उसका बदला लेनेके लिए यहाँसे एक लाख आदमी भेजे जायँ, यह प्रश्न हल करनेके लिए हम यहाँ नहीं आये हैं ।

इसके बाद बादशाहका रुख बदल गया था और सद्भावनापूर्ण बातें की थीं—

लार्ड हार्डिज भी सन्देह प्रकट किया था ।

रेमजे मेक्डानलने भी सन्देह किया और कहा :—

'हम गाँधीजीको उतना खतरनाक नहीं समझते, जितना आपको ।' स्पष्ट था कि महाराजके उज्ज्वल और उनकी स्पष्टवादितासे सबको झुकना पड़ता था । भारतीय वजन समुदायकी बागडोर महाराजके हाथोंमें थी, वे समझते थे कि उनको छेड़ना आगसे खेलनेके समान होगा—अतः महाराज स्वच्छन्द थे—निषेधाज्ञाकी परवाह नहीं थी ।

श्री राजगोपालाचारीकी पुत्रीसे महात्मा गाँधीके पुत्र देवदास गाँधीका विवाह निश्चित था, उसके लिए गाँधीजीने महाराजको आशीर्वादके लिए पत्र भेजा था । विवाहके एक दिन पूर्व मैंने उनका ध्यान आकर्षित किया तो उन्होंने तार लिख दिया कि 'मुझे खेद है कि ऐसे विवाहके लिए कुछ नहीं भेज सकूँगा ।' महाराजके द्वितीय पुत्र पण्डित राधाकान्तजीने मुझे रोक दिया कि तार मत भेजना । महाराजने पूछा—तुमने तार नहीं भेजा ? उन्हें बतलाया—बाबूजी, छोटे भैयाने मनाकर दिया था तब आपकी यह बात स्मरण हो आयी थी ।

'न ब्रूयात्सत्यमप्रियम' क्षमा कीजियेगा ।

वे हँसने लगे और कहा—तुमने याद दिलाया तब मैंने अपना विचार लिख दिया था—वैसे मैं भी नहीं चाहता था ।

गाँधीजीका स्नेह प्रपूरित सन् १९२७ का पत्र तथा :—

आवश्यकतानुसार एसेम्बलीको सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया। सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलनका विरोध किया था किन्तु १९३० में वे पूरे सत्याग्रही हो गये। सब मिलाकर उनका स्थान अनुपम और अद्वितीय था। हिन्दूकी हैसियतसे उन्नत विचारवाले थे और गाड़ीको आगे खीचते थे। कांग्रेसीकी स्थितिमें वे स्थिति पालक थे।

पञ्जाबमें जब मार्शल-ला लगा था, उस समय वहाँ भयङ्कर स्थिति हो गयी थी। ओडायरने जालियाँवाला बागमें भरी सभापर गोलियाँ चलवा दी थी, इससे वहाँका वातावरण बहुत विषाक्त हो गया था, कितने मरे, घायल हुए, लापता हो गये, जान बचानेके लिए कुओंमें कूद पड़े, कितने नेता जेलोंमें भर दिये गये। इस भयङ्कर काण्डपर शिमला कौंसिलमें महाराजका ऐतिहासिक हृदयविदारक भाषण लगातार ६ घण्टोंतक होता रहा, जिसे सुनकर कौंसिलके अंग्रेज सदस्य भी द्रवित-चकित रह गये थे।

वायसरायको फटकार—राष्ट्रका अपमान

जनवरी, १९३२ में महाराजने वायसरायको लम्बा कड़ा पत्र भेजा था कि 'श्रीमान्! आप जानते हैं कि गाँधीजी वर्तमान समयके भारतवर्षके सबसे महान् पुरुष हैं। भारतवर्षके असंख्य नर-नारियों द्वारा अपने जीवनकी पवित्रता और निःस्वार्थता तथा देश एवं मानवताके हितोंकी अलौकिक शक्तिके लिए पूजे जाते हैं और संसारके सभी भागोंमें उनका आदर होता है।'

'आपके गाँधीजीसे मिलनेको अस्वीकारकर देनेसे देशमें भयङ्कर परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है। यह दुःखका विषय है कि आपने इस बातका अनुभव नहीं किया कि देशकी सरकारके वर्तमान अध्यक्ष आपसे मिलनेकी शिष्टताकी आशा करनेका ऐसे महापुरुषका अधिकार था। उस शिष्टताका त्याग करके आज दिल्लीके समझौतेसे निर्धारित मार्गसे विमुख हुए हैं। इससे आपने भारतवर्षका राष्ट्रीय अपमान किया है।'

२८ फरवरी, १९३२ को महाराजने बड़े जोरदार शब्दोंमें सरकारको चेतावनी दी थी, उसका कुछ अंश इस प्रकार है :—

"सारा देश तीव्र असन्तोषकी ज्वालासे जल रहा है, जो लोग कांग्रेसी नहीं हैं और जिन्होंने अबतक राजनीतिमें कोई सम्बन्ध नहीं रखा है, वे भी आन्दोलनसे सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं और यथासम्भव उनकी सहायता कर रहे हैं, वाणिज्य-व्यवसाय नष्ट हो रहा है, सरकारकी प्रतिष्ठा कम हो गयी है, सरकारका आर्थिक दिवाला हो रहा है। जनताके देशकी स्वाधीनता प्राप्त करनेके निश्चयको कुचलनेवाली सरकारकी वर्तमान नीतिकी पर्याप्त परीक्षा हो चुकी है और वह सर्वथा व्यर्थ सिद्ध हुई है।

स्पष्टवादिता खतरनाक

यह समझनेकी बात है कि जो महामानव अपनी २५ वर्षकी अवस्थासे राष्ट्रीय कांग्रेस मञ्चसे भारत-हितके आग बरसाते रहे, जिसपर कांग्रेसके जन्मदाता श्री ह्यूमको कहना पड़ा था।

यद्यपि वह भाषण अन्तमें जोशिला हो गया था पर उसमें ऐसी सच्ची बातें हैं, जिनपर सावधानीसे विचार करना चाहिए। ऐसे महा मानवकी आलोचनाका उत्तर केवल उनके कार्य हैं।

देख सके। उनका रूप बहुत ही आकर्षक था। जो अब भी है किन्तु जनता इस रूपसे अधिक उस नव-युवकके उस भाषणसे मुग्ध थी—जैसा मैंने कम सुना होगा, जिसे कांग्रेस आन्दोलनका एक भावी नेता बना दिया। सन् १८८६ की आशा पूर्णतः सफल हुई है, मालवीय कांग्रेसके बड़े सैनिकोंमेंसे एक हैं।

श्री एम० विश्वेश्वरैय्या

आपके यूरोपीय विरोधी यह जानते हैं कि आप विशुद्ध वीर हैं और इसके लिए वे आपका आदर करते हैं। भारतवर्षके राजा-महाराजा आपको अपना मित्र समझते हैं। देशके सनातनधर्मियोंके पूज्य नेता होनेपर भी आप सुधारोंके विरोधी नहीं हैं, आप कट्टर नहीं हैं। दलित, अछूत जातियोंके प्रति आपके विचारोंमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है, जो उन अछूतोंके लिए हितकारी है और अब देशके प्रति अपने कर्त्तव्यसे प्रेरित होकर आपने प्रसन्नतापूर्वक समुद्रको पारकर यूरोपकी यात्रा की है।

ब्रिटिश पार्लमेण्ट सदस्य श्री अर्नाल्ड बर्ड :—

अपने पार्टीके नेता मदनमोहन मालवीय एक बहुत उच्चकोटिके आदमी हैं। वे हर प्रकारसे पण्डित मोतीलाल नेहरूके बराबर ही महत्त्व के पुरुष हैं। गाँधीजीको लेकर ये हिन्दू त्रिमूर्ति नेता हैं, जिनके साथ इङ्गलैण्डको बर्ताव करना है। वे अपने भाईके ही आयुके हैं और उन्हींका पेशा भी करते थे किन्तु जनतासे इनका सम्बन्ध बहुत बड़ा है।

"इम्पीरियल कौन्सिलमें बहुत दिन हुए सन् १९१० में उन्होंने प्रवेश किया। ये कट्टर उच्च-कोटिके ब्राह्मण हैं और काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके वाइस-चान्सलर हैं। हिन्दू जातिमें इनका अधिक आतङ्क है और उनके प्रति हिन्दू जातिकी प्रेम और श्रद्धा विशेष है।

एक भारतीय सदस्यने गत फरवरीमें सरकारकी ओरसे वाद-विवाद करते हुए कहा कि अगर कोई एक आदमी हिन्दू जातिका नेता हो सकता है तो वह पण्डित मदनमोहन मालवीय हैं।

विचार करते हुए आश्चर्य होता है कि एक आदमी २० करोड़ मनुष्योंका नेता हो, सत्य तो यह है कि ये सबके नेता हैं। क्योंकि हुगलीमें दिसम्बरके महीनेमें उन्होंने अपने हाथोंसे अछूतोद्धार किया। यह एक मजेकी बात है कि ये और पण्डित मोतीलाल नेहरू अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं। दोनों अंग्रेजी भाषामें दक्ष हैं और इसके पण्डित हैं किन्तु पण्डित मोतीलालके वाक्योंमें ध्वनि है, वे बड़े होते हैं पर मालवीयजीकी शब्दावली बड़ी सरल और वाक्य-रचना लचकीली होती है—इनके शब्द चुने हुए होते हैं। ये सरकारको कड़ीसे कड़ी बातें कहते हैं और अंग्रेजी राजनीनिज्ञोंको डाँटते हैं, ये शक्तिसे बढ़कर दयालु हैं, इनसे बढ़कर दूसरा कोई नेता स्वार्थ-रहित नहीं है।

सी० एफ० एण्ड्रूज : 'ग्रेटमैन आफ इण्डिया'में प्रकाशित

'.....अब थोड़े शब्दोंमें उनके चरित्रके सम्बन्धमें लिखना शेष रह गया है' जो लोग उनको निकटसे जानते हैं, उन्होंने उनके चरित्रको अत्यन्त मनोहर और मुग्धकारी पाया है। कोई भी व्यक्ति यहाँतक कि महात्मा गाँधी भी हिन्दू जनताके इतने प्रिय नहीं हैं। जनता और राष्ट्रकी सेवामें रत रहनेका इनका बहुत बड़ा लेखा है—जो वर्तमान कालके जीवित नेताओंमें उच्च स्थानपर प्रतिष्ठित करता है। उनका आत्मबल, उनके हृदयकी कोमलताके समान है और उनकी धर्म-भावना इतनी सरल है, जैसे एक बच्चेकी और बातोंके पीछे उनका वह आकर्षक व्यक्तित्व है, जिसने उन सर्वस्व व्यक्तियों-के हृदयपर विजय पायी है, जिन्होंने कभी उन्हें देखा भी नहीं है किन्तु उनके मातृभूमि तथा हिन्दू धर्मके लिए किये गये उनके महान् त्यागकी बातें सुनी हैं।

पूज्य भाई साहब,

आपके स्वास्थ्यके लिए कुछ चिन्ता रहती है। जब तार पढ़ा तब मैंने दिल्ली तार भेजा था। परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं आया, उसके बाद आपका ही तार अखबारोंमें पढ़कर कुछ शान्ति हुई।

हिमालयमें आराम करनेके बारेमें आपने शिमलेसे आयुर्वेदमेंसे कुछ श्लोक भी भेजे थे। भला आपकी शिक्षाका पालन आप न करेंगे तो दूसरा आपकी आज्ञाका पालन कैसे करेगा? मैंने तो कह दिया है, मुझे कुछ नया कहनेका नहीं, अब मुझे ईश्वर ले जाय तो अच्छा ही है, आपको तो शतायु होना होगा क्योंकि प्रतिज्ञा है परन्तु आप स्वशरीरका रक्षण नहीं करेंगे तो सौ वर्षतक आप कैसे रहेंगे और सेवा करेंगे? आपको आराम लेना चाहिए।'

आपका

ह० मोहनदास

अभिवादन

मैं तो मालवीयजी महाराजका पूजारी हूँ। पुजारी कैसे स्तुतिके वचन लिख सके? जो कुछ लिखेगा उसे अपूर्ण-सा प्रतीत होगा।

मालवीयजीके दर्शन मैंने सन् १८९० की सालमें चित्र द्वारा किया था, वह चित्र विलायतमें इण्डिया पत्र-जो मि० डिगबी निकालते थे, उसमें था। माना जाय कि वही छवि मैं आज भी देख रहा हूँ। जैसे उनके लिबासमें, ऐसे ही उनके विचारमें ऐक्य चला आया है और इस ऐक्यमें मैंने माधुर्य और भक्ति पाये हैं। आज मालवीयजीके साथ देश-भक्तिमें कौन मुकाबला कर सकता है। यौवन कालसे आरम्भ करके आजतक उनकी देशभक्तिका प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है। काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके मालवीयजी प्राण हैं, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय मालवीयजीका प्राण है। यह नरवीर हमारे लिए दीर्घायु हो।

विलायत जाते हुए — मोहनदास गाँधी

७-९-१९३१

'सन् १९११ में भारत वापस लौटनेके बादसे ही मुझे पण्डित मदनमोहन मालवीयको जाननेका सुअवसर मिला है। मुझे उनके साथ घनिष्ठ व्यवहार रखनेका सुयोग मिला है। ये हिन्दुओंके सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियोंमें हैं, जो रूढ़िवादी होते हुए भी उदारनीति रखते हैं। वे किसीसे द्वेष नहीं कर सकते। इनके पास हृदय है, जिसमें शत्रुओंको भी स्थान देनेवाला विशाल स्थल है। उन्होंने कभी अधिकार पानेका ध्येय नहीं किया---इनके पास जो कुछ अधिकार है, वह जन्मभूमिकी लगातार सेवा करनेका फल है, जिसका गर्व हममें बहुत कम कर सकते हैं। हम दोनों स्वभावतः भिन्न होते हुए भी एक दूसरेको भाईकी तरह प्यार करते हैं। हम लोगोंमें कभी मतभेद हुआ ही नहीं---मैं तो उनकी पूजा करता हूँ।'

बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी :

पण्डित मदनमोहन मालवीय सबसे पुराने और सबसे योग्य कांग्रेस कर्ताओंमेंसे एक हैं। १८८६ की वह घटना मुझे याद है---जब कालेजकी शिक्षा पाकर हमारे नये मित्रने पहली बार कलकत्ता कांग्रेसमें भाषण किया था। वे इतने छोटे थे कि उनको कुर्सीपर खड़ा किया गया था कि जनता उनको

सभाकी समाप्तिपर मालवीयजी महाराजने बिरलाजीसे कहा था--गाँधीजीके शरीरकी मुझे बड़ी चिन्ता है, वह कपड़े नहीं पहनते, कहीं इनको कुछ हो न जाये ? मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ हूँ कि रोग हो, तो मुझे मौत आवे । और दूसरी ओर देखिये :—

राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्समें अंग्रेजोंकी कूटनीतिसे हिन्दू-मुसलमानोंमें समझौता नहीं हो सका । मुसलमानोंकी तो थाह ही नहीं मिलती थी ।

कभी कोई माँग पेश कर बैठते, कभी कोई, गाँधीजी अपनी राष्ट्रीय माँगपर अड़े रहे । इसपर कुछ हिन्दुओंने गाँधीजीको कहा कि हम आपको लिखकर दे सकते हैं कि आप मुसलमानोंके साथ जैसा मुनासिब समझें, समझौता कर लें । इसपर गाँधीजीने कहा--जबतक मालवीयजी लिखकर नहीं देते—तबतक मैं समझौता नहीं कर सकता ।

इस प्रकार दोनों भिन्न हैं—दो हैं और दोनों एक हैं। ऐसा अद्भुत समन्वय अभिर्वचनीय है ।

महाराजका आशीर्वाद—(गाँधीजीके सत्याग्रहके लिए)

मई सन् १९३२ में महात्मा गाँधीने यरवदा जेलसे महाराजको एक पत्र भेजकर अपने आगामी यज्ञके लिए आशीर्वाद माँगा था । हरिजनोंके सम्बन्धमें उपवासके रूपमें इस यज्ञका अनुष्ठान था ।

> "बचपनमें माता-पिताके पास रहकर यही करनेकी चेष्टा करता रहा हूँ । माताने प्रायः आधी आयु उपवासोंमें व्यतीत किया था--क्या करूँ ? हरिजन-सेवा बुद्धि बलसे नहीं हो पाती ।"

महाराजने तार द्वारा उत्तर दिया जो इस प्रकार था--

> "आपका पत्र मिला । परमात्माकी आपपर कृपा हो । जैसा कि मैंने उपवास दिवसके अपने भाषणमें कहा था, मेरी यह निश्चित धारणा है कि भगवान्‌ने ही आपको इस निर्णयका आदेश दिया है । मैं उन्हींसे प्रार्थना करता हूँ कि वे ही आपको सफलतापूर्वक पूरा करनेकी शक्ति दें और मेरा विश्वास है कि वे आपको शक्ति देंगे । मेरा अनुरोध है कि आप अनन्यभाव हो जायँ । जो भगवान् हमारा रक्षक है और सहायक है, उसके अतिरिक्त अन्य सभी विचारोंको यथासम्भव अपने मनसे निकाल दीजिये । द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)के जपके साथ-साथ दिनके किसी भागमें प्रत्येक श्वास-प्रश्वासके साथ 'सोहम्'का भी अभ्यास कीजिये । प्रकाश और जीवनकी धाराको अन्तरमें बनाये रखनेमें यह अभ्यास सहायक होगा । कुछ महान् तपस्वियोंकी दृष्टि आपके तपकी ओर लगी है और असंख्य जन आपकी सफलताके लिए प्रार्थना कर रहे हैं । अपने पासके वातावरणको सब प्राणियोंमें स्थित वासुदेवकी चर्चाके अतिरिक्त अन्य बातोंसे अधिकसे अधिक मुक्त रखिये । भगवान्‌के इस आदेश और प्रतिज्ञाको ध्यानमें रखिये ।
>
> 'मच्चितः सर्व दुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।'
>
> स्वास्थ्य ठीक होते ही आपसे मिलूँगा ।"

महात्माजीको आशीर्वादसे अवश्य ही पर्याप्त बल प्राप्त हुआ होगा, उन्होंने तार द्वारा ही उत्तर दिया :—

श्री माण्टेगू , इण्डियन डायरीमें

'पण्डित मदनमोहन मालवीय कौंसिलके सबसे अधिक क्रियाशील राजनीतिज्ञ हैं—सुन्दर मुखवाले ब्राह्मण, धवल वसन, मधुर, शील गुण—सम्पन्न—उच्चाकांक्षी, यह एसेम्बलीके महान् नेता हैं।'

'जलपानके बाद मैंने मालवीयसे बातचीत की। बड़े अच्छे, बड़े मिलनसार हैं, ये मुझे बहुत अच्छे लगते हैं, बड़े ही सच्चे हैं।'

लार्ड चेम्सफोर्ड

जालियाँवाला बाग हत्याकाण्डके बाद महाराजने तत्कालीन वायसराय लार्ड चेम्सफोर्डकी बड़ी कटु आलोचना की थी। उसके बाद वे काशी आये थे। महाराजने उन्हें विश्वविद्यालय देखनेको बुलाया—वे आये और देखकर प्रसन्नता व्यक्त की और कहा :—

'आपने यह बड़े महत्त्वका काम किया है—लगे रहियेगा तो कभी यह संसारमें एक बड़ी शानका विश्वविद्यालय हो जायगा।'

बम्बई महाविवेशनके अवसरपर महात्मा गाँधीने अपना यह निश्चय मत प्रकट किया कि कुछ दिनोंके लिए काँग्रेससे अवकाश लेंगे। उनको इस निश्चयसे विरत रहनेके लिए कई वक्ताओंने अनुरोध किया और उनसे प्रार्थना की गयी कि काँग्रेस न छोड़ें।

गाँधीजीने कहा :—

'बताओ कि तुम उस मास्टरको रखकर क्या करोगे जिसका पढ़ाया हुआ छात्र बार-बार परीक्षामें फेल हो जाता है, सो ही मेरी बात है। मैं बतलाता-बतलाता थक गया—आप मेरा आदर करते हैं, बात भी मानते हैं पर अमल नहीं करते, तब मैं क्या करूँ ?'

अन्तमें महाराजने प्रायः डेढ़ घण्टे अपने ढङ्गसे खूब समझाया और कहा :—

'मैं जानता हूँ, तुम बड़े जिद्दी हो, हठी हो, एक बार किसी बातपर कुछ निश्चय कर डालते हो फिर किसीकी सुनते नहीं। देखो इस तरह काँग्रेससे दूर जाकर बैठोगे तो देशका या काँग्रेसका भला न होगा।'

गाँधीजी महाराजको बड़े भाई कहते थे—पर यहाँ बड़े भाईकी भी नहीं चली—वे महाराजकी बातें सुनकर चुपचाप मुसकराते रहे।

मालवीयजी महाराज और महात्मा गाँधीमें प्रगाढ़ मैत्री

कुछ विषयोंमें राजनीतिक और व्यावहारिक मतभेद होते हुए भी दोनों नर-पुंगवोंमें घनिष्ठ प्रेम था। दोनोंके लक्ष्य एक—मार्ग अलग तब भी प्रगाढ़ मैत्रीमें कमी नहीं आयी। एक-दूसरेकी चिन्ता रहती थी।

उधर लन्दनमें महाराजकी चिन्ता :

जब गाँधीजी ९ सितम्बर, १९३१ को इङ्गलैण्ड पहुँचे, एक सभामें उनका स्वागत किया गया था। हजारों सूट-बूटधारियोंके बीचमें विलायतकी भीषण सर्दीमें अर्धनग्न कमली ओढ़े भारतीय तपस्वीने भाषण दिया था। सबलोग मुग्ध हो गये थे।

एक महान् क्रान्तिकारी थे, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन उनके सामने हमेशाकी बात रहती थी—बनानेके सिलसिलेमें चीजें टूट भी जाती थीं और वे हटा भी दी जाती थीं, वे इससे घबराते नहीं थे। किसी चीजके टूटनेमें या झाड़ू देकर साफ कर देनेमें लेकिन उनका खास ध्यान हमेशा बनानेकी ओर रहा। खाली वही नहीं कि संस्थाएँ बनायी हों बहुत सारी बनायी उन्होंने—बल्कि उन्होंने भारतके लोगोंको बनाया। वे चाहते थे कि भारतके लोगोंमें हिम्मत पैदा हो, उनका सिर ऊँचा हो, उनमें अपने ऊपर भरोसा हो।''''और देखें कि कैसा सम्बन्ध रहा। पूज्य मालवीयजीका अपने जमानेमें और पुराने जमानेमें अब आप अन्दाजा लगा सकेंगे कि वे कितना महान् थे। इसमें कोई शक नहीं कि वे बहुत ही बड़े महापुरुष थे हमारे देशके, सारे देशको उनका गर्व है। पिसार सत्तर वर्षसे ऊपर हमारे राजनैतिक इतिहासमें, भारतके इतिहासमें, उनका नाम एक-एक चमकते हुए सितारेकी तरह रोशन है। शुरूसे ही काँग्रेसके और कितने भी मैदानोंमें उन्होंने रोशन हिस्सा लिया और उसको चमकाया, आगे बढ़ाया।

राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्स—मालवीयजी और गाँधीजी

२९ अगस्त १९३१ को 'राजपूताना जहाज'से मालवीयजी और गाँधीजी साथ ही राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्समें शरीक होनेके लिए विलायत गये थे। उसी जहाजमें कान्फ्रेन्सके और भी सदस्य थे, उनमें भोपालके नवाब, गाँधीजी और मालवीयजीसे विचार-विनिमय करके हिन्दू-मुसलिम समझौतेके लिए प्रयत्नशील थे।

९ सितम्बर, ३१ को नवाबसाहबने गाँधीजीको राजी करना चाहा पर गाँधीजीने काँग्रेसकी राष्ट्रीय माँगपर ही जोर दिया, तब १० सितम्बरको नवाबसाहबने मालवीयजीको अलग फोड़ना चाहा। महाराजने कहा —जीवन-मरणका प्रश्न है, मैं लन्दन इसलिए नहीं आया कि पौने सोलह आना लेकर जाऊँ ? गाँधीजीका साथ हर्गिज नहीं छोड़ूँगा। नवाबसाहबने कहा—फिर तो बात टूटेगी, पण्डितजीने कहा—चाहे जो हो कान्फ्रेन्समें अंग्रेजोंकी कूटनीतिसे हिन्दू-मुसलमानोंमें समझौता नहीं हो सका। मुसलमानोंकी तो थाह ही नहीं मिलती थी—कभी कोई माँग पेश कर बैठते, कभी कोई।

गाँधीजी अपनी माँगपर अड़े रहे। मालवीयजी महाराज हिन्दूमहासभाका प्रतिनिधित्व कर रहे थे। इसपर कुछ हिन्दुओं (सदस्यों) ने गाँधीजको कहा हमलोग आपको लिखकर दे सकते हैं कि आप मुसलमानोंके साथ जैसा मुनासिब समझें, समझौता कर लें, इसपर गाँधीजीने कहा :—

> 'जबतक मालवीयजी लिखकर नहीं देते, तबतक मैं समझौता नहीं कर सकता। यहाँ उनके दस्तखतके बिना मैं कुछ नहीं कर सकता।

अनुयायी नहीं—कार्य-विवरण

सर्वत्र सहायता : सकल लोक हितोद्यतमानसः

मालवीयजी महाराज किसीके अनुयायी नहीं थे। वे अपने समयके स्वतन्त्र सार्वभौम राष्ट्रके नेता थे। उनके कार्य असीमित थे। राष्ट्र निर्माणके लिए उन्होंने सर्वविधि मार्गका अवलम्बन किया था।

उनके कार्योंपर दृष्टि जाय तो इस बातकी स्पष्ट झलक मिलेगी कि इन महर्षिने जहाँ भी उपद्रव सङ्कट-ग्रस्त उत्पात देखी, स्वयं वे वर्तमान मिलेंगे—चाहे जालियाँवाला बाग काण्ड हो, बिहार-भूकम्प हो, मोपलोंका विद्रोह हो, कहीं हिन्दू समाजकी बुलायोंके उन्मूलनमें संलग्न हैं, उन्हें यथेष्ट

"आपके आशीर्वाद मेरे लिये सुखकारी हैं। मैं आपके आदेशका तत्त्वतः पालन कर रहा हूँ। बचपनसे ही राम नाम मेरा ताबीज रहा है, मैं अच्छा हूँ और शान्तिका अनुभव करता हूँ। अनुरोध करता हूँ कि आप आनेका कष्ट न करें।"

विश्वविद्यालयके रजत जयन्तीपर महात्मा गाँधीके उद्गार :

"आप जानते हैं कि मालवीयजीके साथ मेरा कितना गाढ़ा सम्बन्ध है। अगर उनका काम मुझसे हो सकता है तो मुझे उसका अभिमान रहता है और अगर मैं उसे कर सकूँ तो अपनेको कृतार्थ समझता हूँ।

भिक्षां देहि--

लोग मालवीयजी महाराजकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। आज भी आपने उनकी कुछ प्रशंसा सुनी है, वे सब तरहसे लायक हैं। मैं जानता हूँ कि हिन्दूविश्वविद्यालयका कितना बड़ा बिस्तार है। संसारमें मालवीयजीसे बढ़कर कोई भिक्षुक नहीं, जो काम उनके सामने आ जाता है, उसके लिए, अपने लिये नहीं उनकी भिक्षाकी झोलीका मुँह हमेशा खुला रहता है। वे हमेशा माँगा ही करते हैं और परमात्माकी भी उनपर बड़ी दया है कि जहाँ जाते हैं, उन्हें पैसे मिल ही जाते हैं। तिसपर भी उनकी भूख नहीं बुझती। उनका भिक्षा पात्र सदा खाली रहता है, उन्हें विश्वविद्यालयके लिए एक करोड़ इकट्ठा करनेकी प्रतिज्ञा की थी—एक करोड़की जगह डेढ़ करोड़, दस लाख रुपया इकट्ठा हो गया मगर उनका पेट नहीं भरा। अभी-अभी उन्होंने कानमें मुझसे कहा है कि आजके हमारे सभापति महाराजाधिराज दरभङ्गाने उनको एक खासी बड़ी रकम दानमें जोड़ दी है।

तीर्थस्वरूप मालवीयजी विद्यार्थियोंके प्रति--

मैं जानता हूँ मालवीयजी महाराज स्वयं किस तरह रहते हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि उनके जीवनका कोई पहलू मुझसे छिपा नहीं, उनकी सादगी, उनकी सरलता, उनकी पवित्रता और उनकी मुहब्बतसे मैं भली-भाँति परिचित हूँ। इनके इन गुणोंसे जितना कुछ ले सकें जरूर लें। विद्यार्थियोंके लिए तो उनके जीवनकी बहुतेरी बातें सीखने लायक हैं। मगर मुझे डर है कि उन्होंने जितना सीखना चाहिए, सीखा नहीं है। धूपमें रहकर भी सूरजका तेज न पा सके तो उसमें सूरज बेचारेका क्या दोष है ? वह तो अपनी तरफसे सबको गर्मी पहुँचाता रहता है पर कोई उसे अगर लेना ही नहीं चाहे और ठण्डमें रहकर ठिठुरता फिरे तो सूरज भी उसके लिए क्या करे ? मालवीयजी महाराजके इतने निकट रहकर अगर आप उनके जीवनसे सादगी, त्याग, देशभक्ति, उदारता और विश्वव्यापी प्रेम आदि सद्-गुणोंका अपने जीवनमें अनुकरण न कर सकें, तो कहिये आपसे बढ़कर अभागा कौन होगा ?

पण्डित जवाहरलाल नेहरू : जन्म शताब्दीपर उद्गार :

".....मेरा विचार है कि काँग्रेसके पुराने नेताओंको, जिनमें बहुत ही बड़ोंमें पूज्य मालवीयजी थे, दुनियाके किसी गजसे भी आप नापें, बहुत बड़ा पायेंगे। वे बहुत बड़े आदमी थे, जिन्होंने हिन्दुस्तान-को ऐसे मौकेसे निकाला, वे बहुत बड़े थे लियाकतमें, विचारोंमें अपने बलिदानकी शक्तिमें। अलावा इन सब बातोंके इस बातमें भी कि उन्होंने दूरन्देशीसे देखा, उन्होंने बनाया भी बिगाड़ा नहीं। बहुत सारे क्रान्तिकारी लोग बिगाड़नेकी तरफ ज्यादा ध्यान देते हैं, उनके सामने अटकाव आते हैं, जिनको हटाने, बिगाड़नेकी ओर उनका ध्यान हो ही जाता है कि बनानेकी ओर उनका ध्यान कम हो जाता है, तो इसकी तो मालवीयजी एक खास मिशाल थे—वे बढ़ते थे, बदलनेकी कोशिश करते थे, वे

अनेकों स्थानोंमें स्वराज्यके लिए जनताको जाग्रत किया था और उस यात्राके समाप्तिपर बम्बईमें पहुँचकर एक लम्बा पत्र लन्दन जाते समय वायसराय लार्ड इरविनको जहाजपर प्रस्तुत किया था, जिसमें यह उल्लेख था कि "अभी भारतका दौरा करनेपर यह देखनेमें आया कि सारा देश भयङ्कर ज्वालासे जल रहा है, आप अपनी सरकारको प्रभावित करें कि एक राउण्ड टेबुल बुलाकर भारतको स्वराज्यकी घोषणा करें।"

काँग्रेसके सक्रिय और सम्मानित सदस्य होते हुए भी जन-जागरणके लिए अपने ढङ्गसे स्वतन्त्र रूपसे काम लेते थे। जैसा मुन्शी ईश्वरशरणके पत्रसे विदित है,

काँग्रेस वर्किङ्ग कमेटी के, प्रिन्स आफ वेल्सके स्वागत बहिष्कारसम्बन्धी स्वीकृत प्रस्तावके विरुद्ध महाराजने प्रिन्सका स्वागत किया था और उन्हें डाक्टरेटकी डिग्री प्रदान की थी।

प्रथम चुनावमें काँग्रेस उम्मीदवारोंकी सहायताके लिए दस सहस्र मुद्रा (विक्टोरिया तथा पञ्चम जार्ज के) एक थैलेमें मेरे द्वारा रफी अहमदके पास लखनऊ भेजा गया था तथा अन्य लोगोंको भी भेजा जाता था। ये सब गुप्त कार्य मैं करता था।

कराचीमें अमृतवर्षा

पञ्जाब प्रान्तीय सनातन धर्म प्रतिनिधि सभाका उत्सव महाराजकी अध्यक्षतामें सन् १९२९ में हुआ था। यामा पैलेससे—जहाँ महाराज ठहराये गये थे, बङ्गाल आते समय प्रधान मन्त्री गोस्वामी गणेशदत्तजीने बतलाया कि "उत्सवमें प्रान्तके विभिन्न भागोंसे अधिक लोग महाराजका व्याख्यान सुननेके लिए आये हुए हैं। पञ्जाबी स्वभावतः महाराजके अनन्य भक्त हैं। यहाँकी जनता उनकी पूजा करती है। इस सम्मेलनमें उच्च सरकारी कर्मचारी, वकील, जज आदि भी सम्मिलित होंगे। महाराजका कोई ऐसा आशीर्वाद मिलता कि जनता उनके उपदेशको जीवन भर स्मरण रखती।"

लेखकने गोस्वामीजीको सङ्केतकर दिया कि जब महाराज मञ्चपर पधारें, उनके कानमें कह दीजियेगा कि किसी प्रकार व्याख्यानमें 'द्रौपदी चीरहरण' का प्रसङ्ग ला दें। ऐसा ही हुआ भी। महाराजके भाषण, उनकी अमृतमयी वाणीके विषयमें कहना ही क्या था, उन्होंने प्रसङ्ग लाकर उस करुण पुकारको ढङ्गसे प्रस्तुत किया "गोविन्द ! द्वारिका वासिन् ! कृष्ण ! गोपी-जन-प्रिय,

कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ, व्रजनाथार्तिनाशनः
कौरवार्णव भग्नां मां उद्धरस्य जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मान् विश्वभावन,
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्ये वसीदनीम्॥

पिन ड्राप साइलेन्स। प्रायः ५० हजारका जन-समूह स्तब्ध, भाव-विभोर हो उठा। रूमालोंसे अपने-अपने आँसू पोंछने लगे और स्वयं महाराजका गला भर गया, वाणी अवरुद्ध हो गयी, भावमग्न थे शीघ्र ही जलसे गला कुछ साफ हुआ। उन्होंने आर्द्र स्वरमें द्वारिका वासिन् व्रजनाथकी पुकार लगाकर श्रोताओंको प्रफुल्लित कर दिया था। अमृत वर्षासे महाराजकी जय-जयकारसे पण्डाल गूँज उठा। ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् भगवान् जन-समूहमें विराजमान हो दर्शन दे रहे हैं। सर्वत्र इसी

सहायता कर रहे हैं, कहीं बच्चों, युवकों, वृद्धों और स्त्रियोंके स्वास्थ्य, सदाचार, धन-वृद्धि और सुधारकी अगणित योजनाओंके निर्माणमें संलग्न हैं, कहीं युवकोंको बलिदान होनेकी प्रेरणा दे रहे हैं, कहीं भारतकी स्वतन्त्राके लिए सरकारसे लड़ते हैं, कहीं कांग्रेस मञ्चसे क्रान्तिकारियोंको ललकारते हैं, कहीं विश्वविद्यालयके लिए चन्दा माँग रहे हैं, कहीं ज्योतिषियोंकी पञ्चाङ्ग एकीकरण करानेमें प्रयत्नशील हैं, वैद्योंकी सभा, सनातनियोंकी सभाका सदारत करते हैं, कहीं मन्दिर निर्माणकी चिन्ता है, कहीं आर्यसमाज सभाका सभापतित्व करते हैं, कहीं हिन्दी साहित्य सम्मेलनका सभापतित्व। हिन्दी शब्दसागर कोषोत्सवकी अध्यक्षता, नागरी-लिपि आन्दोलनमें संलग्न हैं। त्रिवेणी स्नानके लिए सत्याग्रह, गङ्गा-नहर प्रवाहके लिए सत्याग्रह, कहीं नरेन्द्र मण्डल स्वेच्छया विराजमान हैं, कहीं चाण्डालोंको मन्त्र-दीक्षा प्रदान कर रहे हैं। कभी गाँव-गाँव उपदेशक भेजकर समाजको प्रबुद्ध करानेमें लगे हैं, कभी महावीर दलको सङ्गठित कराते हैं, कहीं सेवासमितिका निर्माण करते हैं। उधर राजा, महाराजा, सेठ, साहूकारों, वायसरायोंका भी ध्यान है, कभी असहयोग आन्दोलनमें जेलमें बन्दी हैं।

जैसी यह गाथा मिलती है कि जन-कल्याणके लिए महर्षि नारदजी अबाधरूपसे सर्वत्र पहुँचकर उपदेश करते थे, मालवीयजी महाराजके कार्यों और उपदेशों से अनायास ही समझमें आता है कि उनके समस्त कार्य और उनकी शक्ति सकल लोक हितके लिए ही थी।

कांग्रेस कमेटीके नरम और गरम दलोंमें सूरतमें झगड़ा–मारपीट भी हुई थी। सभा भङ्ग हो गयी। पुलिसने पण्डालपर कब्जाकर लिया था। सब नेता पण्डाल खाली कर चुके थे, केवल महाराज वहाँ आँसू बहाते निर्भीकतासे खड़े थे, बादमें उन्हें हटाया गया था।

नरम दलवालोंने अपना सङ्गठन अलग किया, यह निश्चय सर फिरोजशाह मेहताके बँगलेपर उपस्थित नेताओंने किया था। उपस्थित व्यक्तियोंको मेहताजीने चाय पिलायी थी।

महाराजसे भी चाय पीनेका अनुरोध किया गया, उन्होंने स्वीकार नहीं किया। कुछ लोगोंने बतलाया कि महाराज प्राचीन आचार-विचारके हैं, चाय नहीं पी सकते। इसपर मेहताजी बोले "फिर इन्होंने विलायतमें क्या किया था"—बतलाया गया कि इन्होंने कभी समुद्र यात्रा की ही नहीं। सबके नेता मेहताजीने कहा "मेरे कहनेसे भी विलायत नहीं जायेंगे ?" महाराजका उत्तर था—

"देशका कार्य होगा तो अवश्य जाऊँगा" और आगे चलकर वह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई, जब गोलमेज कान्फ्रेन्समें सम्मिलित होने लन्दन गये थे।

कांग्रेसमें महाराज मध्यस्थ रहते थे और उनकी बातें प्रायः स्वीकार्य भी हुआ करती थीं। दिल्लीमें कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी आहूत थी। वह ज्वरग्रस्त होनेके कारण उसमें भाग नहीं ले सकते थे। मन्त्री डाक्टर अन्सारीने महाराजको बताया था कि मीटिङ्ग आपकी अनुपस्थितिके कारण स्थगित कर दी गई है, मैं आपको दवा तैयारकर देता हूँ—दो घण्टेमें बुखार उतर जायगा, उसके बाद मीटिङ्गमें पधारें।

प्रयागमें मीटिङ्ग चल रही थी। एक विदेशी विद्वान् वहाँ पहुँचा था, यह सूचना मिलनेपर मीटिङ्ग छोड़कर, बाहर आकर आगन्तुकसे बात करने लगे थे और एक घण्टा लगा, मीटिङ्ग स्थगित थी। अन्तमें पण्डित नेहरूके निवेदनपर महाराज मीटिङ्गमें पहुँचे थे।

दक्षिण भारत यात्रामें महाराजने मद्रास, ट्रावनकोर, मदुरा, कुम्भकोणम, रामेश्वरम् आदि

समाप्त होनेपर महाराजने कहा—'अब लो मेरा टेम्परेचर।' डाक्टर साहबने देखा—ज्वर उतर चुका था, वह मुसकराते चले गये।

महाराजको ललित कलामें भी अभिरुचि थी, कितने ही चित्रकारोंने समय-समयपर राणाप्रताप, लोकमान्य तिलक, काशी नरेश तथा अन्यके तैल चित्र महाराजके सम्मुख प्रस्तुत किये थे। उनमें यत्र-तत्र त्रुटियोंका संशोधन कराकर विश्वविद्यालयके पुस्तकालयमें लगवा दिया था। चित्रकारोंको उचित पुरस्कारसे सम्मानित किया गया।

पिता-पुत्रमें तनाव

विश्वविद्यालयकी कार्य समितिकी बैठक ड्राइङ्ग रूममें चल रही थी। लगभग ६॥ बजे शामको किसीके रुदनकी आवाजपर महाराजको विदित हुआ कि गोविन्द मालवीयके चतुर्थ पुत्रने नौकरको मारा है। समितिकी बैठक तत्काल स्थगितकर इस मामलेमें हस्तक्षेप किया। पिता-पुत्रका वाक्युद्ध होता रहा! महाराजने यहाँतक कह दिया कि आज ही इस बँगलेको खाली कर दो, तुम्हें यहाँ रहनेका कोई अधिकार नहीं है।

गोविन्दजीने इस आदेशपर प्रायश्चित्तस्वरूप अनशन प्रारम्भकर दिया था। उधर महाराजको क्षमाकर देनेकी प्रार्थना चलती रही—तीसरे दिन गोविन्दजीके लिखित क्षमा-याचनापर महाराजका क्रोध शान्त हुआ था।

सहिष्णुता

क्षमया पृथिवी समः

बिरला पार्क कलकत्तामें आवश्यक पत्र लिखनेके लिए महाराजने अपने टाइपिस्ट लालताप्रसाद मिश्रको बुलाया—वह देरतक नहीं आये, दूसरी बार बुलानेपर उत्तर दिया—कह दो अभी नहीं आऊँगा। सेठ घनश्यामदास बिरला इस समय महाराजके पास बैठे बातेंकर रहे थे। उन्हें टाइपिस्टके व्यवहारपर आश्चर्य हुआ। महाराज निर्विकार थे। घण्टे भर बाद लालताप्रसादजी आये। महाराजने पूछा क्यों जी कुछ भाँग पी ली थी क्या? उत्तर —भाँग तो नहीं पी थी, रातमें नींद नहीं आयी थी, सो रहा था।

महाराजने कहा—अच्छा जाओ सो रहो—बिरलाजी चकित हो गये शायद वह अपने कर्मचारीकी ऐसी अवज्ञा बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। पण्डित लालताप्रसादजी बीकानेर महाराजाके राजभवनके पास ही—जहाँ महाराज अतिथि थे, भोजन बनाना शुरूकर दिया था। लकड़ी गीली थी, उससे चतुर्दिक धुआँ घिर गया था। महाराजने कहा—कहीं एक कोनेमें भोजन बना लिया होता, यहाँ इतना धुआँ फैल गया है। उत्तर मिला—आप तो महलमें रहते हैं, आपको अपने हाथसे भोजन बनानेके कष्टका अनुभव नहीं है। मैं तो आँच सह रहा हूँ आप थोड़ा धुआँ नहीं सह सकते? महाराज चुपचाप भीतर चले गये।

सन्त हरिहर बाबा

काशीमें रामनगर घाटके सामने गङ्गाकी गोदमें बजड़ापर सन्त हरिहर बाबा निवास करते थे। विश्वविद्यालयके छात्र प्रायः प्रतिदिन वहाँ जाया करते थे। एक दिन बाबाके शिष्यों और छात्रोंमें कुछ कहा-सुनी हो गयी। छात्र संख्यामें कम थे—बादमें अपने साथियोंकी सहायतासे बाबाके बजड़ेपर

प्रसङ्गकी गूँज थी। घर पहुँचनेपर महाराजने पूछा—"तुमने ही गोस्वामीको द्रौपदीका प्रसङ्ग लानेका सङ्केत किया होगा। अच्छा किया था--यह अद्भुत स्थल है। इस प्रसङ्गकी चर्चासे मैं अपनेको सँभाल नहीं पाता हूँ—प्रतिदिन इसके पाठसे बड़े-बड़े सङ्कट कटते हैं।"

महात्मा गाँधी जब कमला नेहरू अस्पतालका शिलान्यास करने प्रयाग आये थे, तब महाराजके परिवारसे मिलने उनके घर जार्ज टाउन गये थे। उन्होंने महाराजसे आग्रह किया कि आप थोड़ा अमृत पान कराइये। महाराजने 'गजेन्द्र मोक्ष' सुनाया था। महात्मा गाँधी तन्मयतासे कथामृतका स्वाद ले रहे थे, उनके नेत्र सजल हो गये थे, उन्होंने कहा—"भाईसाहब! आप तो भागवतस्वरूप हैं, आपका प्रसाद कभी-कभी मुझे भी प्राप्त हो जाता है।

काशी आनेपर भी उन्होंने महाराजसे कथा सुनी थी और अपना यह उद्गार व्यक्त किया था—

"आप तो नित्य गङ्गामें गोता लगाते रहते हैं,
आपका आशीर्वाद कभी-कभी मैं भी प्राप्तकर लेता हूँ।"

साहित्य-सङ्गीत-कला प्रेमी

महाराजको सङ्गीतका गहरा अध्ययन था। मुलतानमें एक सङ्गीतज्ञ महाराजको सङ्गीत सुनाने आये थे। उन्होंने महाराजसे आज्ञा माँगी कि जो आदेश हो, सुनाऊँ—महाराजने कहा जो आपको अच्छा अभ्यास हो, सुनाइये उनके पुनः आग्रह करनेपर महाराजने कहा—अच्छा, सोहनी सुनाइये।

सङ्गीतज्ञ महाशयके गानेपर बीचमें टोकते हुए महाराजने कहा—उसका स्वरूप यह नहीं है और स्वयं गाकर सोहनीके स्वरूपका प्रदर्शन किया था। काशीमें भी गायनाचार्य पण्डित शिवप्रसाद त्रिपाठी-को 'मालकोश' आदिमें—कहाँ कैसा लोच होना चाहिए इसका निर्देश किया था।

पेण्टिङ्गमें अभिरुचि

काशी हिन्दूविश्वविद्यालय पुस्तकालयमें महाराणा प्रताप, काशीनरेश, महाराजा गायकवाड़ आदिके कितने पेण्टिङ्ग बनवाकर उन्होंने लगवा दिया है।

कवितासे ज्वर-मुक्ति

महाराज अपने बँगलेमें बीमार थे। ज्वर तेज था। डाक्टरोंने सब प्रकारका प्रतिबन्ध लगा दिया था, जिससे उन्हें बोलनेका अवसर न मिल सके। यह सब महाराजके स्वभावके प्रतिकूल था।

डाक्टरसाहब, जो महाराजके पास बैठे रहते थे, किसीको महाराजके पास जाने देना पसन्द नहीं करते थे।

महाराजने कहा—जाखिहायत कर नसीहत दिल मेरा घबराया है।
मैं इसे समझूँहूँ दुश्मन जो मुझे समझाया है।

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी उन दिनों बँगलेमें रह रहे थे। महाराजने त्रिपाठीजीको बुलवाकर कहा कि उस कविताको सुनाइये जो ग्वालेकी लड़की मटकीमें दूध लेकर भाइयोंको देने जाती है, जिसे पीकर वे मुगलोंसे लड़ेंगे, इसे लयमें सुनाइये।

महाराजको १०२ डिग्री ज्वर था—कविता चल रही थी, डाक्टरसाहब भीतर-भीतर खिन्न थे। महाराजने कहा डाक्टर घबड़ाओ नहीं, मैं अपने रोगकी दवा जानता हूँ, वह मिल गयी है। कविता

मैं बाबासे मिलने गया। मालूम हुआ बाबा उस पार शिष्योंके साथ पेड़के नीचे बैठे हैं। मैं पार जानेके लिए नाव करने लगा तबतक बाबाका एक शिष्य अपने कटरसे पहुँचकर मेरे आनेकी सूचना बाबाको दे दी। मेरे पहुँचनेपर बाबाने गालियाँ बकना शुरू कर दी और इसे काटकर फेंक दो, मैंने कहा—बाबा पहले हमारी बात सुन लिजिये फिर कटवाकर मुझे फेंक दीजियेगा।

बाबा चुप हो गये मैंने कहा आप सिद्ध सन्त, तपस्वी, आपको आधुनिक आडम्बरकी क्या आवश्यकता है। उसमें नृत्य तो होना नहीं है। ये लोग आपको भ्रममें डालते रहते हैं, मेरी बातोंका असर बाबापर पड़ा और वही गाली अपने शिष्योंपर बरसाने लगे—मुझे कहा जो रे—हम बजड़ा-पर बइठवि, हर्षोल्लाससे मैं विदा हुआ।

इस पार आकर देखा। कई अध्यापक और छात्र मेरी रक्षाके निमित्त घाटपर उपस्थित हैं। उन्होंने बतलाया कि आपके चले आनेपर महाराज चिन्तामें थे कि लड़ाई न हो जाय। आप अकेले हैं, इसलिए एतिहावन उन्होंने हमें भेजा है।

बाबाको बजड़ेपर बैठेनेकी बात महाराजको सुना दी, वे प्रसन्न हुए।

कुम्भ मेलेमें सेवा समितिके स्वयंसेवकों और वैरागियोंमें झगड़ा हो गया। स्वयंसेवकोंने वैरागियोंको पीटा था। महाराज उस समय पण्डालमें प्रवचन कर रहे थे। खबर पाकर वे झगड़ा शान्त करने पहुँचे। एक वैरागी बिगड़कर कहा कि झगड़ेका मूल यही है और डण्डा चला दिया, जो रोक लिया गया—महाराज कुछ नहीं बोले।

झगड़ा शान्त होनेपर वैरागियोंके नेता साधु महाराजके पास आकर क्षमा याचना की।

सबसे मिलिये धाय

मालवीयजी महाराजकी भारतीय संस्कृति-परिचायिका, सुन्दर वेषभूषा, मोहनी और आकर्षक आकृति, चन्दन-चर्चित ललाट, मधुर स्वभाव, निरभिमानिता, सरलता, सहृदयता, निश्चितता, बुद्धि-मत्ता प्रत्युत्पन्नमतित्व आदिमें न केवल भारतीयोंके हृदयमें आदर और सम्मानका स्थान बना लिया था, प्रत्युत विदेशियोंके हृदयमें भी उच्च श्रद्धाका भाव पैदा कर दिया था।

सन् १९३२ में जर्मनीके एक संस्कृतके विशिष्ट विद्वान् भारतीय विश्वविद्यालयोंके गतिविधिका अध्ययन करने भारत आये थे और सब विश्वविद्यालयोंसे घूमकर काशी आये थे। तीन दिनोंतक हिन्दू-विश्वविद्यालयकी स्थितिका ज्ञान प्राप्त करनेके बाद महाराजसे भी मिलना चाहते थे। वे उन दिनों काँग्रेस वर्किङ्ग कमेटीकी मीटिङ्गमें सम्मलित होनेके लिए प्रयाग गये थे।

जर्मन विद्वान् तीसरे दिन मेरे घर आये और महाराजके दर्शनकी उत्कृष्ट इच्छा व्यक्त की। उन्होंने बतलाया कि भारत आनेका मेरा उद्देश्य पूरा हो गया किन्तु पण्डित मालवीयसे मिले बिना वह अधूरा रह जायेगा, उनसे मिलनेके बाद ही अपने देश वापस जाऊँगा। मैं जर्मन विद्वान् को प्रयाग ले गया। घरपर मालूम हुआ कि वे मिटिङ्गमें गये हैं। उन्हें बतलाया कि चलें वहाँ मिलनेका समय निर्धा-रित करके आपको सूचित कर दूँगा क्योंकि इस समय मिटिङ्ग चल रही है।

आनन्द भवन पहुँचकर उन्हें बरामदेमें बैठाकर मैं अन्दर जाकर महाराजसे पूछा कि कोई समय जर्मन विद्वान्से मिलनेका बता दिया जाय, वे बरामदेमें बैठे हैं। महाराज मीटिङ्गसे उठकर यह कहते हुए कि अभी आता हूँ। आगन्तुकसे बातें करने लगे, गाँधीजी तथा सब सदस्य महाराजकी प्रतीक्षा करने लगे।

चढ़कर उनके शिष्योंसे संघर्षकर बजड़ेको क्षतियस्त कर दिया—बाबा वहाँसे हटकर अस्सी घाटपर रहने लगे।

महाराज बाहर थे—काशी आनेपर उन्हें उक्त काण्डकी सूचना मिली। वे छात्रोंके इस आचरणपर क्षुब्ध-कुपित हो उठे थे। उन्होंने छात्रोंकी सभामें घोषणा की "तुम लोगोंने तपस्वीको तकलीफ दी, तुम्हारे आचरणसे मेरा मस्तक लज्जासे झुक जाता है, काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके छात्रोंसे मुझे ऐसी आशा नहीं थी—इच्छा होती है, गङ्गाकी धारामें डूब मरूँ।"

महाराजने एक दिन प्रातःकाल अस्सी घाटपर छात्रोंके उद्दण्ड आचरणके लिए बाबासे क्षमा माँगने गये। वहाँ स्नानार्थियों और दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ थी। बाबाके बजड़ापर महाराजके पैर पड़ते ही—बाबा बरस पड़े, उन्होंने नितान्त ग्रामीण—भद्दी-भद्दी सैकड़ों गालियाँ महाराजको धारा-वाहिक रूपसे देते जा रहे थे। बीच-बीचमें महाराज कहते जाते थे।

'क्षन्तव्यं ममापराधः प्रभो' और तन्मयतासे गालियाँ श्रवण कर रहे थे।

बजड़ापर लेखकके साथ पण्डित रामव्यास ज्योतिषी भी थे। गाली असह्य होनेपर लेखकने गर्जना की कि बस बाबा बहुत अधिक हो चुका, असह्य हो रहा है, अनर्थ हो जायगा, बन्द करें। यह सुनते ही महाराजने बिगड़कर सरोष कहा तुम यहाँसे चले जाओ—बजड़ेसे नीचे जाओ। मैंने कहा हर्गिज नहीं जाऊँगा, बड़े प्रेमसे एकादशी कथाका श्रवणकर रहे हो। लेखकके गर्जनाके बाद बाबा-की गाली बन्द हो गयी थी। अन्तमें उन्होंने कहा—जा सारे इतना बड़ा विसविदाले बनवले बाड़े एक ठो बजड़ा बनवा दे। जो ई अपराध छिने बा।

महाराजने जिस धीरता और सहिष्णुतासे असभ्य ग्रामीण गालियोंका श्रवण किया—सर्वसाधारण मनुष्यके बर्दाश्तके बाहर था। तटपर उपस्थित भीड़को यह उद्गार निकालना पड़ा कि वस्तुतः सन्त तो मालवीयजी महाराज हैं।

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः। बजड़ा बनवानेका वचन देकर वापसीमें महाराज कहने लगे—छात्रोंने कितना अनर्थ किया है तभी तो तपस्वीको इतना क्रुद्ध होना पड़ा।

उत्तर—सर्वात्माना छात्रोंका ही दोष नहीं है बाबूजी—घटना शिष्योंके कुव्यवहारसे घटी है।

सेठ जुगलकिशोर बिरलाकी ओरसे बाबाके लिए बजड़ा बनना शुरू हो गया, उसमें झिलमिली, शीशा आदि आधुनिक साज-सज्जासे सुसज्जित बजड़ाकी कामना बाबाके शिष्योंने की और लेखककी अनुपस्थितिमें महाराजको बतला दिया कि बाबा आपसे बहुत नाराज हैं—उन्होंने आपके बजड़ेपर बैठनेसे इनकारकर दिया है।

महाराजने कहा मुझे बाबाके पास ले चलो—बाबाने बजड़ापर बैठनेसे इनकारकर दिया है। यह सूचना उनका शिष्य दे गया है। उन दिनों गङ्गाजी ऊपरतक आ गयी थीं—कहा गया—आपको वहाँ जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है और न तो आप वहाँ पहुँच ही सकते हैं। मैं वहाँ जाकर समझ लेता हूँ कि वे चाहते क्या हैं? बजड़ामें झिलमिली, शीशा नहीं लगना चाहिए, ये सब मैं कर लूँगा। उन्होंने कहा—तुम उनसे झगड़ाकर लोगे तुम्हारा वहाँ जाना मुझे ठीक नहीं लगता—इसमें झगड़नेकी कोई बात नहीं है आप चिन्ता न करें जो होगा मैं सूचितकर दूँगा किन्तु अब आप वहाँ कथमपि नहीं जायँगे।

विभागपर तुरत कार्यवाहीके लिए आज्ञा देने जा रहे थे। महाराजने कहा आपकी व्यवस्थाके अनुसार चुङ्गीवालोंने अपना कर्तव्य पालन किया है, वे पारितोषिक पानेके अधिकारी हैं—दण्ड पानेके अधिकारी नहीं हैं। यदि आप समझते हैं कि इसमें कोई त्रुटि है, तो अपनी व्यवस्थामें संशोधन करा दें। व्यक्ति क्यों दण्डित किये जायँ ? इसपर महाराजासाहबका क्रोध शान्त हो गया।

आत्मबल : कर्तव्यनिष्ठा— आयुवृद्धि

अपने भयङ्कर कारबङ्कलसे पीड़ित होनेपर भी महाराजने जनताकी पुकारकी उपेक्षा न कर सन् १९३४ के नवम्बर मासमें बिहारका दौरा किया था। उन्होंने दरभङ्गामें मन्त्र-दीक्षा दिया और विद्वानोंसे शास्त्रार्थ भी किया था। सभाओंमें सर्वत्र महाराजको कुर्सीपर बैठाकर पहुँचाया जाता था। दरभङ्गामें प्रयागसे तार मिला कि भाई दूजके दिन यमुना स्नानसे वापस आते समय उनकी पत्नी तांगेसे दब गयी है, हालत चिन्ताजनक है।

तार मिलनेपर भी महाराज अविचल भावसे प्रोग्रामके अनुसार कार्यरत रहे। प्रायः सभी लोगोंने, महाराजाधिराजने भी महाराजसे अनुरोध किया कि अब आगेका प्रोग्राम रद्दकर दिया जाय, पर महाराज अडिग थे, वे महात्मा थे, उन्होंने कहा—वहाँ घरके सबलोग मौजूद हैं, वे सँभालेंगे। मैं पहुँचकर क्या करूँगा ? यह सब तो डाक्टरका काम है, वे उपचार करेंगे। यह मुझे विश्वास है कि उन्हें मेरे समक्ष ही विदा लेना है।

"विपति धैर्यं मथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधिविक्रमः।
यशसि चाभ्युरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृति सिद्धमिदंहि महात्मनाम्॥

महाराज निर्धारित प्रोग्राम पूरा करके ही प्रयाग लौटे थे।

प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति।

प्रयाग पहुँचनेपर महाराजको गङ्गोत्रीसे गोस्वामी गणेशदत्तजीका तार मिला कि स्वामी कृष्णाश्रमजी महाराज आपके स्वास्थ्यके विषयमें जानकारी चाहते हैं। दो दिन बाद भी पत्र मिला, जिसमें उनकी विस्तृत बातें लिखी थीं।

गोस्वामीजीको यह सन्देह था कि स्वामीजी महाराज एकाएक मालवीयजीके बारेमें क्यों चिन्तित हो गये हैं। स्वामीजीने उत्तर दिया था कि इस समय मालवीयजीके शरीरमें और परिवारमें भी कष्ट है उनकी प्राण-हानि नहीं है, वह स्वयं एक महात्मा हैं, अपनी आयुको पूराकर चुके हैं किन्तु अगले दस वर्षतक उनकी आयु बढ़ गयी है।

तार और पत्रका उत्तर दे दिया गया था।

संस्मरण

चारित्रिक शिक्षा

प्रयागके कुम्भ मेलामें महाराजके दर्शनार्थ नर-नारियोंकी भीड़से उनका कैम्प सदा भरा रहता था। उनके बगलमें उनकी पत्नी भी बैठी थीं। एक दिन जब भीड़ अत्यधिक हो गयी तब बाध्य होकर पुरुषों और स्त्रियोंके भी बाहें पकड़-पकड़कर हटाना पड़ा था। बीच-बीचमें महाराज टोकते जाते थे—ऐसे नहीं—मैं समझता था कि भीड़को बलपूर्वक हटानेसे वे मना कर रहे हैं।

बीच-बीचमें कई बार सन्देश आया, महाराज टालते जाते थे। महाराज कहते—अभी आया, पूरा एक घण्टा जर्मन महाशयसे बात-चीत की। अन्तमें पण्डित जवाहरलाल बरामदेमें आकर कहने लगे—बाबू मिटिङ्गका काम रुका हुआ है, अच्छा भैया चलो आ रहा हूँ।

आनन्द भवनसे चलते समय जर्मन महाशयने कहा :—

'मैंने इतना सुन्दर और मधुर मनुष्य संसारमें नहीं देखा। उन्होंने आवश्यक मिटिङ्गका कार्य छोड़कर बिना समय निर्धारित किये एक घण्टातक मुझसे बातें कीं और भीतर उनकी प्रतीक्षा की जाती थी, सचमुच भारत धन्य है, जिसे ऐसे महामानवका संरक्षण प्राप्त है।'

पशु-पक्षियोंके रक्षक

महाराज न केवल मनुष्योंके कृपालु थे। अपितु पशु-पक्षियोंके भी रक्षक थे। पण्डित शिवराम वैद्य उनके बाल सखा थे। उन्होंने महाराजके विषयमें लिखा है—

'एक दिन बड़ी तेजीसे उनके घर आये और कहने लगे कि एक कुत्तेके कानके पास एक बड़ा घाव है, उसकी दवा बताइये। हम दोनों डाक्टर अविनाशके पास गये। उन्होंने दवा बतला दी, दवा लेकर मालवीयजी कुत्तेके पास गये, मक्खियोंकी डरसे कुत्ता एक टट्टरकी आड़में बैठा था। मालवीय-जीने एक बाँसमें कपड़ा लपेटकर दूरसे कुत्तेके घावमें दवा लगाकर उसे रोग-मुक्त किये—कुत्ता गुर्राता हुआ भूंकता था। दवा लगानेपर कुत्तेको आराम मिला और वह आरामसे सो गया।'

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके चान्सलर बीकानेरके महाराजा गङ्गा सिंहजी बहादुरकी हीरक जयन्तीके बृहत्समारोहका आयोजन सन् १९३८ में था। एक मासका प्रोग्राम था। समस्त देशी नरेश, वायसरायके सूटिङ्गका भी प्रोग्राम था। यह देखकर महाराजको क्लेश हुआ। उन्होंने महाराजासाहब-को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उनके वंशके विविध नरेशोंके यशका स्मरण दिलाते हुए महाराजा-साहबसे अनुरोध किया था कि ऐसे पुनीत अवसरपर जब आप असहायोंको मुक्तहस्तसे दान दे रहे हैं, रोगियोंके लिए आतुरायलका निर्माण करा रहे हैं, बन्दियोंको कारागारसे मुक्त कर रहे हैं, निरीह पक्षियोंका शिकार असामयिक और अशोभन है। अतः मेरा निवेदन है कि आप इस प्रोग्रामको रद्द करनेकी घोषणा कर दें, जिसमें निरीह पक्षियाँ भी इस पुण्य पर्वपर आपका यशगान कर सकें। अन्तमें यह भी लिखा था कि मेरा यह पत्र वायसराय महोदयके समक्ष प्रस्तुत करनेकी कृपा कीजियेगा। आशा है, वह मेरे निवेदनको स्वीकार करेंगे।

चुङ्गी प्रथा

महाराज एक बार बिना सूचना दिये बीकानेर पहुँचे थे। स्टेशनसे बाहर होते ही राज्यके चुङ्गी विभागने उनके सामानकी जाँच-पड़ताल शुरू कर दी थी। उनके सभी सामान इतने साफ-सुथरे चमकते रहते थे, जैसे बिल्कुल नये हों—जूते भी कई रहते थे—चुङ्गीकी बक-झकमें वहाँ घण्टों लग गये।

अतिथि भवन पहुँचकर महाराजासाहबको सूचित किया गया कि मालवीयजी महाराज पधारे हैं, सुनते ही सब काम छोड़कर महाराजासाहब अतिथि भवनमें पहुँचे। आते ही उन्होंने पूछा कि आपकी सूचना तो मिली नहीं किन्तु गाड़ी तो कबकी आ चुकी—इतनी देर कैसे हुई ?

महाराजने चुङ्गीपर घटित सब घटना बतला दी—सुनकर महाराजासाहब उबल पड़े। चुङ्गी

भीड़की समाप्तिपर प्रसन्न मुद्रामें उन्होंने कहा—

'तुम महिलाओंकी भी बाहें पकड़ कर हटाते रहे, किसी स्त्रीका हाथ पकड़नेका मर्म समझते हो ? बाँह गहेकी लाज करना पड़ता है। और वह केवल विवाहके समय ही मण्डपमें उसका अवसर आता है, जिसमें प्रतिज्ञाबद्ध होकर आजीवन स्त्रीका दायित्व वहन करना पड़ता है। इससे भिन्न किसी स्त्रीका स्पर्श करना पाप माना जाता है।'

अपनी पत्नीकी ओर लक्ष्य कर महाराजने कहा :—

"ये एक बार इसी यमुनामें डूबी जा रही थीं। अपना पुराना नौकर बेनी दौड़कर इनका हाथ पकड़ लिया, इन्होंने क्रोधमें झटका देकर हाथ छुड़ा लिया। उसने जोरसे बाँह पकड़कर खींच लिया। ये डूब जाना अच्छा समझती थीं—दूसरेका स्पर्श नहीं। ये उसपर बड़ी नाराज हुईं—मेरे विचारमें वहाँ इनकी भूल थी, प्राणका सङ्कट था, आपत्तिका समय था। उस समय वही धर्म था, इनको नाराज नहीं होना चाहिए था।"

गन्दा शहर है—

सन् १९२९ में महाराज बम्बईमें गिरगाँव स्थित बिरला हाउसमें ठहरे थे। उन्होंने एक दिन मुझे क्षेमराज श्रीकृष्णदासके यहाँसे पुराणोंकी पुस्तकोंके लिए प्रातःकाल ही भेज दिया था। उन्हें स्मरण नहीं रहा कि उन्होंने मुझे कहीं भेजा है! दूसरोंको भी मेरे विषयकी कोई जानकारी नहीं थी।

प्रतिदिन रात्रिमें शयनके लिए वे माटुङ्गा शामको ७॥ बजे भोजनोत्तर जाया करते थे। उस दिन मेरी चिन्ता और प्रतीक्षामें माटुङ्गा नहीं जा सके थे। मैं लगभग ८॥ बजे रात्रिको पुस्तकोंका बण्डल लिये ताँगेसे उतरा तो फाटकपर ही बतलाया गया कि बाबूजी आपके लिए कितने परेशान हैं। आज माटुङ्गा भी नहीं जा सके और आप बिना सूचना दिये ऐसे गायब हो गये कि सभी परेशान हैं। बाबूजी तो बहुत नाराज और चिन्तित हैं ही।

महाराजके पास पहुँचा—देखा उनकी भृकुटी तनी है। पूछा अबतक तुम कहाँ थे ? उत्तर—आपने ही पुस्तकोंके लिए वेङ्कटेश्वर प्रेस भेजा था। जब पुस्तकें मिलीं, लेकर आ रहा हूँ। महाराज—यह गन्दा शहर है. यहाँ बहुत सावधानीसे रहनेकी आवश्यकता है, आजसे यह सङ्कल्प कर लो कि शामको ६ बजेके बाद इस मकानसे बाहर नहीं जाओगे, तुम्हारी चिन्तामें आज मैं माटुङ्गा नहीं जा सका।"

इन वाक्योंसे मैं स्तब्ध हो गया। अभी थोड़े दिन पहले महाराजकी सेवामें लगा था और बम्बई प्रथम बार आया हुआ था, ऐसा तो नहीं था कि यहाँ मैं भूल जाऊँ, किस भूलपर ६ बजेके बाद बाहर निकलनेको मना किया गया है, ऐसी कौन-सी स्थिति पैदा हो गयी, फिर गन्दा शहरसे क्या अभिप्राय है। मैं चिन्ताग्रस्त हो गया था। बादमें मालूम हुआ कि उस भवनमें तीन तरफ वेश्याओंका निवास था और महाराजके 'गन्दा शहर' प्रयोगका वही अभिप्राय था।

ऐसी गलती फिर न करना

दिन-रातकी सफरसे मैं ऊब गया था। कभी-कभी कहीं जानेमें अरुचि हो जाती। एक दिन श्री सुन्दरम्‌को कहकर एरनाकुलम् अतिथि भवनमें ही रुक गया। महाराज एक

सभामें चले गये थे। जहाँसे दूसरे दिन पुनः एरनाकुलम् लौटना था, वापस आकर महाराज बोले—"तुमने भूल की जो मेरे साथ नहीं गये, तुम्हें मुझसे कहना चाहिए था, तुमको मेरे साथ ही रहना चाहिए, तुम नहीं जानते मुझे कितना कष्ट हुआ और ऐसा अवसर सबको सुलभ नहीं हुआ करता है। मैं प्रयागमें अध्यापक था, मुझे ५५) वेतन मिलता था। कई बार यत्न करनेपर एक बार बड़ी कठिनाईसे ऐसा अवसर आया कि मथुरातक पहुँच पाया था। आगेका खर्च न होनेके कारण वहींसे प्रयाग वापस चला गया था। तबसे अबकी बार यहाँ तुम्हारे साथ आना हो सका है। जीवनमें ऐसे अवसर कम मिलते हैं। ऐसी गलती फिर न करना।"

महाराजके मृदु उपदेशसे मैंने लाभ उठाया और उनके जीवनपर्यन्त बराबर उनकी सन्निधिमें ही बना रहता था और पुनः मुझसे गलती नहीं हो सकी।

महाराज और गोविन्दजी जब जेलमें थे, घरका सारा दायित्व मेरे ही ऊपर था। इससे कुछ ईर्ष्यालु व्यक्तियोंने मेरे चरित्रपर कालिमा लगानेकी कुचेष्टा की थी, जिससे मैं महाराजके नजरोंसे गिर जाऊँ। इस षड्यन्त्रसे मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया था, रोता था और इस चिन्तामें था कि महाराजको जब ये बातें मालूम होंगी तब उनके समक्ष कैसे हो सकूँगा ?

काँग्रेस-स्वातन्त्र्य संग्रामकी झलकियाँ

मालवीयजी महाराजकी सवारीके लिए कोई कार नहीं थी। उनके प्रयोगके लिए प्रायः सेवा उपवनकी कार या प्रो-वाइस-चांसलर ध्रुवजीकी कार मँगा ली जाती थी।

उन दिनों सेठ डालमियाँ महाराजके अतिथि थे, उन्होंने इस कमीको महसूस किया और महाराजके लिए एक ब्यूक कार प्रदान की थी—उसके बाद मालवीयजीके पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीयने भी एक जीप ले लिया था। दोनों गाड़ियोंका लाइसेन्स मेरे नामसे लिया गया था।

(१) ब्रिटिश-शासन द्वारा जब काँग्रेस अवैधानिक घोषित कर दी गयी थी, उस समय काँग्रेस कार्यालयका सामान-कागजात साइक्लोस्टाइल आदि को सुरक्षित स्थानपर व्यस्थित करनेके लिए बाबू सम्पूर्णानन्दजी आदिने महाराजसे अनुरोध किया था, महाराजने मेरी ओर सङ्केत किया और गुप्त स्थानपर व्यवस्थित कर दिया था। कुछ दिनों बाद पुनः बाबू सम्पूर्णानन्दजी महाराजके पास आये और सामानके बारेमें पूछ-ताछ की—मैंने बतला दिया—उन लोगोंके जानेके बाद मैंने महाराजसे कहा कि आपने उन लोगोंके सामने ही पूछ दिया था अतः वे सब सामान वहाँसे अन्यत्र स्थानान्तरित हो जायगा—सुनकर महाराज प्रसन्न हुए। तत्कालीन देशके मूर्धन्य नेताओंसे निकटतम सम्पर्क होने तथा गुप्त कार्यों-को दृष्टिमें रखते हुए मुझे यह सख्त हिदायत थी कि किसी भी दशामें मैं पुलिसकी गिरफ्तमें न आ सकूँ—जिससे गुप्त कार्योंमें बाधा न पड़े।

(२) उन्हीं दिनों महाराजकी पुत्र वधू—पण्डित गोविन्द मालवीयकी पत्नी श्रीमती उषा मालवीय काँग्रेसकी डिक्टेटर थीं—वह प्रचारमें जीप गाड़ीका प्रयगोकर रही थीं—उसके साथ ही गिरफ्तार कर ली गयीं। ६ मासके लिए बन्दी बना दी गयीं और जीपके लिए मेरी आपत्तिपर कि वह मेरी है, मुझे वापस मिल गयी।

मैं प्रायः नौ बजे रात्रिको कार्यालय बन्दकर मङ्गलवारके सङ्कटमोचन हनुमानजीके दर्शनार्थ पहुँचा, प्रसाद चढ़ाया। श्रावणका महीना, अँधेरी रात और बूँदी पड़ रही थी, दर्शनकर बाहर आनेपर वृक्षसे, सटे कम्बलकी छोछी डाले बड़े रोबसे कहा—'कुछ हमें दिये जाओ'—मेरे पास चवन्नी थी—सोचा, यदि पुनः अनुनय करेंगे तो इसे भुजाकर दे दूँगा। ज्योंही छाता ताना और साइकिलपर सवार हुआ उन्होंने रौद्ररूपमें कहा—अच्छा जाओ। मनमें विचिकित्सा हो रही थी—याचनाके ढङ्ग, कर्कश आवाज और चेतावनी पर।

पौने दस बजे भोजनपर बैठा ज्योंही एक ग्रास मुँहमें डाला—एक विशाल बन्दर बगलमें रखी सदरी लेकर चम्पत हो गया। बाहर आकर एक मित्रसे अपनी व्यथा सुनायी। उस समय सदरीमें ६२७.२५ के साथ महारानीका उपरोक्त पत्र भी था। कुछ लोग सुनकर आशङ्का प्रकट करने लगे कि अँधेरी रातमें बन्दर नहीं आ सकता—मालवीयजीका पैसा हजम करना चाहते होंगे।

बाहर आनेपर देखा—वह बन्दर सदरी लिये मेरे मकानसे सटे सड़कपर ब्रजवासी प्रिण्टिङ्ग प्रेसके ऊपरी छतपर बैठा है। मेरे साथ चार व्यक्ति थे, उन्हें कुछ नहीं दिखाई देता था। मैंने साथियोंसे कहा—सदरीका जेब फाड़कर मनीबेगके साथ लिफाफेको मुँहमें रखकर दक्षिणकी छलाँग लगाया। यह भी मेरे साथियोंको दृष्टिगोचर नहीं हुआ था। मैंने ऊपर जाकर देखा सदरीके ७५ पैसे मुझे प्राप्त हो गये थे।

प्रायः एक बजे रात्रितक गली-पनाला ढूँढ़ा गया किन्तु व्यर्थ प्रयास रहा। घर आकर सो गया सवा चार बजे नींद खुल गयी। स्वप्न हुआ था कि तेरी परीक्षा ली थी। इतनेमें घबड़ा गया। जाओ अमुक जगह देखो। मेरे साथ एक ब्राह्मण तथा कामता सिंह नामक कर्मचारी सोये थे। मैंने जगाकर कहा—आपलोग उस जगह ढूँढ़ें, उनको समझमें आया बन्दर किसी ऊँचे ही स्थानपर उसे छोड़ सकता है। अतः पेड़पर देखना चाहिए। एक व्यक्तिने नीमके पेड़परसे चारों ओर दृष्टि लगाकर सड़ककी तरफ मकानके ऊपरी भागमें काली चीज और कुछ कागज हिलते देख दूसरे व्यक्तिको बतलाया कि उसे देखना चाहिए।

दोनों व्यक्ति उस मकानके पास आकर देखा कि वर्दी सहित एक कान्स्टेबिल वहाँ खड़ा है। मकानवालेको जगाकर ऊपर जानेकी अनुमति न देनेपर उसे बतलाया गया कि ऊपर काली चीज पड़ी है, ले आवें—अर्जुन सिंहने लाकर पुलिसको सौंप दिया था।

मुझे बुलाया गया—पुलिसके हाथ सौ-सौके नोटके साथ लिफाफा देखकर मुझे प्रसन्नता हुई—पूछा गया कि सब मिल गया—मैंने कहा सत्ताइस रुपयेकी कोई बात नहीं—अर्जुन सिंह पुनः छतपर जाकर मुड़ेरके नीचे कोनेमें पड़े एक-एकके नोट उठा लाये।

एक सज्जन अर्जुन सिंहसे कहा था—सौ-सौके नोटमेंसे एकाध लेनेकी भावना तुम्हें नहीं हुई—उन्होंने बतलाया कि पुलिसके हाथमें देनेपर मालूम हुआ था कि नोट है, इसके बाद लोगोंकी भीड़ अधिक होने तथा उन्हें बतलानेमें २ बज गया। उधर महाराजकी घबड़ाहट हो चुकी थी कि मेरे साथ कोई घटना घट चुकी है। घरवालोंसे मेरा पता लगानेको भी कहा था किन्तु किसीने ध्यान नहीं दिया था।

उस दिन मैं ढाई बजे बँगलेपर पहुँचा—देखा गाड़ी लगी हुई है। बरामदेमें पन्तजीने बतलाया

श्रीमती उषा मालवीयके यहाँ खर्चके लिए भेलूपुर पुलिसने विश्वविद्यालय पहुँचकर मालवी य भवनकी जिज्ञासा की थी—इस आपत्तिपर कि यह कुलपति निवास है। उषा मालवीयका घर प्रयागमें है। यदि आप बँगलेका खर्च करना चाहें तो कुलपतिकी अनुपस्थितिमें प्रो-वाइस-चान्सलरकी स्वीकृति दिखलाकर ही खर्च कर सकते हैं—पुलिस वापस चली गयी।

(३) काँग्रेस कार्यके लिए सत्याग्रहियोंको यत्र-तत्र धन मेरे द्वारा गुप्त रूपसे पहुँच जाता था—

(४) काँग्रेस-उम्मेदवारोंके चुनावसम्बन्धी व्ययके लिए प्रथम चक्रमें महाराज द्वारा दस सहस्रकी धनराशि विक्टोरिया-जार्जके सिक्कोंकी बोरी मेरे द्वारा लखनऊ भेजा गया था। जब वे कुछ क्षण पहले ऐशबाग स्टेशनके लिए रवाना हो चुके थे—टिकट लेते समय उन्होंने देखा—कहा —लाहौल विलाकूवत, जल्दी आधा मुझे दे दो—आधा अमीनाबाद पार्क मोहनलालको दे देना। इस प्रकार बहुधन्धी कार्योंमें होते हुए कभी पुलिसकी गिरफ्तमें नहीं आ सका। इन गुरुतर गुप्त कार्योंके प्रतिदानकी उपेक्षाकी गयी और जेलके प्रमाण पत्रके अभावमें स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी पेन्शनसे मुझे वञ्चित किया गया। यद्यपि नियम १२ के अनुसार मुझे राजकीय पेन्शन मिलनी चाहिए थी।

मुझे यह सुविधा प्राप्त थी कि कभी भी किसी समयमें जेलमें महाराजसे मिल सकता था। वहाँ पहुँचकर उनका दर्शन किया। प्रसन्न मुद्रामें पूछा—क्या समाचार लाये? कुछ समाचार देनेके बाद निवेदन किया :—

"बाबूजी! आप जबतक जेलमें हैं, बँगलेपर मेरी कोई उपयोगिता नहीं है, इससे मैं चाहता हूँ कि घर चला जाऊँ। जेलसे मुक्त होनेके बाद यदि मेरी सेवा आवश्यक समझें तो बुलवा लीजियेगा" यह सुनकर महाराज कुछ क्षणतक नेत्र बन्दकर सोचने लगे फिर बोले :—

"तुम्हें घर जानेका काम नहीं है—मैं समझ रहा हूँ कि तुम ऐसा प्रस्ताव क्यों कर रहे हो, तुम्हें उससे चिन्तित नहीं होना चाहिए, जिन लोगोंने तुम्हारे विरुद्ध षड्यन्त्र किया है, वे इसका दण्ड भुगतेंगे। मैं हमेशा जेलमें ही नहीं रहूँगा। घरके एक आदमीके कुछ दिन बाहर रहनेपर औरोंको घर छोड़कर भाग नहीं जाना चाहिए।"

उपर्युक्त वाणी सुनकर स्तब्ध हो जाना पड़ा, मेरे आँसू गिरने लगे, गोविन्दजी भी जेलमें थे। परिवारके लोग प्रति रविवारको मेरे सामने महाराजसे मिलते थे। फिर महाराजको ये सब बातें कैसे मालूम पड़ीं? यदि यह मान भी लिया जाय कि किसीने मेरी शिकायत महाराजतक पहुँचायी थी, तो मेरे मिलते ही उन्होंने प्रसन्न मुद्रामें कैसे पूछा था—क्या समाचार लाये? उनके भाव क्यों नहीं बदले थे? चरित्र-दोष के लिए तो उनके यहाँ क्षमाका कोई स्थान नहीं था। यह निर्विवाद है कि यह उनके दिव्य ज्योतिका प्रकाश था, जो समय-समयपर मुझे समझनेका अवसर मिलता रहता था।

महाराजकी विचित्र लीला

सन् १९४२में मध्य प्रदेशकी महारानीका मुहरबन्द लिफाफा अंग्रेजीमें टाइप किया हुआ पत्र महाराजके नाम आया था, उसे खोलकर उनके हाथमें दे दिया था। वे पढ़कर कुछ सोचने लगे फिर उसी लिफाफेमें रखकर मुझे लौटा कर उन्होंने कहा "इसे आफिसमें, मेरे कमरेमें भी मत छोड़ना, किसीके हाथ नहीं लगना चाहिए।" मैंने सदरीके भीतर जेबमें रख लिया और ऐसे पत्र, जिसमें इतनी सावधानी बरती गयी थी, पढ़नेकी स्वाभाविक इच्छा होनी चाहिए थी, मैंने कभीनहीं पढ़ा—८,९ मास सदरियोंमें पड़ा रहा। इतने दिनोंतक उस पत्रकी कोई चर्चा नहीं की गयी।

को नहीं मिलता था, उस दिन उन्हें भारी कमी महसूस होती थी। उस दिन वे यह समझ लेते थे कि मिलनेवाले रोक दिये गये। ऐसी दशामें पूछ भी लेते थे, कोई मिलने आया था ? सुबहसे रात्रितक जबतक सो नहीं जाते, सबकी सुनते ही रहते थे और तदनुरूप धैर्य और शान्ति पहुँचाते थे। जीवनमें उन्होंने कभी किसीको निराश नहीं किया।

मुझे अपने सत्रह वर्षोंकी सेवाकालमें केवल एक घटना ऐसी मिली, जिसमें उनके मुखसे 'ना' निकला था और यह 'ना' उनको महँगा सिद्ध हुआ। घटना इस प्रकार है :—

एक राज्यके मद्रासी प्रिन्सिपल महोदय अनुलम्बित थे, जो वहाँके प्रधान मन्त्रीके नाम महाराजसे संस्तुतिका पत्र लेने आये थे। प्रधान मन्त्री महाराजके मित्र थे। जिस समय प्रिन्सिपल महाशय अपनी करुण कहानी महाराजको सुना रहे थे, उस समय रघुनाथ दत्त व्यासजी वहाँ उपस्थित थे और तन्मयतासे कहानी सुन रहे थे। प्रिन्सिपल महाशयका अभिप्राय जानकर महाराजने उत्तर दिया कि मुझे खेद है कि मैं प्रधान मन्त्रीको पत्र नहीं लिख सकूँगा। निष्फल प्रिन्सिपल महाशय वापस चले गये।

उनके चले जानेके बाद व्यासजीने महाराजको सम्बोधित किया :—

> अभी-अभी जिन सज्जनके लिए आपकी वाणीसे मुझे 'ना' करनेका बोध हुआ, क्या वह सत्य था, मेरा भ्रमात्मक ज्ञान था ? अपने विगत ७० वर्षोंके प्रगाढ़ परिचय और आपके सान्निध्यमें मैंने आपके दरवाजेसे किसी दुःखी व्यक्तिको विमुख होते नहीं देखा और न सुना ही था। अभी-अभी आपका किसीके लिए नकारात्मक उत्तर सुनकर आश्चर्य चकित हूँ कि वस्तुतः यह शब्द महान् उदाराशय, कोमल चित्तवाले मालवीयकी वाणीसे कैसे निकला ?
>
> एक दुःखी व्यक्ति इतनी दूरसे कितनी अरमानोंके साथ आपके दरवाजे पहुँचा, जिसके लिए आपका शरीर हाथ नहीं लगना था, केवल वाणीसे कुछ शब्दोंको लिख देना था, उसमें इतनी कृपणता और कठोरता कैसे आ गयी ?

व्यासजीकी मर्मवेधी वचनसे सदय हृदय और निर्मल मनको मथ डाला। वे विह्वल हो गये, अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। उन्होंने आदेश दिया कि प्रिन्सिपलको तुरत बुलाया जाय, बहुत खोज करनेपर प्रिन्सिपल नहीं मिले।

महाराजको उस दिन बहुत बैचैनी रही—प्रायश्चितस्वरूप भोजन नहीं किया और आत्म-निरीक्षण करने लगे। अपने पुत्र गोविन्द मालवीयसे कहा 'ऐसा लगता है, मुझे दूषित अन्न मिल रहा है, क्यों मैंने उस विद्वान्का अनादर किया, अब अन्नका त्यागकर दूँ तो अच्छा होगा।'

उस दिन विद्वान्से पुनः मुलाकात नहीं हो सकी किन्तु महाराजने निजी पत्र द्वारा उनके कार्यमें सफलता दिला दी थी, जो कदाचित् साथ पत्र ले जानेसे नहीं मिलती।

काया-कल्प

महाराजके जीवनमें काया-कल्पकी एक विशेष घटना है। उनका स्वास्थ्य दुर्बल हो गया था। शरीरमें रक्तका सर्वथा अभाव था। काया-कल्पके विशेषज्ञ तपस्वी विशनदासजीके अनुरोधपर, मित्रों, अनुयायियोंके प्रबल विरोधके बावजूद भी महाराजने काया-कल्प करानेकी स्वीकृति दे दी थी और १६ जनवरी, १९३८को प्रारम्भ किया था। २५ फरवरी, ३८ को कुटीसे बाहर हुए।

कि बाबूजी तुम्हारे लिये चिन्तित हैं, कोई सूचना तुमने नहीं दी। तुम्हारे घर जानेको तैयार हैं। भीतर जाकर देखा वे पूरे ड्रेसमें तैयार हैं, देखते ही पूछा—अबतक कहाँ थे और वह पत्र कहाँ है ?

मैंने बतलाया रात ऐसी घटना हो गयी थी कि आज मैं आपके समक्ष अपना मुँह दिखाने लायक नहीं रह जाता। सब घटना सुननेके बाद उसी लिबासमें लेट गये। नारायण-नारायण कहते उनके अश्रु प्रभावित होने लगे--और आर्द्र स्वरमें बोले :—

"तुम चूक गये, तुम समझ नहीं पाये--तुमको तो भगवान्ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया—हे राम।" इतना सब होनेपर भी उस समय या भविष्यमें भी पुनः महारानीके पत्रकी कभी पूछ नहीं हुई—इस प्रकार वह पत्र केवल बहाना मात्र था :—महाराजको कुछ दिखाया था जो मैं नहीं समझ सका था। सेठ जुगलकिशोर बिरलाको भी महाराजने कहा मुझे सङ्कट मोचन ले चलो—शामको महाराजने हनुमानजीका दर्शन किया। उन दिनों वहाँ जङ्गल-झङ्खाड़ था। सड़कपर रोशनी नहीं थी—तत्कालीन महन्थको उचित व्यवस्थाके लिए उन्होंने आदेश दे दिया था।

परदुःख कातरता

पण्डित जवाहरलाल नेहरूजीके जन्मके विषयमें मेरे एक मित्रने बतलाया कि मोतीलाल नेहरूको तीन कन्याएँ थीं, पुत्र नहीं था। महाराजके मनमें यह बात चुभती थी, उन्होंने एक दिन आग्रहपूर्वक नेहरूजीको एक महात्माके पास ले गये। देखते ही महात्माने कहा—यह तो राजपुरुष प्रतीत होता है और एक फल प्रदानकर दिया तब महाराजने कहा—मेरे भाईको पुत्रका अभाव है। महात्माजी सचिन्त हो गये। उन्होंने कहा--इन्हें पुत्रका योग तो नहीं है। महाराजने कहा—प्रभो—आशीर्वादस्वरूप आपने पहले ही फल प्रदानकर दिया है तब तपस्वीजी बोले अच्छा कल इसी समय यहाँ आना। दूसरे दिन तपस्वीजीके आश्रमपर पहुँचनेपर महाराजको उनकी लाश पड़ी हुई मिली अर्थात् तपस्वीजीने अपनी आत्माको जवारहलालजीके लिए भेज दी थी।

महाराजके मुखसे इस विषयमें कभी चर्चा नहीं सुनी थी। अपने मित्रसे सुननेके बाद महाराजसे उपर्युक्त बातें बतलाया, सुनकर महाराज—नारायण-नारायण कहते-कहते विभोर हो गये। कुछ कहा नहीं। 'मौनं स्वीकृत लक्षणम्' मान लिया।

मस्तिष्ककी औषधि

विश्वविद्यालयका एक स्नातक मस्तिष्क विचारसे पीड़ित हो गया था। महाराजने अस्पतालमें बने अलग कमरेमें उनकी स्वयं चिकित्सा की थी। बादाम, शङ्ख पुष्पी और मिर्चके प्रयोगसे वह ठीक हो गये। रोगग्रस्त होनेके पहले स्नातक महाशय मुन्शफीका इण्टरव्यू दे आये थे। रुग्णावस्थामें ही चुनावमें उनकी सफलताकी सूचना प्रकाशित हो गयी थी और वाइस-चान्सलरके पास उनके गुप्त रिपोर्टका फार्म आ चुका था। महाराजने गुप्त रखनेको सावधानकर दिया था कि यदि इसकी बीमारीका पता चल जायगा तो इसका निर्वाचन रद्दकर दिया जायगा। महाराज दुःखी थे, दोनों समय उसकी देखभाल करते थे। उनका आशीर्वाद था—जो उनकी औषधि और हाथसे स्नातकजी रोग मुक्त हो गये। वाइस-चान्सलरने अपनी गुप्त रिपोर्ट सरकारको भेज दी और वह मुन्शिफ बन गये।

परदुःखकातरता—अन्न दोष

परदुःखकातरता महाराजका सहज स्वभाव था। जिस दिन किसीका दुःख उन्हें सुनने-समझने-

एक दिन डेढ़ बजे रात्रिको अपने कानके पास बुलाकर अत्यन्त गम्भीर स्वरमें उन्होंने कहा—"देखो ! इस बातका ध्यान रखना कि मेरा दाह-संस्कार त्रिवेणीपर जहाँ भाई मोतीलाल नेहरूका किया गया था, वहाँ न किया जाय, यह मुझे प्रिय नहीं है। लोगोंके स्नान-पूजनके स्थानसे दूर हटकर करना चाहिए, जिससे लोगोंको कष्ट न होने पावे। यदि बनारस जाते समय रास्तेमें ही शरीर छूट जाय तब भी इस बातका ध्यान रखना और भैया (पण्डित रमाकान्त मालवीय) से कह देना—शायद वह २, ३ दिनमें बम्बई आनेवाले हैं, उन्हें मनाकर देना, बम्बई न जायँ, प्रयागमें ही रहें।"

गङ्गा तटपर निस्तब्ध अर्धरात्रिके समय तिमिराच्छन्न कुटीमें महाराजके मर्मस्थलसे निकली वाणीने मुझे झकझोरकर भयभीत कर दिया, कुछ बोल न सका। सोचने लगा जो महामानव लगातार ७० वर्षोंतक अपनी दिव्य शक्ति और ओजस्विनी वाणीसे देश-धर्म और जातिका हृदय बनकर उनकी धमनियोंमें बलकी अजस्र धारा फेंकते रहे, जिन्होंने अपने मधुर वचनोंसे करोड़ों मनुष्योंके मर्मस्थलको स्पर्श किया है, वे आज कैसी बातेंकर रहे हैं ? मेरा शरीर काँप रहा था। मेरे चुप रहनेपर बोले, तुम सुन रहे हो न ?

मैंने कहा--सुन तो रहा हूँ बाबूजी, समझमें नहीं आ रहा है कि आज आप यह सब क्या कह रहे हैं ? अवश्य ही आपके दिलमें कुछ उथल-पुथल हो रहा है। उन्होंने कहा—आप अपनी स्वाभाविक अवस्थाका त्यागकर इस प्रकारकी दुर्बलता प्रकट कर रहे हैं, इससे मेरा चित्त उद्विग्न हो रहा है—

"तुम नहीं समझे ! मेरे मनमें ऐसी कोई दुर्बलताकी बात नहीं है और जो कुछ कहा प्रकृतिस्थ होकर, बहुधा छोटी-छोटी बातें समयपर ध्यानमें नहीं आतीं। मेरे मनमें यह बात खटकती थी, सो तुम्हें सावधान कर दिया।"

मैंने कहा—यह तो ठीक है। आपका आदेश मिलता रहना चाहिए। किन्तु बात केवल इतनी ही नहीं है, बाबूजी आपका दिल अत्यन्त चञ्चल है, स्वर भी कम्पित है, अवश्य ही आप किसी गम्भीर चिन्तामें निमग्न हैं, आपने भैयाको बम्बई न जानेका आदेश दिया है, इससे आपके हृदयकी चञ्चलता या दुर्बलता परिलक्षित है, वे मौन थे—कुछ देर बाद बोले—

"दुःखी न होओ, मैं समझ रहा हूँ, तुम्हारे दिलमें यह बात बैठ गयी है कि बाबूजी अब जानेवाले हैं, ऐसी बात नहीं है। शरीरका कुछ ठिकाना नहीं है, कब रहे न रहे, जिस क्षण भीतरकी वह ज्योति निकलेगी, भैया, तुम या कोई भी इस ज्योतिको रोक नहीं सकता। एक बात मनमें आयी थी तुम्हें बतला दिया, दुःखी होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

जिस भावनासे पण्डित रमाकान्तजीको बम्बई जानेसे रोकनेका आदेश मिला था। उसे महाराजने प्रकट नहीं किया। उसके बाद कोई बात नहीं हुई। उनकी चारपाई पकड़े-पकड़े मैंने रात्रि व्यतीत की। जब उनकी नाकको आवाजसे सोनेका सङ्केत मिला, मैं कुटीके बाहर आ गया।

महाराजको इस काया-कल्प चिकित्सासे अच्छा लाभ हुआ था। तपस्वी विशनदासका स्पष्ट कथन था कि कुटीसे निकलनेपर क्षुधा अत्यन्त तीव्र होगी। उसका यथेष्ट शमन आवश्यक होगा। पर्याप्त भोजन मिलना चाहिए—यदि इसमें कमी होगी तो शनैः-शनैः शरीर क्षीण होगा और कल्पका प्रयोग व्यर्थ हो जायगा।

यह नित्य ही देखा गया कि भोजनसे उठकर हाथ धोते समय महाराज कहते जाते थे—भूख

औषधि निर्माण

प्रयागके दक्षिण शङ्करगढ़ राज्यमें पलाशका विशाल जङ्गल था, पलाश वृक्षका ऊपरी भाग काटकर जड़वाले भागमें ओखरी बनाकर उसमें आँवले भर दिये जाते थे। कपड़ा-मिट्टीसे बन्दकर जङ्गल-की एकत्रित कण्डीसे घेरकर आग लगा दी जाती थी। २४ घण्टेतक उसे पकाया जाता था। उसपर किसीकी छाया पड़नेसे बचाया जाता था।

वृक्षके रसमें सिद्ध आँवलोंको कुछ हरे चूर्णके साथ गो-घृत और शहद मिलाकर महाराजको तीन बार दिया जाता था। यही दवा तथा गायका दूध निरन्तर ४५ दिनोंतक उनका भोजन था, अन्य त्याज्य था।

फाफामऊके पास शिवकोटि नामक बच्चाजीके बँगलेको त्रिगर्भा बनाकर कहींसे प्रकाश न आ सके, ऐसे अँधेरेमें निवास करना था। केवल मोमबत्तीका प्रकाश रात-दिन जलता रहता था। किसी भी व्यक्तिसे, सिवाय नियमित तीन व्यक्तियों—तपस्वीजी, सेवक और लेखकसे मिलना-जुलना, बाहरी समाचार देना आदि प्रतिबन्ध था।

बाहरी बरामदेमें पण्डित भीमसेन चतुर्वेदी (पण्डित सीताराम चतुर्वेदीके पिता) प्रतिदिन रुद्रा-भिषेक करते थे और पण्डित रामप्रिय कविजी श्रीमद्भागवतका पारायण करते थे। महाराजके परिवारके लोग भी अन्दर नहीं जा सकते थे। महाराजके काया-कल्पकी बात समाचार पत्रों द्वारा संसार भरमें फैल गयी थी। देश-विदेशके लोगोंमें एक नया कुतूहल-सा हो गया। लोगोंमें काया-कल्प प्रयोग—जाननेकी प्रवृत्ति बढ़ी। देशी-विदेशी जिज्ञासु भावनासे शिवकोटि उन दिनों तीर्थ-स्थान बन गया था। निरन्तर अन्धकारमें रहनेके कारण महाराजको दिन-रातका ज्ञान नहीं रहा। इससे दिनमें सोते रहते और रात्रिको प्रायः जागरण करते थे। मैं प्रतिदिन रात्रिमें जब नींद टूटती महाराजकी कुटीका परि-क्रमाकर लिया करता था। बाहर पत्ताकी खड़खड़ाहट सुनकर महाराज ताली बजा दिया करते थे। मैं भीतर पहुँचकर महाराजको देख लेता था।

महाराजके रात्रिके जागरणका रहस्य उस दिन प्रकट हुआ, जब उन्होंने ताली बजायी। भीतर जानेपर उन्होंने पूछा कि अभी तुम कहीं बाहरसे आ रहे हो? उत्तर दिया—जब नींद नहीं आती तो कुटीकी परिक्रमा करने लगता हूँ। पूछा—इस समय रात्रि है क्या? उनके सिरहाने रखी घड़ीको मोमबत्तीके प्रकाशमें देखकर बतलाया—इस समय रात्रिके ढाई बजे हैं। उन्होंने कहा—बैठो कुछ सुनाओ—उनकी रुचिके अनुसार महाभारत, गीता आदि सुनाया करता था। जब उनको नाक बजने लगती थी-तब उठकर चला जाता था।

कभी महाराज अपने अतीतकी घटनाओंको सुनाते थे, कभी भविष्यके कार्यक्रमपर विचार करते रहते थे, बातचीतमें कभी-कभी सूर्योदय भी हो जाता था।

महाराजके अपने व्यस्त जीवनके कार्यक्रमोंमें इतना एकान्त और वाह्यजगत्की दशासे पूर्णतः अनभिज्ञ होनेका अवसर कभी नहीं मिला था, जिसने दिनको रात और रातको दिनमें परिवर्तितकर दिया था। अवश्य ही उनकी मानसिक विचारधारा डाँवाडोल होती रही। ऐसे महाराज जो अहर्निशि जन-समस्याओंमें व्यस्त रहा करते थे, उन्हें एकान्तमें, मैं भी उनके सन्निकट था, जिससे वे कह-सुन सकें।

स्पेशल ट्रेनके कारण सब ट्रेनें जहाँकी तहाँ रुकी पड़ी हैं, इससे यहाँ खड़ा हूँ। वायसरायने कहा आइये मैं आपको प्रयाग पहुँचा दूँगा। महाराज उनके साथ ही बैठ गये और स्पेशल ट्रेन रुकवानेकी सारी बातें वायसरायको बतला भी दी थी।

चमत्कार

कलकत्ता कांग्रेस के अध्यक्ष पण्डित मोतीलाल नेहरू थे। जिस ट्रेनसे वे जा रहे थे महाराज भी उसी ट्रेनसे मुगलसरायसे प्रस्थान कर रहे थे। नेहरूसे बातें करनेके लिए उनके डिब्बेमें जा बैठे थे। गया स्टेशनपर जब गाड़ी चलनेको हुई, तब महाराज अपने डिब्बेकी ओर रवाना हुए, वहाँतक पहुँचते-पहुँचते गाड़ी चल पड़ी। महाराज अपने डिब्बेतक नहीं पहुँच सके थे। वे प्लेटफार्मपर खड़े हो गये। गाड़ी प्लेटफार्मसे आगे निकल गयी। तब किसी यात्रीने महाराजको खड़े देख लिया, उसने जञ्जीर खींचकर गाड़ी खड़ी कर दी। गाड़ी रुक जानेपर वह व्यक्ति गार्डके हाथमें ५०) के नोट रख-कर कहा—जञ्जीर मैंने खींची है। यह जुर्माना है, एक खास व्यक्ति छूट गये हैं, जिनका इसी ट्रेनसे कलकत्ता पहुँचना आवश्यक है, उन्हींके लिए मैंने गाड़ी खड़ी करायी है—इतनेमें महाराज डिब्बेमें पहुँच गये।

महाराजकी धारणा थी कि गार्डने स्वयं उन्हें प्लेटफार्मपर खड़े देखकर गाड़ी रुकवा दी थी। इस रहस्यका पता हावड़ा स्टेशनपर चला। जब गार्ड रसीद देनेके लिए यात्रीकी खोज की और वह व्यक्ति नहीं मिला—उसका पता कभी नहीं चला कि वह कौन था? यह चमत्कार ही तो कहा जायगा? यदि कोई व्यक्ति ५०) जमा किया होता तो उसकी रसीद प्राप्त नहीं भी करता तो कमसे कम धन्यवाद प्राप्त करनेकी उसकी जिज्ञासा होती।

बम्बईका टिकट

लगभग ८ बजे रात्रिको महात्मा गांधीका फोन मिला था कि वायसरायसे समझौता हो गया है। गोलमेज कान्फ्रेन्समें सम्मिलित होनेके लिए 'राजपूताना' जहाजसे चलें।

उसी दिन रातको ११ बजेकी एक्सप्रेससे प्रयाग पहुँचकर घरके ठाकुरजीका दर्शनकर दूसरे दिन प्रातःकाल बम्बई मेल पकड़नेपर जहाज मिल सकता था। सब सामान ठीककर ९-३० बजे मुगल-सराय पहुँच गया। बम्बईका टिकट माँगनेपर बुकिङ्ग क्लर्कने बहुत अनुनय-विनय करनेपर भी टिकट देनेसे इनकारकर दिया। अन्ततः विवश होकर महाराजसे कहना पड़ा। उन्होंने कहा—इलाहाबादका टिकट क्यों नहीं ले लेते। बतलाया कि कई जगह टिकट लेनेमें १०-१२ रुपये अधिक लग जायेंगे और दो जगह सामान तौलानेकी झञ्झट बढ़ जायगी। टिकट तो बम्बईतकका लेना है। वे उठ खड़े हुए, फिर पूछा इण्डियन हैं या यूरोपियन—बतलाया इण्डियन है तब महाराजने कहा—"उससे कहो अपनी सर्विस कायम रखना चाहता है तो बम्बईका टिकट दे दे।"

प्लेटफार्मसे कूदते-फाँदते बुकिङ्ग क्लर्ककी खिड़कीपर पहुँचा और कहा कि मुझे तो बम्बईका टिकट देनेसे कतई इनकारकर दिया था। अब इस टिकटके लिए मालवीयजी महाराजका आपके लिए विशेष सन्देश लाया हूँ कि यदि आप अपनेको सुरक्षित रखना चाहते हैं तो बम्बईका टिकट दे दें। इतना सुनना था कि क्लर्क बाहर खिड़कीपर आदरके साथ भीतर ले गया। कुर्सी दिया, टिकट दिया बादमें पैसा लिया। बैठे-बैठाये सामान भी तौला गया। आनन-फाननमें हमारा काम हो गया।

नहीं मिटी। यह कहनेपर कि आप सङ्कोच क्यों करते हैं—निडर होकर पर्याप्त भोजन लें—कहते थे, कैसे पचा पाऊँगा—पहले जितना भोजन करता था, उससे अधिक पचानेकी शक्ति नहीं हो सकती। इस भयने उन्हें सदा क्षुधा पीड़ित रखा। शरीर जलता रहा, फलतः उनका शरीर पुनः अपनी पूर्वावस्थामें पहुँच गया और काया-कल्प प्रयोग निष्फल हो गया।

काल-ज्ञान चोरी पकड़ी गयी—ट्रेन नहीं छूट सकती

सन् १९२९ में प्रेसीडेण्ट पटेलकी आज्ञा प्राप्त किये बिना दिल्ली एसेम्बली भवनमें पुलिसका प्रवेश हो गया था, जब सरदार भगत सिंहने भवनमें बम विस्फोट किया था। प्रेसीडेण्ट पटेलने इसपर वैधानिक आपत्ति उठायी थी। एतद्विषयक विवादने भयङ्कर रूप धारण कर लिया था।

महाराज कुम्भ मेला प्रयागमें तीन बजे महासभाके प्रधान वक्ता थे। पटेलसाहबका तार मिला कि कल ऐसम्बलीमें आपका पहुँचना अनिवार्य है। प्रयागसे दिल्लीके लिए ट्रेन ५ बजे शामको जाती थी, जो समयसे दिल्ली पहुँच सकती थी।

साधारणतया महाराजके व्याख्यानका समय एक घण्टा समझकर उनकी घड़ीकी सूई जो मेरे पास रहती थी। पन्द्रह मिनट आगेकर दिया था—ठीक पौने चार बजे उन्होंने अपना व्याख्यान समाप्त कर दिया था और सभास्थलसे सीधे स्टेशनके लिए रवाना हो गये। कुछ दूर जानेपर उन्होंने काशिराज महाराजा सर प्रभुनारायण सिंहसे मुट्ठीगञ्जमें मिलनेकी जिज्ञासा करते हुए पूछा :—

> "मैंने अपना भाषण सम्भवतः पौने चार बजे समाप्तकर दिया था—तुमने घड़ीकी सूई १० मिनट की है या १५ मिनट समय तो अभी होगा ही। महाराजासाहबसे केवल पाँच मिनटके लिए मिलना है," उत्तर दिया था—कि हाँ थोड़ा ही समय है। अपनी चोरीकी गिरफ्तारीपर उन्हें क्या उत्तर देता ? महाराजने कहा—'घबड़ाओ मत मेरी गाड़ी नहीं छूटने पावेगी। महाराजासाहबसे मिलकर स्टेशन पहुँचे—मालूम हुआ गाड़ी एक घण्टा विलम्बसे आवेगी··· महाराजने कहा तबतक घर भी होता आऊँ। समयसे आ जाऊँगा, चिन्ता मत करना।

मालवीयजी महाराज समयके पाबन्द नहीं थे। वे रेलपर सवार होनेके लिए प्रायः ट्रेनसे छूटनेके समय घरसे प्रस्थान करते थे। वे कहा करते थे कि ट्रेनें बहुधा लेट हो जाया करती हैं, उसका लाभ मैं उठाता हूँ। मेरी ट्रेन प्रायः नहीं छूटती और छूट भी जाय तो मेरा काम रुकता नहीं। 'उन्होंने बतलाया' किसी आवश्यक कार्यसे प्रयागसे अन्यत्र गये थे। वहाँसे ३-४ घण्टोंमें प्रयाग पहुँच सकते थे। उसी शाम सभामें भाषण देना था। स्टेशन पहुँचनेपर मालूम हुआ कि प्रयागकी गाड़ी जा चुकी है, कोई उपाय नहीं है, कोई मालगाड़ी जाती हो तो उससे ही जानेके विचारसे स्टेशन मास्टरसे पूछ-ताछ की थी। स्टेशनपर पता चला कि इस समय प्रयाग जानेवाली मालगाड़ी पिछले स्टेशनपर वायसरायके स्पेशल ट्रेन आनेकी प्रतीक्षामें रोक दी गयी है। स्टेशन मास्टरसे कहा—किसी प्रकार स्पेशल ट्रेन रुकवा दें। उत्तर मिला—ऐसा करनेपर लाइन क्लीयर देनेवालेपर मुसीबत हो जायगी। महाराजने आश्वासन दिया ऐसा नहीं होने पावेगा, चिन्ता न करें रुकवा दें।

निश्चित योजनानुसार स्पेशल ट्रेन रुक गयी। वायसरायने देखा मालवीयजी प्लेटफार्मपर खड़े थे। उन्होंने पूछा—आप यहाँ कैसे ? महाराजने बतलाया कि प्रयाग जानेके लिए आया था किन्तु आपकी

'कूप खुले मन्दिर खुले, खुले स्कूल चहुँ ओर।
सभा-सड़क जमघट खुले, नाचत है मन मोर॥

नाचत है मन मोर—शब्दोंसे उनके कितने आह्लादित होनेका भाव टपकता है ?

सन् १९३६ में शिवरात्रि पर्वपर काशीमें हाथियोंपर विख्यात विद्वानोंका जलूस निकला। उसके पिछे बड़े-बड़े पण्डित महिम्न स्तोत्रका पाठ करते चल रहे थे। उसके पीछे हरिजनोंके अखाड़े, गाने-बजानेवालोंकी गाड़ियाँ और दर्शकोंका अपार समूह चल रहा था। दशाश्वमेध घाटपर जलूस समाप्त हुआ और एक विशाल जनसमूहको महाराजने अपना भाषण सुनाया। अगले दिन वहीं महाराजने मन्त्र दीक्षा दी।

गाँधीजीका हरिजन-आन्दोलन समाप्त—महाराजका भाषण

१ अगस्त, १९३३ को महात्मा गाँधीने हरिजन-आन्दोलन प्रारम्भ किया था, इस विषयके लिए उन्होंने देशभरका दौरा किया था, उनके प्रभावसे बहुतसे मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए खुल गये। सार्वजनिक स्कूलोंमें हरिजन बालकोंको प्रवेश और पढ़नेकी आज्ञा मिल गयी और कई स्वतन्त्र हरिजन पाठशाला भी खुल गये।

यह दौरा १ अगस्त, १९३४ को काशीमें आकर समाप्त हुआ। वही दिन लोकमान्य तिलककी पुण्य तिथिका भी था। हिन्दूविश्वविद्यालयमें सभा हुई, जिसमें गाँधीजीने भाषण दिया।

वर्णाश्रम स्वराज्य-सङ्घकी ओरसे पण्डित देवनायकाचार्य गाँधीजीका विरोध करने पहुँचे थे।

गाँधीजीने अपने भाषणमें उनका भी भाषण ध्यानपूर्वक सुननेकी प्रार्थना उपस्थित जनतासे की। पण्डित देवनायकाचार्यने अपना मत प्रकट किया। उसके बाद मालवीयजी महाराज उठे और उन्होंने एक विस्तृत व्याख्यान दिया :—

"मैं बहुत समयसे इस प्रयत्नमें हूँ कि विद्वान् लोग निष्पक्ष होकर यह निर्णय करें कि शास्त्र क्या कहता है ? विद्वन्मण्डली राग-द्वेष छोड़कर जो बतावे और निर्णय दे उसे सबको मान लेना चाहिए।"

"अस्पृश्यता और मन्दिर प्रवेश बिलके सम्बन्धमें मेरा अपने भाई (गाँधीजी) से कुछ मतभेद है। मेरी रायमें बिल असेम्बली द्वारा नहीं पास होना चाहिए।"

"अछूत लोगोंको हिन्दू जातिसे बाहर निकालनेका इसाइयोंने प्रयत्न किया। मुसलमानोंने प्रयत्न किया। कितने ही अछूत भाइयोंको उन्होंने मुसलमान और ईसाई बना भी लिया। वे अब धर्म-रक्षक नहीं रहे। इसी बातपर महात्मा गाँधीने यह आवाज उठायी है। चुटिया जिसके सिरपर है, रामनाम जिसके मुँहमें है, सत्यनारायणकी कथा जिसके घरपर होती हो, ऐसे सनातन धर्मके माननेवाले चमार, भङ्गीको इसाइयोंने अपने दलमें बुलाया और मुसलमानोंने अपने दल में। किन्तु उन्होंने अनेकों कष्ट सहकर भी गङ्गा और गऊको, राम और कृष्णको नहीं छोड़ा, मेरा सिर उनके आगे झुक जाता है।"

"मैं धर्म-ग्रन्थोंके अध्ययनके अनुसार कहता हूँ कि इनको भी देव दर्शनका लाभ मिलना चाहिए। यही अभिलाषा गाँधीजीकी भी होगी। सदाचार ऐसी वस्तु है कि इससे नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी मनुष्य कैसा सम्मान पा सकता है। चाण्डाल भी हमारे ही अङ्ग हैं। क्या आप लोगोंमेंसे कोई चाहते

महाराज विश्रामालयमें न जाकर प्लेटफार्मपर ही अपने बिस्तरके बण्डलपर बैठे थे। जहाँ सारा स्टेशन स्टाफ उनके चरणोंपर गिरकर क्षमा याचना की। महाराजने कुछ फटकार देते हुए यात्रियोंके साथ सदा भद्रताका व्यवहार अपनानेका आदेश दे दिया था।

अछूतोद्धार-मन्त्र दीक्षा—गुण्डेका प्रहार

मदन मोहनमालय भूसर, सकल लोक हितोद्यतमानसः।
पतित नीच जनानशुचीनपि अङ्करते निज मन्त्र बलात् पूर्वानि॥

हिन्दू जातिके अछूतोंके साथ, जिस प्रकारका व्यवहार शताब्दियोंसे चला आ रहा था, उससे देश-कालके प्रभावसे विषयोंमें अछूतोंके साथ हिन्दुओंकी सहानुभूति कम हो चली थी। उसीका परिणाम अछूत आन्दोलन हुआ। समय और समाजकी गतिसे पूर्ण परिचित मालवीयजी महाराजने इस प्रश्नको अपने ही दृष्टि कोणसे हल किया था। उन्होंने हिन्दू समाजमें परम्परागत सनातनधर्मके अन्दरसे शनैः-शनैः इस सामाजिक रोगका निदान ढूँढ़ लिया और उनका व्यापक प्रभाव भी हुआ।

सन् १९२१ में दक्षिण भारतमें मोपला विद्रोह हुआ, जिसमें हिन्दुओंको बहुत क्षति उठानी पड़ी थी, साथ ही अछूतोंको हिन्दू समाजसे पृथक करनेका आन्दोलन भयानकरूप धारणकर रहा था। हिन्दुओंकी संख्या कम रहे, यह मुसलमानोंको अभीष्ट था। सरकार भी आन्दोलनको प्रोत्साहित करती थी। हिन्दू जातिके लिए घातक स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।

इस गतिको रोकने और उसके उद्धार तथा सुधारके लिए महाराजने अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभा द्वारा प्रस्ताव पास कराकर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था।

सन् १९२७ में शिवरात्रिके दिन काशीमें दशाश्वमेध घाटपर उन्होंने 'ॐ नमो नारायण, ॐ नमः शिवाय, ॐ रामायनमः और नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रोंकी दीक्षा दी। ३० दिसम्बर, १९२८ को कलकत्ता काँग्रेस अधिवेशनके अवसरपर भागीरथी तटपर प्रातःकाल दीक्षा देनेकी महाराजने घोषणा की। प्रातःकाल आठ बजेसे उन्होंने दीक्षा प्रारम्भकर दी थी। कुछ विरोधियोंने उन्हें घेर लिया। उनपर कीचड़ उछाला था किन्तु इसका कोई असर महाराजपर नहीं पड़ा। अपना काम करते रहे। ६ जनवरी, १९२९ को पुन कलकत्तामें मन्त्र दीक्षा दी। उस दिन दीक्षा स्थानपर पुलिस और स्वयंसेवकोंका पहरा था। जब महाराजने स्नानार्थ नदीमें प्रवेश किया, एक गुण्डा छुरा लेकर उनपर पड़ा, गुण्डा पकड़ लिया गया, वे प्रहारसे बच गये। उस दिन कुछ अँग्रेजोंको भी दीक्षा दी थी—दृश्यका अवलोकन उत्सुकता पूर्वकर रहे थे। देशके विभिन्न स्थानोंमें यह कार्य सम्पन्न हुआ था। इस मन्त्र दीक्षाका परिणाम बहुत अच्छा निकला, इससे सनातनधर्मी सहनशील होते गये और हरिजन समझने लगे कि वे भी इस विशाल हिन्दू जातिके एक अङ्ग हैं। मन्त्र दीक्षाके साथ स्वरचित प्रकाशित प्रार्थना उन्हें वितरित करते थे। (प्रार्थनाका अंश—महाराजके कविताओंके साथ एकत्र है।) उन्हें यह भी सुनाते थे :—

दूध पियो कसरत करो नित्य जपो हरिनाम।
हिम्मत से कारज करो, पूरेंगे सब काम॥

महाराजको इस कार्यमें जो सफलता मिली थी, उसमे उन्हें अपार हर्ष हुआ था, जिसका उद्गार उन्होंने इन शब्दोंमें किया :—

एण्टोनीने महाराजकी सब माँगे स्वीकारकर लिया और अदालतोमें उर्दूके साथ नागरी लिपिके भी प्रचलनकी आज्ञा जारीकर दी गयी। इस सफलताके समाचारसे मुसलमानोंमें बड़ी खलबली मच गयी—अनेक अड़ङ्गे उठाये गये किन्तु एण्टोनीसाहबका कड़ा रुख देखकर सब शान्त हो गये।

उपर्युक्त प्रार्थना पत्र तैयार करनेमें महाराजने पक्ष-समर्थनमें कहाँ-कहाँसे प्रमाण इकट्ठितकर निर्भीकतासे ओजस्वी भाषामें समर्थन किया था, यह जानना हिन्दीके इतिहास लेखकोंके लिए उपयोगी हो सकता है। हिन्दी साहित्यकी उन्नतिका प्रयास महाराजने उस समय किया था, जब हिन्दी जाननेवाले बहुत थोड़े ही थे। हिन्दी उन्नतिका सारा श्रेय महाराजको है, उन्होंने विश्वविद्यालयमें हिन्दीका प्रचलनकर उसे दृढ़ बना दिया है।

सन् १९१० में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन काशीमें हुआ था। सर्व सम्मतिसे महाराज सभापति चुने गये थे। सन् १९१९ में सम्मेलनका अधिवेशन बम्बईमें हुआ था, उसके भी सभापति महाराज हुए थे। २१ जनवरी सन् १९४२ को विश्वविद्यालयके रजत जयन्ती समारोहमें महात्मा गाँधीने हिन्दीकी उपेक्षापर असन्तोष व्यक्त किया था, जिसका उत्तर महाराजने इस प्रकार दिया था :—

"मेरे भाई गाँधीजीने आपसे कहा है कि अपनी भाषा द्वारा शिक्षा न मिलनेसे देशकी कितनी हानि हुई है। कितने साल हमको विदेशी भाषाके माध्यम द्वारा लिखा पानेमें बिताने पड़ते हैं, वह हम सबको मालूम है। हिन्दीके द्वारा ऊँचीसे ऊँची पढ़ाईका प्रबन्ध करना इस विश्वविद्यालयका एक उद्देश्य रहा है। सेठ घनश्यामदास बिरलाने पचास हजार हिन्दीमें पुस्तकें तैयार करनेके लिए विश्वविद्यालयको दिया है और हमने कुछ पुस्तकें तैयार भी की हैं। हममेंसे लगभग सभी यह मानते हैं कि मातृभाषा द्वारा पढ़ाई हो, पर हमपर अँग्रेजी भाषाका ऐसा जादू चढ़ा है कि हमको अपनी भाषाको उसके स्थानपर बैठानेमें कुछ समय लगेगा। आजके कन्वोकेशनका यह उद्देश्य है कि भविष्यमें हिन्दुस्तानकी उन्नति हिन्दीको अपनानेसे ही हो सकती है।

मैं गाँधीजीको विश्वास दिलाता हूँ कि जैसे-जैसे हिन्दीमें पुस्तकें तैयार होती जावेंगी, हम हिन्दीको अपनाते जायेंगे।'

हिन्दी, पत्रपर प्रसन्नता

महाराज जालियाँबाग ट्रस्टके अध्यक्ष थे। पण्डित जवाहरलाल भी ट्रस्टी थे। दोनोंके हस्ताक्षरसे बैंकसे रुपया निकाला जाता था! मैंने एक चेक पण्डित मोतीलाल नेहरूके हस्ताक्षरके लिए भेज दिया था। उन्होंने पहुँचका पत्र तथा वहाँके अन्य कागजातके विषयमें अपने हाथसे लिखकर उत्तर भेजा था। वह पत्र मेरी अनुपस्थितिमें महाराजने स्वयं प्राप्त किया था और मुझे बतलाया वह पत्र जवहारलालका है, वह इतना सुन्दर पत्र हिन्दीमें लिख सकते हैं, यह मैं नहीं जानता था। इसी भ्रमसे आजतक उन्हें अँग्रेजीमें ही पत्र भेजता था, आगे ध्यान रखना—हिन्दीमें ही उन्हें अब पत्र भेजना होगा।

नेहरूजीका पत्र इस प्रकार है :—

आनन्द—भवन
इलाहाबाद
१०-४-४०

हैं कि उन्हें पीनेको पानी न मिले (श्रोता—नहीं-नहीं) । क्या आप चाहते हैं कि जिन सड़कोंपर सबलोग चलते हैं, उनपर उन्हें न चलने दिया जाय ? (श्रोता—कभी नहीं) क्या आप चाहते हैं कि जिन स्कूलोंमें ईसाई-मुसलमानके लड़के पढ़ते हैं, उनमें वे न पढ़ने दिये जायँ ? (श्रोता—कभी नहीं) मेरी यही इच्छा है कि ऐसी जगहोंमें जहाँ रोक हो, वह मिटे । हमें इन अछूतोंको जल देना है, रहने-को स्थान देना है और उन्हें शिक्षा देनी है । मैं तो चाहता हूँ कि इनके चार करोड़ घरोंमें मूर्तियाँ रक्खी हों और भगवान्‌का भजन हो, तभी मङ्गल होगा ।''

''गाँधीजीने जो बारह महीनेसे कार्य उठाया था, वह इस विश्वनाथजीकी पुरीमें समाप्त हो जायगा । आपकी तपस्या और परिश्रमके लिए धन्यवाद है । भगवान् विश्वनाथ आपको दीर्घ-जीवी करें ।''

हिन्दी सेवा और नागरीलिपि आन्दोलन

महाराजके जीवनके प्रारम्भिक कालमें हिन्दीके कई प्रतिष्ठित कवि और लेखक वर्तमान थे । राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द और भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी कीर्तिसे हिन्दीकी कीर्ति प्रकाशित थी । कानपुरके पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, प्रयागके बालकृष्ण भट्ट, पण्डित रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित देवकीनन्दन तिवारी और बाबू बालमुकुन्द गुप्त (कलकत्ता) हिन्दी सेवामें संलग्न थे ।

महाराजको कविता करनेकी प्रवृत्ति किशोरावस्थासे थी । बड़े होनेपर मातृभाषाकी सेवाका भाव विशेष रूपसे जाग्रत हुआ । सन् १८८४ में प्रयागमें 'हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा'का जन्म हुआ, इसका उद्‌देश्य अदालतोंमें नागरी लिपिका प्रवेश कराना था । महाराजने इसमें बहुत परिश्रमसे काम किया । पण्डित बालकृष्ण भट्टके 'हिन्दी प्रदीप' में महाराजका नागरीके सम्बन्धमें अनेक लेख प्रकाशित हुआ और सभाओंमें महाराजने भाषण भी दिया तथा उन्होंने मित्रोंको इस आन्दोलनमें प्रवृत्त होनेके लिए उत्साहित किया । महाराजका कहना था कि अदालतोंमें देवनागरी लिपि प्रचलनके सरकार द्वारा स्वीकृत करानेके लिए उन्होंने तीन वर्षोंतक निरन्तर बहुत परिश्रम करके प्रार्थना पत्र तैयार किया था और तैयार होनेपर उनकी अन्तरात्मा भीतरसे कह उठी 'यह अवश्य सफल होगा ।'

गवर्नर सर एण्टोनी मेकडानलने अकालके समयमें प्रजाकी बड़ी सहायता की थी । उनका गुण-गान करनेके लिए महाराजने प्रान्तकी ओरसे उन्हें एक शानदार पार्टी दी थी । अँग्रेजोंका अनुमान था कि एक लाख रुपये उसमें व्यय हुए होंगे पर कुल खर्च ४०००) हुआ था । महाराजने बतलाया था कि वह पार्टी नागरी लिपिके लिए सर एण्टोनीकी सहानुभूति प्राप्त करनेकी आन्तरिक इच्छासे मैंने दी थी । पार्टीकी सफलताका अच्छा प्रभाव गवर्नरपर पड़ा । इसके बाद महाराजने जब देवनागरीके लिए उनसे मुलाकात की तब उन्होंने कहा—ठहरकर आइये ।

कुछ रुककर महाराज २ मार्च १८९८ ई० को अयोध्या नरेश प्रतापनारायण सिंह, माण्डाके राजा रामप्रसाद सिंह तथा दो अन्य सज्जनोंके साथ प्रयागमें गवर्नरसे मिलने गये । नागरी लिपिके सम्बन्धमें अँग्रेजीमें लिखा ''कोर्ट कैरेक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज'' शीर्षक प्रार्थना पत्र लेकर जब गवर्नरकी कोठीपर पहुँचे तो राजाओंने यह प्रश्न उपस्थित किया कि आगे कौन चलेगा । यह झगड़ा उनका खानदानी था अन्तमें सबने निर्णय किया कि महाराज आगे चलें, वे ब्राह्मण हैं, सर्व श्रेष्ठ हैं । इस प्रकार महाराजने सर एण्टोनीके समक्ष अपना प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया । सर

'जिस भाषणको जनताने बड़े प्रेम, धैर्य और उत्साहसे सुना वह एक उच्च कुलीन ब्राह्मण पण्डित मदनमोहन मालवीयका था। जिनके गौर वर्ण और मनोहर आकृतिने प्रत्येक व्यक्तिकी आँखोंको अपनी ओर आकर्षितकर दिया था। अचानक सभापतिके बराबरवाली कुर्सीपर कूदकर उन्होंने ऐसा सुन्दर जोरदार और धारा-प्रवाह भाषण दिया कि सब श्रोता दङ्ग रह गये।'

"तेजस्विनां हि न वयःसमीक्षते' तेजस्वियोंकी अवस्थाकी समीक्षा नहीं होती।

सन् १८८७ : मद्रास काँग्रेसके महाधिवेशनमें महाराज उसमें उत्तर प्रदेशसे ४५ प्रतिनिधि लेकर पहुँचे थे। उनका प्रभावशाली भाषण सुनकर राजा सर टी० माधवराव, दीवान बहादुर आर० रघुनाथ राव, श्री माटंन जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियोंने बहुत प्रशंसा-शाबासी दी और ह्यूमसाहबने अपनी रिपोर्टमें लिखा :—

'तब पण्डित मदनमोहन मालवीय खड़े हुए, जो इस विषयके युवा और उत्साही कार्यकर्त्ता थे। उनके व्याख्यानोंसे ही हम बहुत अधिक मिलनेको बाध्य हुए हैं। यद्यपि यह अन्तमें आकर अधिक जोशीला हो गया था, पर उसमें ऐसी सच्ची बातें हैं, जिनपर सावधानीसे विचार करना ही चाहिए।'

महाराजके भाषणका सार इस प्रकार है :—

'सज्जनो ! आप देखते हैं कि पार्लमेण्ट हमारे आय-व्ययपर तथा देशके निचोड़े हुए आठ करोड़ रुपयेके व्ययपर न तो ध्यान देगी, न दे सकती है और यदि आय-व्ययके विषयमें यह दशा है तो हमारे अन्य मामलोंकी सुनवाई कब होगी ? इसलिए हम पार्लमेण्टसे अनुरोध करते हैं कि वह हमको अपना प्रबन्ध स्वयं करनेकी आज्ञा दे।"

"२६ दिसम्बर, १८८८ में महाराजके प्रयाससे काँग्रेसका अधिवेशन प्रयागमें हुआ था।"

२६ दिसम्बर, १८८९ के बम्बई काँग्रेस अधिवेशनमें महाराजने कहा :—

"सन् १८५७ में सेनामें दो लाख चौवन हजार आदमी थे और वार्षिक सैनिक व्यय साढ़े ग्यारह करोड़ था और आज भी सेनामें पहलेकी अपेक्षा चालीस हजार जवान कम हो गये और वार्षिक व्यय हो गया इक्कीस करोड़ पचास लाख। आपको मालूम है कि इसकी पूर्ति किस प्रकार की जाती है ? इसकी पूर्ति जनताके लिए पिट्रोल और नमकको अधिक महँगा करके, दुर्भिक्ष और अकालके समय लोगोंको भूखों मारकर की जाती है।"

२६ दिसम्बर, १८९० कलकत्ता काँग्रेसके छठें महाधिवेशन में :—

"ये कष्टके मारे हुए लोग अपनेको, अपने स्त्री-बच्चोंको भयङ्कर जाड़ेकी रात्रिमें घासोंसे ढकते हैं और जब अधिक जाड़ेके कारण नींद नहीं आती, तब ये घासको थोड़ा जलाकर रात काटते हैं। प्रायः सरकारी कर्मचारियोंके जाड़ेके दौरेके समय उनके चौपायोंके चारेके लिए वह भी छीन लिया जाता है।"

ऐसी अवस्थामें वायसरायकी परिषद्के सदस्योंने यह कहा है कि बाहर आने प्रतिवर्षका अधिक भार उनके कष्टोंमें तनिक भी वृद्धि नहीं करेगा।

श्री शिवधनी सिंहजी,

आपका भेजा हुआ चेक मिला । इसे मैं लाला मुल्कराजको भेज रहा हूँ । कुछ दिन हुए लाला मुल्कराजने मुझे लिखा था कि उन्होंने कुछ जालियाँवालाबागके सम्बन्धमें कागज पूज्य मालवीयजीको भेजे थे । वह मुझे अभी नहीं मिले । कृपाकर उसके बारेमें दरियाफ्तकर लीजिये । मैं पूज्य मालवीयजीको भी इसके बारेमें लिख रहा हूँ उनको मैं तकलीफ नहीं देना चाहता लेकिन मुझे फिक्र है कि वह कागज खो न जावे ।

आपका

ह० जवाहरलाल नेहरू

प्रथम बार केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल बननेपर महाराजने पण्डित जवाहरलालजीको प्रधान मन्त्रीको हिन्दीमें तार भेजा था :—

'अपने देशमें अपना राज्य'

नेहरूजी जब मिलते थे—महाराज उन्हें बाहों पकड़कर अपने सीनेमें लगाकर स्नेह प्रदर्शित करते थे ।

अँग्रेजोमें कटाक्ष

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके उपाधिवितरणोत्सवपर लाला लाजपतरायने अपने भाषणमें विश्वविद्यालयकी गरिमाका विशद वर्णन करते हुए महाराजके अँग्रेजी प्रयोगपर गहरा कटाक्ष किया था :—

"मुझे यहाँ देखकर अत्यन्त दुःख हो रहा है कि काशी हिन्दूविश्वविद्यालके तपस्वी ब्राह्मण कुलपति एक भारतीय नरेशको उपाधि प्रदान करते समय अँग्रेजी भाषाका प्रयोग करता है ।" लालाजीके भाषणपर धन्यवाद प्रकाश करते हुए महाराजने कटाक्षका उत्तर दिया था :—

"यहाँ प्रत्येक प्रान्तके छात्र तथा इतर जन उपस्थित हैं, जो हिन्दी बिल्कुल नहीं समझते, उनकी सुविधाका ध्यान रखकर विवश होकर अँग्रेजी भाषाका प्रयोग करना पड़ता है । यहाँ तो निरन्तर गङ्गाकी धारा प्रवाहित होती रहती है किन्तु विशेष परिस्थितिमें यमुनाकी धाराका आश्रय लेनेमें मेरे मित्र लाला लाजपत रायको नाराज न होना चाहिए ।"

भारतीय काँग्रेस : धारा सभा

महाराजने सन् १८८५ में अध्यापक पदसे त्याग पत्र देकर काँग्रेसके काममें अपना पूरा समय लगाने लगे थे । मार्च, १८८५ में श्री ह्यूमने इण्डियन नेशनल यूर्क यूनियन नामक एक संस्था खोली, उसका प्रथम अधिवेशन २८ दिसम्बर, १८८५ को बम्बईमें हुआ, वही संस्था काँग्रेसके नामसे प्रसिद्ध हुई । काँग्रेसका दूसरा अधिवेशन कलकत्तामें दादा भाई नौरोजीके सभापतित्वमें २२ दिसम्बर, १८८६ में हुआ । काँग्रेसके उस अधिवेशनमें महाराज भी सम्मिलित हुए थे । महाराजने पहले पहल जो भाषण दिया, उसकी, भूरि-भूरि प्रशंसा हुई । स्वयं महाराजका कहना था कि उस अधिवेशनमें जैसा भाषण दिया था, वैसा फिर कभी भाषण नहीं किया ।

उस दिनके व्याख्यानके बारेमें श्री ह्यूमने अपनी सम्मति प्रकट की :—

बड़े लाटकी परिषद्के सदस्योंकी नियुक्ति सीधे भारतीयों द्वारा हो। हमारा कहना है सार्वजनिक नौकरियोंके ऊँचे-ऊँचे पदोंपर यूरोपियनोंकी जगह भारतीयोंकी नियुक्ति करनेसे शासन अधिक अच्छा होगा और व्ययमें भारी कमी सम्भव हो सकेगी।'

२७ दिसम्बर, १९०० : लाहौर काँग्रेस में :—

'इङ्गलैण्ड और अन्य विदेशी कारखानोंके सस्ते मालने भारतीय उद्योगों-धन्धोंको समूल नष्टकर दिया है।'

२६ जनवरी, १९०४ : बम्बई अधिवेशन में :—

'सरकार हमारी योग्यता और कार्यकी कोई कीमत न कर एक दलित जातिकी भाँति हमारे साथ व्यवहार करके और जाति-भेदकी हमारी योग्यताके मार्गमें बाधक बनाकर हमारी भावनाओं और आशाओंको कुचलती जा रही है।

२७ दिसम्बर, १९०५ : काशी काँग्रेस में (श्री गोखलेकी अध्यक्षतामें)

'हमें स्वदेशीको बहिष्कारके साथ नहीं मिलाना चाहिए। बङ्ग-भङ्ग तो अभी थोड़े ही समयसे हुआ है। मेरा स्वयं अनुभव है कि स्वदेशी आन्दोलनको तीस वर्ष हो गये, जब मैं स्कूलमें था, तभी इसकी शिक्षा मुझे दी गयी थी और मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता और गर्व है कि इससे मुझे बहुत लाभ हुआ है, इसको मैं कालेजसे ही ग्रहण किये हुए हूँ।'

इस प्रकार स्वदेशी वस्त्र बहिष्कारमें महाराजका प्रमुख हाथ तथा स्वराज्यके लिए उद्घोष था। सन् १९०८ में महाराजकी अध्यक्षतामें लखनऊमें प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ। सन् १९०९ में काँग्रेसका २४ वाँ अधिवेशन लाहौरमें हुआ। महाराजका भाषण जोशीला था। बङ्ग-भङ्गके कारण बड़ी उत्तेजना फैल रही थी।

सन् १९१४ में काँग्रेसकी बैठक मद्रासमें हुई। श्रीमती एनी बेसेण्टके होमरूल लीग आन्दोलनमें महाराजने अपना सहयोग दिया। उन्होंने जनताको प्रबुद्ध और प्रशस्त किया।

२ अगस्त, १९१८ को प्रयागकी सार्वजनिक सभामें महाराजने कहा :—

'हमें आन्दोलन, निरन्तर सार्थक आन्दोलन करना चाहिए। यदि हम भयके भूतसे न डरें, जो कायरताके फन्देमें फँसाकर हमें गुलाम बनाये रखा है, तो सफलता दूर नहीं। हमें पुरुषोंकी भाँति पग बढ़ाना चाहिए।'

८ अक्टूबर, १९१७ को प्रयागमें होलरूम सभामें महाराजने कहा :—

'यह एकदम अस्वाभाविक बात है कि एक देश दूसरे देशपर सदा शासन ही करता रहे।'

२६ दिसम्बर, १९१८ को दिल्ली काँग्रेसमें महाराजने कहा :—

'राज्य-व्यवस्था व्यर्थ ही खर्चीला है। फौजी और मुल्की नौकरियोंमें अँग्रेजोंको बहुत बड़े-बड़े वेतन दिये गये और देशका वह सब रुपया नष्ट हो रहा है, जो उसके बच्चोंको मिल सकता था।'

सज्जनो ! क्या आप सोच सकते हैं कि प्रजाका तनिक भी बस हो तो इस प्रकारके सदस्य नियुक्त हो सकेंगे ?

२८ दिसम्बर, १८९१ : नागपुर काँग्रेस महाधिवेशन में :—

'सरकारने देशकी गरीबी मिटानेके लिए क्या सुधार किया ? हाँ, कभी-कभी वह सैर करने और रिपोर्ट लिखनेके लिए कमीशन नियुक्तकर दिया करती है पर उनकी लम्बी रिपोर्ट किस काम आती है ? सेवाके सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए शिमला आर्मीज कमीशन बैठा, पब्लिक सर्विस कमीशन बैठा, फाइनेन्स कमेटी बैठी। फल क्या हुआ ?—हाँ, योग्यताके साथ अच्छी लिखी हुई और उत्तम छपी जिल्द बँधी हुई रिपोर्ट हमें अवश्य मिल गयी।'

२८ दिसम्बर, १८९२ : प्रयाग अधिवेशन में :—

'यह बात एकदम अन्याय पूर्ण है कि इस देशके युवक अपने देशमें नौकरी करनेके लिए परीक्षा पास करने दस हजार मील देशसे बाहर भेजे जायँ।'

२७ दिसम्बर, १८८३ लाहौर काँग्रेस : 'अन्याय, दुःख और दर्द इन अँग्रेजोंके शासनमें बढ़ रहा है। यदि उनको ईश्वरमें विश्वास हो कि इस देशके दायित्वका हिसाब उन्हें ईश्वरके सामने देना होगा तो उनको जीवनमें एक बार इस देशमें अवश्य आना चाहिए कि लोग कैसा कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। गदरके पहले यह देश कैसा था ? तबके जुलाहे कहाँ हैं ? वे करीगर कहाँ हैं ? और वे देशी बनी वस्तुएँ कहाँ हैं, जो हर साल अधिकाधिक परिणाममें इङ्गलैण्ड और विदेशोंको जाती थीं। यहाँ बैठे हुए ? यहाँ बैठे हुए सभी लोग विलायती वस्त्र पहने हैं और जहाँ कहीं आप जाइये, विलायतकी बनी चीजें और विलायती सामान आपकी ओर घूरते दिखायी पड़ेंगे।

२७ दिसम्बर, १८९५ : पूना काँग्रेसके ११ वें अधिवेशन में :—

अँग्रेज जातिको हमारे हितोंका वैसा ध्यान नहीं है, जैसा वह अपने हितोंमें रखती है। यह एक ध्रुव सत्य है कि वे अपने हितमें इतने तल्लीन हैं कि इस देशकी बातोंपर उचित रीतिसे विचार करनेके अयोग्य हो गये हैं।

२८ दिसम्बर, १८९६ : कलकत्ता काँग्रेस में :—

'भारत सरकारका व्यवहार अधिकाधिक लगान बढ़ानेवाले जमींदारका-सा है, जो अपने आदमियोंके पास उसके परिवार तथा उसीके निर्वाह भरके लिए छोड़ देता है और उसकी इच्छा प्रत्येक समय यही रहती है कि वह रात-दिन अधिकाधिक लगान देनेके लिए परिश्रम करे।'

२७ दिसम्बर, १८९७ : अमरावती काँग्रेस में :—

'मैं अपने कट्टर विरोधीसे पूछता हूँ कि वे अपनी आत्मासे पूछें, हमारा प्रस्ताव उचित और न्यायपूर्ण है कि नहीं ? हमारा कथन क्या है ? हमारा कथन है कि भारतके

महादेव माहात्म्य प्रकाशनकी इच्छा

हिन्दूविश्वविद्यालयमें 'नूतन विश्वनाथ मन्दिर' का शिलान्यास हिमालयके तपोनिधि स्वामी कृष्णाश्रमजी महाराजके करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ था। उन दिनों महाराज अपने बँगलेसे हटकर प्रस्तावित मन्दिरकी भूमिमें कुटिया बनवाकर उसमें एक मासके कल्पवासमें थे। विश्वविद्यालयकी समितियाँ भी वहीं कुटीपर होती थीं।

मन्दिर-शिलान्यासके एक दिन पूर्व मीटिङ्ग समाप्त होनेके बाद साढ़े चार बजे सहसा उनके ध्यानमें आया और करुणार्द्र होकर बोले :—

"महाभारतके अनुशासन पर्वमें वर्णित महादेव स्तुति प्रकाशितकर उसकी प्रति कल वणेनिधिजीके कर-कमलों द्वारा शिलान्यासमें की जाती तो मुझे सन्तोष होता।"

महाराजको प्रेससम्बन्धी कार्यका विस्तृत अनुभव था। वे जानते थे कि दूसरे दिन १ बजे दिन तक पुस्तक रूपमें प्राप्त हो जाना सम्भव नहीं होगा, फिर भी उनके हृदयका उद्गार निकल गया? सब कठिनाइयोंका विचारकर अपनी प्रबल जिज्ञासाको दबाते हुए, दुःख मिश्रित सङ्कोचसे उन्होंने कहा—"रहने दो, यह दुःसाध्य है," मैंने कहा—पर असाध्य तो नहीं है? आपके श्रीमुखसे निकला है, यह अन्यथा कैसे हो सकता है? दीजिये प्रयास किया जाय। उन्होंने कहा—प्रेस पहुँचते-पहुँचते पाँच बज जायगा—प्रेस बन्द मिलेगा, कैसे होगा?

आज्ञा लेकर कार द्वारा ताराप्रेस पहुँचा। कुछ कर्मचारी जा चुके थे कुछ जा रहे थे। उन्हें रोककर प्रेस प्रबन्धक पाठकजीसे महाराजकी प्रबल इच्छा व्यक्त की। वह सुनकर स्तब्ध हो गये और कहा—"आप मजाक तो नहीं कर रहे हैं। वास्तविकता यह है कि यह असम्भव है," मैंने कहा—सब कुछ ठीक है। पर महाराजकी इच्छा भी तो किसी प्रेरणासे ही हुई है, इसको ध्यानमें रखकर आप काम लगा दें। काम लगा—दिन भरके थके कर्मचारियोंके हाथ सरकते न थे। उन्हें खिलाकर २ घण्टे विश्रामके लिए छुट्टी दे दी गई। १० बजे रातसे काम शुरू हुआ।

प्रेस पहुँचनेपर मैंने कार वापसकर दी थी। महाराज समझ गये कि काम शुरू हो गया होगा किन्तु मेरे कष्टका ध्यानकर उन्होंने पण्डित विन्ध्येश्वरीप्रसाद ज्योतिषी अध्यापकको यह कहकर भेजा कि कुछ बहुत आवश्यक काम उपस्थित है, जिसके विषयमें मेरा वहाँ पहुँचना अत्यावश्यक है। मैंने ज्योतिषीजीसे कहा अब तो मैं महादेव माहात्म्यके साथ ही वहाँ पहुँचूँगा। इसपर ज्योतिषी हँसने लगे। कहा महाराज कह रहे थे यह नहीं आयेगा उस दशामें आपको ओढ़नेके लिए अपना शाल और भोजन भेजा है, कारमेंसे ले लीजिये।

पाठकजीकी तत्परतासे किसी प्रकार १ बजे दिनतक ९३ पृष्ठोंमें पुस्तक बनी। पाठकजीने आश्चर्य कहा—पता नहीं कैसे सब हो गया? पीले रेशमी वस्त्रके जिल्दमें पाँच प्रतियाँ लेकर एक गहरेबाज एक्कासे मन्दिर परिसरमें पहुँचा।

उस समय भाषण समाप्त हो चुका था। तपोनिधिजी नीचे शिलान्यास स्थानपर पहुँच चुके थे और महाराज अपने तृषित नेत्रोंसे मञ्चपर किसीकी प्रतीक्षामें दृष्टि लगाये थे। अपार जन-समूहके अन्तिम तथा इस छोरमें मुझे देखकर इशारा किया जनताने वहाँतक पहुँचनेका मार्ग प्रशस्त किया। पाँचों प्रतियाँ महाराजके चरणोंमें रक्खा। मेरी पीठ ठोंकते हुए तपोनिधिजीके पास पहुँचकर उन्होंने

१९३१ कराची काँग्रेस में--

'हमारे नौजवानोंको सबसे बड़ी अगर कोई बात चुभती है तो वह है हमारे देशमें विदेशी राज्य। नौजवान एक क्षणके लिए भी यह बरदास्त नहीं कर सकते कि यहाँ विदेशी राज्य हो। वे इसी उधेड़बुनमें रहते हैं कि किसी प्रकार हम अपने देशको स्वतन्त्र करें।'

'जो मुल्कमें स्वतन्त्रता कायम करनेके लिए फाँसीपर चढ़ जानेको तैयार है, मैं ऐसे नौजवानोंकी तारीफ करता हूँ।' 'सबका यह सङ्कल्प होना चाहिए कि हम जल्दसे जल्द उस कामको पूरा करें, जिस कामके लिए भगत सिंहने अपने जीवनका बलिदान किया है। उनकी सबसे प्रबल इच्छा यह थी कि जल्दीसे जल्दी विदेशी राज्य बदल दें।'

सन् १९३२ : कलकत्ता काँग्रेस में :--

'सरकारकी वर्तमान नीतिका नैतिक समर्थन प्राप्त नहीं है और राजनीतिक दृष्टिसे भी वह बुद्धि सङ्गत नहीं है।'

'भारत और इङ्गलैण्डका सम्बन्ध विषाक्त आधापर स्थित है।' अँग्रेज जाति और अँग्रेजी पार्लमेण्टने यह सोच लिया है कि उन्हें भारतपर शासन करनेका नैतिक अधिकार है, जिसका अर्थ अपने राष्ट्रकी उन्नतिके लिए भारतको लूटना है।'

२८ दिसम्बर, १९३६ को फैलपुर काँग्रेसके इक्यावनवें अधिवेशन में :---

'हम अँग्रेजी राज्य सहन नहीं कर सकते। हम अपना शासन अपने आप कर सकते हैं। शासन करनेकी हमारी शक्ति क्षीण नहीं हो गयी है, जो हमारे पूर्वजोंमें थी। संसारके सभी देशोंने यहाँतक कि मैं भी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है किन्तु क्या कोई भी भारतीय ऐसा है, जिसका हृदय भारत वर्षकी दुर्दशा देखकर बार-बार न रोता हो। सामर्थ्य और बुद्धि रखते हुए भी हम लोग अँग्रेजोंके गुलाम हैं क्या हमें लज्जा नहीं आती ?'

'हम ब्रिटेनकी मित्रता चाहते हैं। यदि ब्रिटेन हमारी मित्रता चाहता है तो हम उसकी मित्रता नहीं चाहते ?'

'मैं ५० वर्षसे काँग्रेसके साथ था। सम्भव है, मैं अब न जिऊँ और अपने जीमें यह कसक लेकर मरूँ कि भारत अभी भी पराधीन है। फिर भी मैं यह आशा कर सकता हूँ कि मैं इस भारतको स्वतन्त्र देख सकूँगा।'

'आप स्मरण रक्खें कि अँग्रेज जबतक आपसे डरेंगे नहीं तबतक यहाँसे नहीं जायेंगे।'

'अपनी कायरताको दूर भगा दो, बहादुर बनो और प्रतिज्ञा करो कि आजाद होकर ही हम दम लेंगे।'

सन् १८८६ से सन् १९३६ तकके काँग्रेस महाधिवेशनोंका महाराज नियमित उपस्थित और निरन्तर मर्मस्पर्शी भाषणोंसे जन-समूहको ललकारते रहे और तीन बार काँग्रेसके अध्यक्ष पदको उन्होंने सुशोभित किया।

काँग्रेसमें महाराजाका पहला भाषण और फिर मद्रासके भाषणका श्री ह्यूमपर यह प्रभाव पड़ा था कि उन्होंने महाराजको युक्त प्रान्तके ऐसोसियेशनका स्थायी काँग्रेस कमेटीका मन्त्री बना दिया।

वसन् द्वादश वर्षाणि यती मौनी दिगंबरा
विश्वनाथ पुरीमेत्य दर्शनात्पावनं जनान् ।
तरंग गजरन्ध्रेन्दुमिते वैक्रमे शुभे
चैत्र मास्यसिते पक्षे चतुर्थ्यां शनिवासरे
प्राप्यानुज्ञां भगवतः शिलामेतांन्यवेशयत् ।
सर्व दोषहरः शंभुः वरदो भक्त वत्सलः ।
प्रीणातु कर्मणानेन कल्याणं च तनोतुनः ॥
शिवमस्तु, शुभमस्तु, मंगलमस्तु
मालवीयो मदन मोहनः

उपरोक्त श्लोक चैत्र कृष्ण ४ सं० १९८७ को तपोनिधि स्वामी कृष्णाश्रमजी द्वारा शिलान्यास-में प्रस्थापित किये गये ।

भगवान शङ्करका दर्शन : वरदानसे ऋण मुक्ति

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयपर लगभग सत्रह लाखका ऋण हो चुका था । नियमानुसार उससे आगे ऋण नहीं लिया जा सकता था । महाराज इस ऋणकी अदायगी केवल भारत सरकारसे ही करना चाहते थे ।

उन्होंने विस्तृत विवरण प्रस्तुतकर सिद्ध किया था कि इञ्जीनियरिङ्गके क्षेत्रमें यह विश्वविद्या-लय सरकारके भारी और आवश्यक कार्यको पूराकर रहा है । इससे इस ऋणका भुगतान सरकारको करना चाहिए । साथ ही भविष्यके लिए अच्छी रकमसे वार्षिक अनुदान की भी व्यवस्था करनी चाहिए ।

तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षामन्त्री सर गिरिजाशङ्कर वाजपेयीने महाराजको आश्वासन दिया था कि वह इस कार्यमें उनकी सहायता करेंगे और अपनी सरकारपर जोर डालेंगे । मालवीयजी महाराज जब कभी काशीसे बाहर जाते थे पहले बाबा विश्वनाथका दर्शन अवश्य करते थे । ऋण-परिशोधके प्रयासके लिए दिल्ली जाना था । उन्होंने विश्वनाथ मन्दिरमें लगभग डेढ़ घण्टे गर्भ मन्दिरमें बैठकर बड़ी तन्मयतासे 'महादेव माहात्म्य' का पाठ किया था, उस समय उनकी छवि, तपः पुञ्ज शरीर देखने लायक था । नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी । मानो भगवान उनके समक्ष प्रस्तुत हों— मध्याह्न आरतीका समय हो चुका था । पुजारीगण व्यग्र थे । पाठ समाप्तिपर भावावेशमें महाराजके मुखसे निकला :—

"आसन समेट लो—बाबाने मेरी प्रार्थना सुन ली—वरदान मिल गया, विश्वविद्यालय ऋण-मुक्त हो गया ।" निस्सन्देह महाराजको साक्षात् दर्शन हो चुका था—तभी उनके श्रीमुखसे निकला था । ऋण-मुक्त हो गये ।

भोजनोपरान्त दिल्ली जानेके लिए कैण्ट स्टेशन पहुँचनेपर मालूम हुआ कि ट्रेन प्रायः दो घण्टे लेट है । इसलिए विश्रामालयमें वे विश्राम करने लगे । गाड़ी लेट होनेकी सूचनापर गोविन्द मालवीय स्टेशन आये और महाराजसे कहा : —

"बाबूजी, वापस घर चलिये, यह दिल्लीसे तार आया है, सरकारने ऋण-मुक्तिको अस्वीकार-कर दिया है ।" तत्क्षण महाराजने कहा—"तार देनेवालेने भूल की है, इसे फाड़ दो, इस भौतिक सरकारके कहनेसे क्या होता है । जब बाबासे वरदान प्राप्त हो चुका है, तुम घर जाओ ।" महाराज

कहा "मेरी प्रबल इच्छा थी कि इस अवसरपर 'महादेव-माहात्म्य' आपके कर-कमलोंमें समर्पित करूँ और आप ही द्वारा इस शिलान्यासमें रखी जाय। यह इस युवकके कठोर परिश्रमके फलस्वरूप इस रूपमें उपस्थित है अभी यह प्रूफ रूपमें ही है।"

यह व्यक्त करना कठिन है कि महाराजको इससे कितना सुख मिला। उन्होंने आभ्यन्तरिक इच्छा व्यक्त की थी जो सम्भव न समझते हुए भी पूरी हो गयी। उनका सत्य सङ्कल्प जो था।

इसमें तब विश्वनाथ मन्दिरके शिलान्यासमें महाराजके स्वनिर्मित नीचेके श्लोक तपोनिधि स्वामी कृष्णाश्रमजी द्वारा प्रस्तावित किये गये :—

नूतन विश्वनाथ मन्दिर स्थापना विश्वविद्यालय, काशी

प्रसादात् विश्वनाथस्य काश्यां भागीरथे तटे,
विश्वविद्यालयः श्रेष्ठो हिन्दूनां मान वर्धनः।
हिन्दू राज्याधिपतिभिर्धनिकैः धार्मिकैस्तथा।
मिलित्वा स्थापितः सद्भिर्विधा धर्म विवृद्धये॥
यत्र वेदाः सवेदांगाः धर्मशास्त्रं च पावनम्।
इतिहासं पुराणं च मीमांसा न्याय विस्तरः॥
सांख्य योगौ च वेदान्त आयुर्वेदः सुखावहः।
गान्धर्वं वेदो मधुरौ धनुर्वेदश्च नूतनः॥
आंग्लं दण्ड विधानश्च दायभामादिसंयुतम्।
पाश्चात्या विविधा विद्यास्तथा लोकहिताः कलाः।
पाठ्यन्ते विधिवत्प्रेम्णा विद्वानानि बहूनि च॥
साहाय्यार्थं च छात्राणां दीयन्ते वृत्तयस्तेथा।
सर्वं प्रान्त समायाता श्छात्राः विद्याभिलाषिणः॥
वसन्ति सुखिनो यत्र पुरा गुरुकुले यथा॥
नित्यं निषेव्यते यत्र व्यायामः शक्तिवर्धनः
व्याख्यानंश्च कथाभिश्च यत्र धर्मोयत्रोपदिश्यते
तस्मिन् विद्यालये स्फीते विद्यार्थिजन संकुले।
स्थाप्यो विद्यालयो दिव्यः लोक मंगल काम्यया,
दर्शनं यत्र संप्राप्य विश्वनाथस्य मानवाः।
श्रुत्वा पुण्यकथा धर्मेश्रद्धांमतिमवाप्नुयुः॥
विश्वविद्यालयाध्यक्षैरित्थंकृत विनिश्चयः।
श्री विश्वनाथ प्रीत्यर्थं श्रद्धया प्रार्थितो यतिः
विद्याव्रत तपो मूर्ति तपोनिधिरितिश्रुत'।
कृष्णाश्रम स्वामिवर्यः सर्वभूत हितेरतः॥
यो वै पुण्ये हिमगिरो देशे गंगोत्तरीयके।
सेविते द्वादशादूलैर्वेद वेदांग पारगैः॥

दुःखके साथ कहना पड़ता है कि जिस कुर्सीपर आप विराजमान हैं वह हिन्दू मेण्टेलिटीका निर्माण किया है। आप शीत-ताप नियन्त्रित पैलेसमें निवास करते हैं। वह महर्षि अपना बँगला रहते हुए एक कच्चे दीवारकी छप्परमें रहते थे। बँगलेके बाहर चबूतरेपर गर्मीके दिनोंमें रात्रिको निर्भय शयन करते थे। उनके जीवनपर्यन्त कभी शैडो या पुलिस परिसरमें नहीं देखी गयी। आप आधे इण्डियन और आधे विदेशी हैं। आप हिन्दू मेण्टेलिटीको क्या समझ सकते हैं। आपको यह नहीं मालूम है कि छात्रावस्थामें छुट्टियोंमें गाँव जा-जाकर चवन्नीतक चन्दा प्राप्त किया है। उस हिन्दू मेण्टेलिटीका निर्माण किया हुआ है, जिसपर आपने अपने सुखके लिए विश्वविद्यालयके सहस्रों रुपयोंका धन लगा दिया है और उसी कुर्सीपर बैठे हैं, जिसे हिन्दू मेण्टेलिटीने निर्माण किया है। आप अपने जीवनमें हिन्दू मेण्टेलिटीको नहीं बदल सकते।" वही प्रोफेसरसाहब दो वर्षके अवकाशपर यहाँसे अच्छे वेतनपर अन्यत्र काम करने गये थे। वहाँसे वापस आनेपर उन्होंने दो वर्षके अवकाशका पूरा वेतन प्राप्त करनेकी प्रार्थना की थी, जिसे डाक्टर हरिनारायणके कुलपतित्वकी प्रबन्धकारिणी समितिने दो बार अस्वीकार कर दिया था। किन्तु डाक्टर इकबालनारायणके कुलपतित्वमें जब वह प्रोफेसर महाशय भी एक सदस्य मनोनीत थे, दो वर्षोंके अवकाशका पूरा वेतन प्राप्त करनेमें सफल हो गये।

यह है संक्षेपमें गुरुजनोंकी मनोवृत्ति, ऐसे वातावरणमें विश्वविद्यालयकी गरिमा कैसे रह सकती है, यह एक विचारणीय प्रश्न है ?

प्रो-वाइस-चान्सलर

राजा ज्वालाप्रसादके बाद विश्वविद्यालयके प्रो-वाइस-चान्सलर पदके लिए मालवीयजी महाराजके समक्ष एक समस्या हो गयी थी। अपने मित्रोंपर दृष्टि दौड़ानेपर उन्हें सात्त्विकता, विद्वत्ता, न्यायप्रियता और त्याग-भावना सबका समन्वय केवल पण्डित इकबालनारायण गुर्टूजीमें देख पड़ा। गुर्टूजी उन दिनों प्रयागमें थे। मालवीयजीने पत्र लिखकर अनुरोध किया था कि इस समय काशी हिन्दूविश्वविद्यालयको आपके मार्ग-दर्शनकी जरूरत है, इसलिए आप कृपाकर प्रो-वाइस-चान्सलरका पद स्वीकार करें।

उन्होंने उत्तर दिया था कि स्वास्थ्यकी दुर्बलताके कारण यह भार वहन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। तब मालवीयजीने पुनः उन्हें पत्र भेजा कि इस पवित्र राष्ट्रीय पुकारकी माँगपर यदि श्रीमती एनी-बेसेण्ट होतीं तो आप मनाकर सकते थे ? आपको यह पद सँभालना ही होगा और अन्ततः गुर्टूजीको प्रो-वाइस-चान्सलरका पदभार ग्रहण करना पड़ा।

मालवीयजी महाराज सङ्कल्प सिद्ध महापुरुषको किसी कार्यमें असफलता कैसे मिलती ?

प्रो-वाइस-चान्सलरने जमानत ली थी

काँग्रेसके प्रायः सभी नेता अहमदनगर तथा अन्य जेलोंमें बन्द थे। महाराज सक्रिय हो गये। उन्होंने देशकी वर्तमान स्थितिपर विचार-विमर्श तथा भावी कार्यक्रमके लिए सर्वदलीय नेताओंकी मीटिङ्ग अपने बँगले (मालवीय भवन) में बुलायी थी, उस मीटिङ्गमें बम्बईसे एक दुबले-पतले पारसी नेता भी आये थे, आते ही उन्होंने महिला छात्रावाससे एक छात्राको बुलवानेका सहयोगी त्रिलोचन पन्तसे अनुरोधकर भीतर मीटिङ्गमें चले गये। यद्यपि मैंने पन्तजीको मना किया कि वह छात्रा यहाँ न बुलायी जाय किन्तु पन्तजीने बुलवा लिया और कहीं चले गये।

छात्राके बँगले आनेपर नेताजीको सूचना दी गयी, वह तुरत मीटिङ्ग छोड़कर ड्राइङ्ग रूममें

उस तारपर रुके नहीं, दिल्ली पहुँचकर ऋण-मुक्तिका पूर्णतः प्रयत्न हुआ। फलतः भारत सरकारको तीन किस्तोंमें सत्रह लाखके ऋणका भुगतान करना पड़ा।

यह महाराजके दिव्य ज्योतिकी झलक थी, जो वाणी द्वारा समय-समयपर उद्भासित होती रहती थी। क्या किसी मानवमें इतना आत्मबल, दृढ़ निश्चय और दूरगमकी झलक मिल सकती है? असम्भव है।

भूमि अवाप्तिके लिए तिल रखनेको जगह नहीं रह जायगी

सन् १९३७ में एक दिन विश्वविद्यालयका प्रातःकालीन चक्कर लगाते समय महाराजने आदेश दिया कि स्थानीय सङ्कटमोचनके पश्चिम भाग और सुन्दरपुरके पूर्वी भागकी भूमि कमच्छा स्थित हिन्दू स्कूलतककी भूमि अवाप्तिके लिए सरकारसे लिखा-पढ़ीके लिए आफिसमें कह देना। तत्कालीन कौंसिलके सेक्रेटरीने महाराज की भी इच्छा जानकर कहा—जितना पासमें है उसका ही पूरा उपयोग नहीं हो रहा है, अधिक लेकर क्या करना है? महाराजको जब सेक्रेटरीसाहबके उत्तरसे अवगत कराया तब उन्होंने कहा—उन्हें क्या मालूम कि आगे क्या होनेवाला है—भविष्यमें यहाँ तिल रखनेकी भी भूमि नहीं रह जायगी।

महाराजकी इच्छा थी कि उस भूमिमें आवश्यक उपयोगी संस्थाओंके निर्माणके साथ अवकाश प्राप्त विद्वानोंके लिए एक उपनगर बसाया जाय, जिनकी विद्वत्ताका लाभ जिज्ञासुओंको मिलता रहे।

महाराज बतलाते थे कि "इसी प्रकार जब विश्वविद्यालयके लिए भूमिकी विस्तृत रूपरेखा देकर सर सुन्दरलालजी द्वारा तत्कालीन सर हार्टकोर्ट बटलरके पास स्वीकृतिके लिए भेजा तो उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया था। सर सुन्दरलाल अपने उत्तरसे बटलरसाहबको सन्तुष्ट नहीं कर सके। तब मुझे लेकर बटलरसाहबसे मुलाकात की और इस भूमिकी स्वीकृति प्राप्त की थी। आज यहाँकी कोई जगह नहीं रह गयी है, जहाँ नया उद्योग आरम्भ किया जा सके—आगे हरि इच्छा।"

हिन्दू मेण्टेलिटी खराब है

विश्वविद्यालयके एक प्रोफेसर अधिकारीकी यह बात सुन रखी थी कि वह बिना पूर्व निर्धारित समयके किसीसे भी मिलना पसन्द नहीं करते। उन्होंने अपने रहनेवाले बँगलेको अपने अधिकारका प्रयोगकर विश्वविद्यालयकी प्रायः ५० सहस्रकी धनराशिसे शीत-ताप नियन्त्रित कराया था, वह आधा इण्डियन और आधा विदेशी हैं आदि—मैंने उन्हें कभी देखा नहीं था।

सन् १९७७ में रविवारके दिन एक मित्रसे मिलकर वापस आ रहा था। उनको देखनेकी इच्छासे उनके बँगले पहुँचा। वैसे ही वह लुङ्गी पहने बाहर निकल आये थे। मैं समझ गया। यहीं होंगे और कहा—"क्षमा कीजियेगा, आपको देखनेकी जिज्ञासासे ही बिना पूर्व निर्धारित समयके अवकाशके दिन चला आया हूँ," सुनकर प्रोफेसरसाहब उबल पड़े :—

"देखिये, हिन्दू मेण्टेलिटी बड़ी खराब है। यह नहीं समझते कि अवकाशका दिन विश्रामके लिए होता है, उसमें घर-बाजार, मित्रोंसे मिलना-जुलना रहता है, इसका विचार वे नहीं करते और असमय मिलते हैं।"

मैंने कहा—इसीलिए मैंने आपसे पहले ही क्षमा माँग ली है, उन्होंने कहा आपके लिए नहीं कहा—मैंने उत्तर दिया कि "आपने हिन्दू मेण्टेलिटीपर चोट किया। उससे मैं अलग नहीं हूँ, मुझे

गये महाराजको प्रणाम करने गये तो उन्हें भी उन्होंने उस घटनाका वर्णन कर दिया। उन्होंने मुझसे कहा कि यह सब क्या हो रहा है। आपलोगोंसे क्या मतलब है, जो करते हैं वहीं कीजिये। मुझे जो करना है, करूँगा ही।

और ऐसी स्थिति बन गयी कि उन्हें यहाँसे जाना पड़ा था। महाराजकी आज्ञाका उलङ्घन या उनके आदेश पालनमें अरुचि कभी भी मुझे बर्दाश्त नहीं हुई।

रावलपिण्डी कान्फ्रेन्सका भाषण

सन् १९१४ को सनातन धर्मके कान्फ्रेन्समें महाराजने व्याख्यान दिया था। सन् १९२४ में पुनः वहाँ जनताको सम्बोधित किया था। उसका उल्लेख करते हुए उन्होंने अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया :—

"दस वर्ष पूर्व सन् १९१४ में आपने रावलपिण्डीमें ही इस सम्मेलनपर मुझे सभापतिका आसन दिया था। आज दस वर्ष बाद पुनः मुझसे आग्रह किया गया कि मैं सम्मेलनका प्रधान बनूँ। इसके लिए मैं हृदयसे आपको धन्यवाद देता हूँ। इस दस वर्षमें सनातन धर्मका कितना काम हुआ है, यह सबको विदित है और वास्तवमें सन्तोषजनक भी है। पञ्जाबमें धर्मसम्बन्धी शिक्षा प्रारम्भ करनेका श्रेय आर्य समाजियोंको है। विद्या विभागमें उन्होंने काफी उन्नति की है। डी० ए० वी० कालेजके अतिरिक्त लगभग ४४ स्कूल इस प्रान्तमें आर्य भाइयों द्वारा संस्थापित हैं। यह कार्य उनलोगोंने कुछ पहले किया। यह सन्तोषकी बात है कि सनातन धर्मियोंने, यद्यपि इससे पीछे हाथ लगाया, नियत समयमें उचित उन्नति की। सन् १९२३ में केवल १२३ सनातन धर्म सभाएँ थीं। महावीर दलका श्री गणेश अभी नहीं हुआ था। पर आज दस वर्ष बाद ४०० सनातन धर्म सभाएँ, ३३५ महावीर दल, ३२ हईस्कूल, ८ मिडिल स्कूल, १ कालेज तथा १४८ कन्या पाठशालाएँ इस प्रान्तमें काम कर रही हैं। हाईस्कूलमें २२००० विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। किसी संस्थाके लिए इतने कम समयमें इतना काम करना सन्तोषकी बात है।

मैं इस सनातन धर्म प्रतिनिधि सभाकी, इसके सभापति राय बहादुर रामशरणदास, मन्त्री गोस्वामी गणेशदत्त तथा अन्य कार्य-कर्त्ताओंको हृदयसे बधाई देता हूँ। साथ ही साथ यह भी कहना चाहता हूँ कि प्रचारका कार्य हो रहा है। १४५ उपदेशक घूम रहे हैं। कई इमारतों और मन्दिरोंका निर्माण हुआ है। महावीर दलोंका कार्य सराहनीय है। उनको बधाई देता हूँ। बड़े-बड़े मेलोंमें जाकर वह कार्य करते हैं। अभी बिहार जाकर महावीर दल सेवामें लगा रहा। परन्तु मैं केवल इतनेसे ही पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं। इस कार्यको दृढ़ और सुव्यस्थित करनेके स्थायी फण्डका होना अनिवार्य है। यह काम जो इस सयय एक नवयुवक तपस्वीके कन्धेपर है, वहाँसे हटकर १०-२० हजार प्रेमियोंके कन्धेपर पड़ना चाहिए। इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। वर्तमान युगमें किसी भी संस्थाके प्रचारमें सफलता प्राप्त करनेके लिए कार्यकर्त्ताओंमें उत्साहका होना आवश्यक है। वे कभी भी हिम्मत न हारें। ईसाई कितने दूर प्रदेशोंसे आकर अपने धर्मका प्रचार करते हैं। करोड़ों रुपये खर्चकर शिक्षाका भार उन्होंने लिया है। अपने धर्मके प्रचारके लिए वे यत्न कर रहे हैं। मुसलमान भाई भी कितना यत्न करते हैं। धन इकट्ठा कर रहे हैं, अपने उपदेशकोंको तैयार करते हैं। बुद्ध धर्मके भी अनुयायी चीन और जापानसे यहाँ आकर प्रचार करते हैं। इससे आपको चेतावनी मिलती है। मकानकी रखवालीके लिए जिस प्रकार चौकीदार सदा चौकन्ना रहता है, उसी प्रकार आपको भी सदा सावधान रहना

आ गये और छात्राको लेकर आलिङ्गन-चुम्बनमें प्रवृत्त हो गये। वह एम० ए० फाइनलकी विख्यात छात्रा थी।

ऋषिके आश्रममें यह आचरण मेरे लिये असह्य हो गया। पन्तजीके आनेपर मैंने सारी बातें बता दीं, उन्होंने भर्त्सना करते हुए कहा—"तुम्हें युगका कुछ होश भी है—संसार कितने तीव्र गतिसे आगे बढ़ रहा है। आजके युगमें इन बातोंका कोई महत्त्व नहीं रह गया है। यह केवल विशुद्ध प्रेमका परिचायक माना जाता है।"

मुझे क्रोध तो था ही पन्तजीकी बातोंने और प्रज्वलित कर दिया। मीटिङ्ग तीसरे पहरके लिए स्थगित की गयी। तब मैंने महाराजसे पूर्व घटनाको अवगत कराते हुए पन्तजीकी टिप्पणी भी सुनायी थी, उनपर डाट पड़ी।

महाराज इस घटनासे दुःखी हुए और वे छात्राको तत्काल विश्वविद्यालय छोड़ देने हेतु आदेशका निश्चय कर चुके थे किन्तु तत्कालीन प्रो-वाइस-चान्सलर प्रिन्सिपल ध्रुवजीके विशेष अनुरोधपर जो छात्राके संरक्षक भी थे, वार्षिक परीक्षातक जो केवल चार मास रह गयी थी, रहनेकी अनुमति दे दी थी।

कुलपतित्व त्यागके बाद महाराजकी स्थिति

आजमगढ़के एक छात्रकी महाराज सहायता करते रहते थे। उसकी फीसकी रकम बाकी चली आ रही थी कि परीक्षा सन्निकट आ गयी महाराज कुलपति पदका त्याग कर चुके थे। छात्र जब अपनी ससस्या लेकर आया तब मैंने बतला दिया कि अब कोई उपाय नहीं है, फिर भी आप महाराजसे मिल लें। अभी वे बाहर आ रहे हैं। उनके आते ही छात्र उनका पैर पकड़कर रोने लगा। महाराज पूछते जाते थे। क्या बात है, वह रोता जा रहा था। तब मैंने बतलाया—आपके यहाँसे सहायता मिलती रहती थी। आप फीस भी माफ कर देते थे। अब वह स्थिति नहीं रह गयी है। यही प्रश्न है। उन्होंने कहा तो वैसे ही फीस मुक्तिके लिए लिख दो?

जैसे पहले लिखा जाता था—लिख दिया—नीचे वी० सी० नहीं लिखा।

प्रो-वाइस-चान्सलर उस आदेशको देखकर नाराज हो गये कि अब महाराजकी क्या स्थिति रह गयी है कि इस तरह लिख रहे हैं? उन्होंने छात्रको वापस कर दिया– रोता हुआ छात्र यहाँकी बात बतलायी तो मैं भी उसपर बिगड़ गया और कहा—निकल जाओ इस बँगलेसे तुम। यहाँ स्नातक कहलाने योग्य नहीं—कि अपने संस्थापकके लिए अपमानजनक बात सुनकर भी यहाँ कदम रखते हो?

मेरे मनमें इस अपमानका बदला लेनेकी भावना जाग उठी और साइन्स कालेजके प्रिन्सिपल डाक्टर जोशीको सब घटना बतलाकर कह दिया कि आप मेरी साइकिलपर चलें और भीतर चले जाइयेगा तथा सब बातें महाराजसे कह दीजियेगा। मेरा नाम मत लीजियेगा।

डाक्टर जोशीसे प्रो-वाइस-चान्सलरसे कम पटती थी—उन्होंने महाराजसे इस रूपमें वर्णन किया मानो उनको झकझोर दिया हो। महाराजकी आज्ञा हुई कि गाड़ी मँगाओ। सुन्दरम्को बुलाओ। कारसे सुन्दरम्के साथ कुछ दूर जानेपर उन्होंने सुन्दरम्जीको प्रो-वाइस-चान्सलरकी बात सुना दी। फिर घर लौट आये। सुन्दरम्ने कहा—ठाकुरसाहब—बाबूजी बहुत गुप्त हो गये हैं। ऐसी बातकर दी है—अन्यमनस्क-सा मैंने कहा—इससे क्या होता है? इतनेमें ही पण्डित राधाकान्त मालवीय बम्बईसे आ

करना। क्षत्रियोंका कर्त्तव्य था कि जहाँ जरूरत पड़े वहाँ जान दें लेकिन मानको न जाने दें। वैश्यका धर्म था कि वेद-वेदाङ्ग पढ़े और व्यापार करता रहे। जब शूद्रोंको वेद पढ़नेका अधिकार न था तो वेद व्यासजीने चारों वेदोंका अर्थ महाभारतमें भर दिया। ताकि सब प्राणी लाभ उठा सकें। स्त्रीयोंके लिए वेद पढ़नेकी प्रथा बहुत पहलेसे बन्द थी पर ब्राह्मणी स्त्रियाँ वेद पढ़ सकती थीं। पुराण शूद्र और स्त्रियोंके लिए थे। सुलभा और जनकके सम्वादका जिक्र महाभारतमें है। व्यासजीने शुकदेवजीको पढ़ाया और ब्रह्मज्ञान समझनेके लिए जनकके पास भेजा। दूसरी तरफ सुलभाको वेदव्यासजी जनकके पास भेजते हैं। सुलभाने राजा जनकके साथ ऐसा विवाद किया कि संस्कृतमें क्या किसी दूसरी भाषामें मैंने ऐसा नहीं पढ़ा और न सुना। वह सम्वाद इसलिए था कि मनुष्यके चोलेमें स्त्रियों-पुरुषोंमें इस विषयमें इस तरह विभिन्नता नहीं। जो ज्योति अपने ही भीतर है वह विधिकी आँखोंसे दिखाई पड़ती है। वह स्त्री पुरुषमें समान है।

वैश्यके लिए हमारे यहाँ लिखा है कि व्यापार करे। एक ब्राह्मणको जब अपनी विद्याका अभिमान हो गया तो उसे कहा गया कि तिलाधारसे काशी जाकर धर्म सीखो। जब उसके पास जाकर ब्राह्मणने दरियाफ्त किया और धर्मका तत्त्व पूछा तो वह जवाब देता है कि जिसको मैं सौदा देता हूँ, कम नहीं देता, जिससे लेता हूँ, ज्यादा नहीं लेता। यह ईमानदारी वैश्यका धर्म है। यही वजह है कि वेद व्यासजीने ब्राह्मणको वैश्यके पास भेजा। उस समय जातिका अभिमान नहीं था। जो ब्राह्मण अच्छा काम करेगा, उसकी इज्जत होगी, जो बुरा काम करेगा, उसका यश न होगा और शूद्रसे भी नीचे गिर जायगा। वह शूद्र, जिसमें ब्राह्मणके गुण आ जायेंगे, वह ब्राह्मणके समान आदर पानेके योग्य हो जायगा मगर ब्राह्मण नहीं हो जायेगा। यहाँ रोटी-बेटीका सवाल नहीं है, मैं असवर्ण विवाहका पक्षपाती नहीं। ऋषि-मुनियोंने सवर्ण विवाहके विषयमें जो कुछ कहा है, सोच समझकर कहा है। यह सवर्ण विवाहका ही फल था कि अर्जुनके घर अभिमन्यु पैदा हुआ। अगर असवर्णका विवाह होता तो पुत्र तो होता किन्तु अभिमन्यु न होता। इस सवर्ण विवाहके बदौलत बड़े-बड़े महात्मा पैदा होते हैं। वेद व्यासजीका कथन है कि जो अच्छा काम करेगा, वह अच्छा, जो बुरा करेगा वह बुरा होगा। यदि ब्राह्मण शराब पीयेगा तो वह पतित हो जायगा। अपने धर्मके अनुकूल काम करेगा, आदर पायेगा। जो बुरा करेगा, पतित हो जायगा।

वेद व्यासजी महाभारतके वनपर्वमें पतिव्रत धर्मके माहात्म्यको लिखते हुए कहते हैं—"कौशिक नामका एक ब्राह्मण तपस्या कर रहा था, ऊपरसे एक पक्षीने बीटकर दिया। ब्राह्मणने आँख उठाके देखा तो वह पक्षी भस्म हो गया। इसके बाद वह गाँवमें भिक्षा लेनेके लिए गया। एक स्त्रीसे जाकर उसने भिक्षा माँगी। वह भिक्षा लेने अन्दर गयी, पर वहाँ पति-सेवामें इतनी तल्लीन हो गयी कि भूल गयी कि बाहर भिक्षाके लिए ब्राह्मण खड़ा है। बाहर जाकर उसने क्षमा माँगी, ब्राह्मण उद्धत स्वरमें बोला 'तुम अपने पतिको बड़ा समझती हो और मेरा अनादर करती हो।' स्त्रीने जवाब दिया कि 'पति मेरे लिए देवता हैं, पर मैं आपका भी अनादर नहीं करती। मैं पक्षी नहीं कि आपकी दृष्टिसे भस्म हो जाऊँ।' मेरा धर्म है कि सबसे पहले पतिकी सेवा करूँ। अगर धर्म सीखना हो तो धर्म व्याधा के पास जाओ।" ब्राह्मण समझ गया कि उसके पास कोई शक्ति है, जो यहाँ बैठे उस पक्षीके भस्म हो जानेकी बात जान गयी। वह मिथिला नगरीमें व्याधके पास गया। व्याधने कहा—मैं जानता हूँ कि अमुक स्त्रीने तुम्हें मेरे पास भेजा है। ब्राह्मणने प्रश्न किया कि तुम चाण्डाल हो, तुम्हें धर्मका ज्ञान

चाहिए। यदि चौकीदार कुछ समयतक सो जाय तो चोरी होनेका डर है, त्योंही यदि सनातनधर्मी १० वर्ष काम करके उत्साहहीन हो जायें तो सब काम बिगड़ जायेगा। इसलिए आप सङ्गठनको और भी दृढ़ करें। मुझे आशा है कि सनातनधर्मी, जिन्होंने इस मन्दीके समयमें भी इस संस्थाको धनसे सींचा है, सदा इसी तरह सींचते रहेंगे।

धर्मकी आवश्यकता

कुछ लोग ख्याल करते हैं कि धर्मकी कोई आवश्यकता नहीं है, जितनी इसकी चर्चा कम हो उतना ही अच्छा है, यह उनकी गलत समझ है। आज तो बहुतसे वैज्ञानिक भी इस बातका समर्थन करते हैं कि धर्मकी शिक्षा मनुष्य जातिके लिए आवश्यक है। हिन्दू जाति सदैव धर्मको ऊँचा स्थान देती आयी है। जितनी इसे धर्मकी आवश्यकता है, उतनी और चीजकी नहीं, जिस बातकी शिक्षा सनातन धर्म पहले देता है, वह है 'ईश्वरका ज्ञान।' वह बतलाता है कि संसारको रचनेवाला, पालन करनेवाला, संहार करनेवाला केवल यही परमात्मा है, जिसका कोई साक्षी नहीं, वह कभी मरता नहीं, वह घट-घटमें व्यापक है। न केवल मनुष्यों ही में, बल्कि पशुओं एवं कीड़ोंमें भी वही परमात्मा है। वही सब जगह व्याप रहा है। वेद व्यासजीने महाभारतमें कहा है कि परमात्मा प्राणी-प्राणीमें व्यापक है। यह हिन्दू धर्मका मूल सिद्धान्त है। इससे धर्म निकलता है। अब इस धर्मका निचोड़ सुन लो। 'जो तुम्हें अपने लिये अच्छा न लगे, वह दूसरोंके लिए मत करो।' जब एक बार यह मान लिया कि ईश्वर घट-घटमें व्यापी है तब सिद्धान्त है कि जो बात अपने लिये चाहते हो; वही दूसरोंके लिए चाहो। जब आप चाहते हैं कि आपकी बीमारीमें कोई आपकी सहायता करे, सुख देवे, तो इसी तरह आप दूसरोंको सुख दो, दवा दो। यही धर्मका सिद्धान्त संसारमें समस्त प्राणियोंके लिए है और यही सबका कल्याणकारी एवं संसारमें शान्ति स्थापित करनेवाला है। जब यह विश्वास हो जायगा कि परमात्मा घट-घट व्यापी है, किसीको तकलीफ नहीं देनी चाहिए, उस समय न तो किसीसे लड़ाई होगी और न झगड़ा। उस समय सुख एवं शान्तिका राज्य होगा। मनुष्यका कल्याण इसीमें है। केवल हिन्दू ही सनातन धर्मकी महिमाको न समझें बल्कि मुसलमान, यहूदी तथा ईसाई आदि अन्य मतावलम्बी भी उसके महत्त्वको समझें।

वर्ण-व्यवस्था

सनातन धर्म सबसे पुराना धर्म है, यह प्राणिमात्रके लिए है, मनुष्य मात्रके लिए है। इसमें और भी बहुत-सी बातें हैं। वर्ण चार हैं, यह वर्ण-व्यवस्था, जिसकी हँसी लोग उड़ाते हैं, बड़े महत्त्व-की चीज है। बहुतसे लोग इसकी महिमाको नहीं समझते। यह वर्णाश्रम धर्म ही है, जिसकी बदौलत ऊँचेसे ऊँचे ब्राह्मण पैदा हुए, उन्होंने अपने लिये यह धर्म समझा कि खेतमें जो दाने बोये हुए हैं, उनको बटोर-चुनकर भोजन करना। यह उन ऋषियोंका आदर्श था। ब्राह्मणोंने अपने लिये तो धर्मका काम लिया—दान देना लेना, विद्या पढ़ना-पढ़ाना तथा यज्ञ करना, कराना। हमारे यहाँ तो लिखा है कि जो दान लेनेमें समर्थ हों वही दान लें दूसरोंके लिए इसकी निन्दा की है। जो तपस्वी हों, उनको दान देनेकी आज्ञा थी। यदि दूसरेको दान दिया जायगा तो फल नहीं मिलेगा। ब्राह्मणका शरीर सुख करनेके लिए नहीं, बल्कि इस जन्ममें कठिन तपस्या करनेके लिए तथा दूसरे जन्ममें सुख भोगनेके लिए है। जबतक ब्राह्मण इसपर कायम रहेंगे, उनकी उन्नति होती रहेगी। वेद व्यासजीने ब्राह्मणोंके सामने यही उपदेश रक्खा कि माँगना नहीं, जो जङ्गलमें मिल जाय वही भोजन

२५ वर्षतक पढ़ो-लिखो, गुरुकुलमें जाओ—नियमसे रहो—कठोर तपस्या करो। गुरुके आशीर्वादके बाद गृहस्थाश्रममें रहो, सन्तानकी उन्नति करो। २५ वर्षतक गृहस्थाश्रममें रहो—सन्तान उत्पन्न करो। ५० वर्ष बाद लड़कोंको काम सौंप दो। लालच मत करो, स्त्रीको सङ्ग ले देश-विदेश घूमो। जब हिम्मत नहीं रहेगी, बुड्ढे हो जाओगे तब सेवा क्या करोगे ? ७५ वर्षके बाद संन्यास धारण करो। देखिये ! यह आश्रम धर्म मनुष्यको कितना अच्छा रास्ता बताता है। यह सनातन धर्म कितनी उदारतासे भरा हुआ है। यह किसीको नुकसान नहीं पहुँचाता। वह कहता है कि जो जीव तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाते, उन्हें मत मारो।

अगर कोई जीव तुमपर वार करता है, चोट पहुँचाता है तो वह आततायी है, उसको मारो, किन्तु निर्दोषी जीवकी हत्या न करो। पिद्दीको मारनेसे क्या बनता है ? लोग कहते हैं कि यज्ञमें पशु-वधका विधान है किन्तु वे यह नहीं समझते कि वह तुम्हें जीव हिंसासे रोकनेके लिए लिखा है। यह वर्णाश्रम धर्मकी महिमा है। आयुर्वेदवाले कहते हैं २५ वर्षके पुरुष और १६ वर्षकी स्त्रीका परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए। इस अवस्थासे पहले जो बालक होगा, वह या तो मर जायेगा या दुर्बल होगा। जो नियमके अनुसार विवाह होते थे तब भीष्म और द्रोण पैदा होते थे और यदि आप उनको पैदा करना चाहते हों तो आश्रम-धर्म पालन करो। बताओ ! दुखिया होकर रहना चाहते हो या वीर होकर ? वैद्योंके पास जाना चाहते हो या सिंह बनकर रहना चाहते हो ? २५ वर्ष ब्रह्मचारी बनो तब अँग्रेजका सामना कर सकोगे, अब जो दशा है, उसे मैं अपनी जिह्वासे नहीं कहना चाहता। ब्रह्मचर्याश्रम सब धर्मोंका मूल है, नींव है। नींव कमजोर हो जायगी, तो क्या करोगे ? सनातन धर्मका उपदेश यही है कि पहले २५ वर्षतक ब्रह्मचारी रहो।

संसारमें सनातन धर्मके समान कोई दूसरा धर्म नहीं, जो कि हमें यह बतलाता है कि सब प्राणिमात्रमें जीव है। यह धर्म सबसे प्रेम करना सिखलाता है, तब यदि मुझे सनातन धर्ममें इतना प्रेम है तो आश्चर्य ही क्या ? भारतके समान अन्य देशोंके विद्वान् भी इस धर्मका आदर करते हैं। बड़े-बड़े उच्चकोटिके विद्वानोंने इस धर्मकी प्रशंसा की है। जर्मन और अमेरिकन इस धर्मकी प्रशंसा करते हैं। आज संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें यह धर्म फैल रहा है। इस धर्मके प्रचारके लिए अफ्रीकामें सनातन धर्म प्रतिनिधि सभाने अपने विद्वानोंको भेजा। इस सनातन धर्मको समझो, इसकी रक्षा करो। इसके प्रचारसे इस लोकमें और परलोकमें लाभ है, इससे इस लोकमें तथा दूसरे लोकमें प्रतिष्ठा और अभ्युदय है। मैं तो इस धर्मपर मोहित हूँ। मैं तो चाहता हूँ कि सब भाई इस धर्मको समझें, इसका प्रचार करें। यह प्रचार कथाओंके द्वारा होना चाहिए। केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यमें ही प्रचार नहीं बल्कि सबमें होना चाहिए। मनु भगवान् कहते हैं कि ब्राह्मण चारों वर्णोंको उपदेश दे। हाथ तो इसके भी दो ही हैं, फिर इतनी महिमा क्यों ? लङ्गोटी तो वह पहने हुए हैं, उसके पल्लेको छूते हैं ? इसलिए ब्राह्मणमें तेज है।

अछूत

आज तो हमें अछूतका वहम लग गया है। किसीने लिख दिया कि सात करोड़ अछूत हैं। सब लोग 'कौवा कान ले गया, कौवा कान ले गया'के अनुसार इसको भी मान बैठे हैं। कोई नहीं सोचता कि वास्तवमें कितने अछूत हैं ? कहाँसे आये ? क्या जितनी निर्धन जातियाँ हैं, सभी अछूत हैं ? शास्त्रोंमें अन्त्यज जातियोंका वर्णन आया है। अन्त्येसामीमें धोबी, मल्लाह, मोची, रङ्गरेज, नट आदिके

कैसे हुआ ? उसने कहा कि मैं जीवोंको मारता नहीं किन्तु मांस बेचता हूँ, यही मेरे कुलका धर्म है। मैं उसको नहीं छोड़ता। भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि जो जिसका धर्म है वह वैसा ही करे। इसके बाद ब्राह्मणको अन्दर कोठरीमें ले गया। वहाँ एक सिंहासनपर उसके बूढ़े माता-पिता बैठे थे—व्याध कहने लगा यह मेरे देवता हैं। मैं इनकी पूजा करता हूँ—इनको प्रसन्न करना मेरा धर्म है। कौशिकने व्याधसे कहा—तुम बड़े भाग्यवान हो, पर तुमने माता-पिताका निरादर किया। तुम वेद पढ़ने घरसे आये तो माता-पिताको नाराज करके, जिससे उनकी आँखें नष्ट हो गयीं। फलतः तुम्हें धर्मका ज्ञान नहीं हुआ। जाओ पहले माता-पिताकी सेवा करो। ब्राह्मणने उस व्याध चाण्डालकी परिक्रमा की और कहा तुम इस समय मुझे ब्राह्मण मालूम पड़ते हो। तुम्हारी योग्यता तो ब्राह्मणकी है। चाण्डालने कहा कि पहले जन्ममें मैं भी ब्राह्मण था—शिकार खेलता था—शिकार खेलते-खेलते ऋषियोंको निशाना बना देता था—उन्होंने श्राप दिया कि व्याधा हो जाओ। जब मैंने विनीत प्रार्थनाकी तो प्राण देनेसे पहले मुझसे उन्होंने यह कहा कि होगे तो तुम व्याध ही, पर तुम्हें पहले जन्मका ज्ञान रहेगा। इससे तुम्हें सहायता मिलेगी। तब वह ब्राह्मण उस व्याधके आदेशानुसार घर गया। तात्पर्य यह है कि हमें अपनी जातिका अभिमान नहीं करना चाहिए और न दूसरी जातिका निरादर करना चाहिए। जो ब्राह्मण कुछ पढ़ा-लिखा हो, उसका आदर करो, जो भ्रष्ट आचरणका है, उसका मोहल्लेवाले क्या, घर ही के लोग आदर नहीं करते। यदि चाण्डाल सदाचारी है तो ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यके बराबर उसका आदर होना चाहिए। सदाचारके कारण वह इस योग्य हो गया कि ब्राह्मण देवता उसके घर जायँ।

पद्मपुराणमें मूक चाण्डालकी कथा है। भगवान् उसके घरके मन्दिरमें वास करते थे। जब एक ब्राह्मणने पूछा तो जवाबमें कहा कि यह माता-पिताका भक्त है, उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं उसके घरमें वास करता हूँ। वेद व्यासजी कह गये हैं कि चाण्डाल यदि नेक चलन हो तो वह भी सम्मानका पात्र है। किन्तु ब्राह्मण कभी सदाचारसे गिर जाय तो वह आदरके योग्य नहीं। जानना चाहिए कि जैसा कर्म वैसी गति। जो सनातन धर्मको ठीक नहीं समझते हैं, उनको विचारनेकी बात यह है कि लोग कहते हैं जात-पाँत तोड़ो। कई तोड़नेवाले आये और चले गये—वे उसको तोड़ नहीं सके न तोड़ सकते हैं। प्रेमके रास्तोंको निकाल लो—जहाँ कड़ आपन है, अभिमान है उसको निकाल दो। जाति न टूटी है, न टूटेगी।

अगर ब्राह्मण तपस्या करनेवाला हो जाय तो कहिये जातिका मान बढ़ेगा या नहीं ? भक्त मालमें कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि कितने शूद्र तपस्वी बन गये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जो सच्चे हैं, उनका आदर होना चाहिए। अपनी जातिके कार्यको अच्छा करनेसे मान होता है। धर्मके और भी बहुत-से लाभ हैं। अँग्रेज जानते हैं कि लङ्काशायरके जुलाहे जितना सुन्दर कपड़े बनाते हैं और लोग नहीं बनाते। काशीके जुलाहे अब भी कीमखाबका काम जितना उम्दा और नफीस करते हैं और नहीं करते। जातिका अभिमान मत करो किन्तु इसके गुणकी महिमा समझो।

आश्रम धर्म

आश्रम-धर्म ऐसी फिलासफी दुनियाँके पर्देपर और कहीं नहीं मिलेगी। जो मनुष्य नियमसे रहे, किसीका बुरा न करे, वह १०० वर्षतक जियेगा। जो माता-पिता धर्मसे रहें, उनको सन्तानमें तीन कुलतक पुण्य रहता है। तीन पुस्तमें जिसके माता-पिता अच्छे सदाचारवाले हैं, वहाँ १०० वर्षतककी आयु है।

पञ्चाक्षरी विद्या क्या है ?—ॐ नमः शिवाय। कोई इसको पञ्चाक्षर कहता है, कोई षडक्षर। कोई छः अक्षरोंसे जपे अथवा बिना ॐके पाँच अक्षरोंसे जपे-जो जपेगा वह चाहे नीच हो, सदाचार हीन हो तो भी उसका कल्याण होगा। यह मन्त्र सबको फल देता है। यह भगवान् शिवका उपदेश सब प्राणियोंके लिए है। बतलाये, क्यों न इस मन्त्रकी दीक्षा अन्त्यजनोंको दी जाय ? अन्त्यजनोंकी बात ही क्या है, आज तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सब गिर रहे हैं। उनका यज्ञोपवीत समयपर नहीं होता—वे सन्ध्या नहीं करते। प्राचीन कालमें तो स्त्रियाँ भी सन्ध्या करती थीं। जब भगवान् राम अपनी माता कौशल्याके पास आये तो उस वक्त वे सन्ध्या कर रही थीं, ऐसा रामायणमें लिखा है। इस प्रकार पञ्चाक्षर मन्त्रके अतिरिक्त 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' द्वादशाक्षर मन्त्र और 'ॐ नमो नारायणाय' आठ अक्षरी मन्त्र है। इन दोनों मन्त्रोंकी महिमा नृसिंह पुराणमें मिलेगी। शुकदेवजी व्यासजीसे पूछते हैं कि ऐसा मन्त्र बतलाओ जो संसारके हितका हो। उन्होंने आठ अक्षरी मन्त्र 'ॐ नमो नारायणाय'का जप करनेको कहा। यह मूल मन्त्र है। स्त्री, शूद्र इन सबके लिए यह मन्त्र है। बतलाइये, शास्त्रके वचन झूठे हैं या सच्चे ? (जनाता-सच्चे) यदि मैं झूठा हूँ तो विद्वन्मण्डली मुझे बतावे मैं क्षमा माँगूगा। यदि मैं गलतीपर हूँ तो क्षमा करना। अब समयकी दशाको देखो। जबतक मुसलमान नहीं आये थे, तबतक और बात थी। मुसलमानोंने कितनोंको मुसलमान बनाया। ईसाइयोंने कितनोंको ईसाई बनाया। आज तो सात करोड़ मुसलमान मिलते हैं, अधिकतर हिन्दुओंमेंसे ही हैं। आज ईसाई एक व्यक्तिको बपतिस्मा है, ईसाईका नाम देता है तो उसे ईसाई बना लेता है। कलमा पढ़नेसे एक हिन्दूको मुसलमान बना लिया जाता है। भाइयो ! बहनो ! मैं हाथ जोड़कर पूछता हूँ कि क्या हमारे मन्त्रमें शक्ति नहीं कि इससे एक पापी भी पवित्र हो जाय (जनता—है)। हमारे पुराणोंके विषयमें यदि कोई यह कहे कि पुराणोंके वचन सत्य नहीं तो मेरे आत्माको शूल लगेगा। हमारे शास्त्र विस्तारके साथ कहते हैं कि जिसने 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रकी दीक्षा ली, प्रातः तथा सायं जप किया, भगवान्‌को स्तुति की, जिस समय वह मन्त्र उच्चारण करता है, वह पापसे छूट जाता है। 'ॐ नमो नारायणाय'का अर्थ है, सारे जगतके प्राणियोंको रक्षा करनेवाले नारायणको नमस्कार करता हूँ। जब यह भाव पैदा हो गया तब फिर पाप कहाँ ? अब प्रश्न करते हैं कि शिव और विष्णु दो नाम क्यों हैं ? जब एक भगवान् है तो दूसरा क्यों नहीं ? सुनिये, ईश्वरके तीन नाम हैं (१) ब्रह्मा (उत्पत्ति करनेवाला) (२) विष्णु (रक्षा करनेवाला) (३) शिव (संहार करनेवाला), वही उत्पन्न करता है, पालन करता है और फिर ज्योतिको खींच लेता है। तीनों उसीके रूप हैं—जैसे एक व्यक्तिको उसका लड़का पिता कहता है, स्त्री पति कहती है, इसी प्रकार भगवान् एक है। नाम भिन्न हैं। सब जीवोंमें परमात्मा व्याप्त है, यह ज्ञान देना ही काम है। अब देखना चाहिए कि जो मन्त्र है, उनसे दीक्षा दें, चन्दनके वृक्षोंके समीपवाले अन्य वृक्ष भी चन्दनकी सुगन्धसे भरपूर हो जाते हैं। अच्छा काम करनेसे मनुष्यका वर्ण ऊँचा हो जाता है। बुरा काम करनेसे वर्ण नीचा हो जाता है।

यह एक गप है कि अछूत सात करोड़ हैं। मैं कहता हूँ कि जिन वर्णोंको यज्ञोपवीतका अधिकार है, वे लें—बाकी सब दीक्षा लें। क्या दीक्षामें इतनी शक्ति नहीं कि छुआ-छूतके असरको दूर कर दे ? शास्त्रोंमें कहा है कि मन्दिर तीर्थमें कोई दोष नहीं किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि युवक दल अछूतोंको मन्दिरोंमें ढकेले और दूसरोंकी आत्माओंको दुःख पहुँचावे। हमारा काम शास्त्रके प्रचारका है। मैं

विषयमें लिखा है कि यदि, उनसे छू जाओ तो आचमन कर लो। उसका जो छूतपन है, उसका दोष इससे नष्ट हो जायगा। ऐसे लोगोंको भी हमारे मित्रोंने अछूत कह दिया, यद्यपि आचमन मात्रसे इनकी शुद्धि हो जाती है। धोबी जो कपड़े धोकर लाता है क्या आप उसे नहीं पहनते। ऐसे भी प्राणी हैं, जो जब शौच होनेके लिए जाते हैं तो आकर नहाते हैं। क्या ऐसे लोग अगर किसीसे छू जायँ और आचमनकर लें तो किसीको शिकायतका क्या मौका हो सकता है? वह जो करते हैं, उन्हें करने दो। शास्त्रोंमें चाण्डाल, डोम और रजस्वला स्त्रीके विषयमें है कि उनको छू जानेसे वह स्नान करे। मैं आपको यह दिखला रहा हूँ कि लिखा है अवश्य किन्तु इसके साथ यह भी लिखा है कि तीर्थ, यात्रा, देवालय, सड़क आदिमें तथा नगरमें आग लगनेके अवसरपर छुआछूतका विचार नहीं होता। नगरपर सङ्कट पड़नेपर छुआछूतका विचार नहीं है। जहाँ अलग करना चाहते हो, करो। किन्तु जहाँ यह सम्भव नहीं वहाँ मत करो। तीर्थपर कोई छुआछूत नहीं होती। तीर्थराज प्रयागमें मैं घूमा हूँ, वहाँपर स्नान करके हम भी निकलते हैं और भङ्गी भी। सबको यहाँ समान अधिकार है, किसीको छू जानेका दोष नहीं, इसी प्रकार संग्राममें आग लगनेके समय, बाजारमें, देवताके घरमें छूत नहीं है।

पद्मपुराणमें लिखा है कि मन्दिरमें जो मूर्ति है उसका दर्शन करनेवालेको सब पृथ्वीका फल मिल जाता है। जो हरिका नाम जपता है और मुखपर जिसके हरिका नाम है, जिसने हरिका नाम उच्चारण किया, उसको सब तीर्थोंका फल प्राप्त हो गया। उसको देखकर, उसके दर्शन करके पुण्य प्राप्त होता है। अजामिलका उदारण आपके सामने है। इस पुराणमें लिखा है कि भगवान्‌के सामने जो ऊँचे स्वरमें भजन करता है, नाचता है, वह जगतको पवित्र करता है। हमारे पूर्वजोंने समझ लिया था कि कलियुग आनेवाला है इसलिए सँभलकर उन्होंने मार्ग बना दिये। २४ करोड़मेंसे ३ करोड़ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं, बाकी २१ करोड़ शूद्र हैं। इनमेंसे थोड़ेसे भङ्गी हैं, वे अछूत हैं। बाकी सब मन्दिरमें जाते हैं। इन्हें कौन न्यायसे कह सकता है कि वे अछूत हैं?

शिवपुराणमें लिखा है कि जो बड़ेसे बड़े पतित भी हों, यदि वह एक रुद्राक्ष गलेमें डाल ले तो वह पवित्र हो गया। उसका पाप कट गया। विष्णु पुराणमें लिखा है तुलसी गलेमें डालनेसे भक्त बन जाता है। वल्लभकुलके गोसाईं जो कण्ठी देते हैं, मन्त्र देते हैं, उसको धारण करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है।

मुनियोंने ये मार्ग इसलिए रचे थे कि प्राणिमात्रका कल्याण हो, इसलिए नहीं कि उन्हें न पढ़ो और न व्यवहारमें लाओ।

यहाँ आते हुए रास्तेमें बहुतसे भाई मिले और कहने लगे कि इस अशान्तिसे बहुत दुःख हो रहा है, ऐसा करो कि शान्ति हो जाय। इसलिए इसपर विचारनेकी आवश्यकता है कि किसी तरह काम भी चल जाय और उनका भला भी हो। मुझे स्वयं दुःख हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि शास्त्रीय नियमोंके अनुसार इसका निर्णय हो। यज्ञोपवीत तीन वर्णोंको दिया जाता है, चौथेको नहीं। यह अलग बात है कि कुछ भाई कहते हैं कि चौथेको भी दिया जाता था। इस प्रश्नको जाने दीजिये। शिव-पुराणमें कथा है कि जगन्माता पार्वतीजी भगवान् शिवजीसे पूछती हैं कि कलियुगमें आपके भक्तोंका कल्याण कैसे होगा? इसपर शिवजी महाराज कहते हैं कि जो इस कलियुगमें पञ्चाक्षर मन्त्र ॐ नमः शिवाय जपेगा उसका कल्याण होगा, चाहे वह नीच (डोम-चाण्डाल) हो हो, उसको मोक्ष प्राप्त होगा।

जो आर्य सनातनधर्मी भाई कहते हों कि अछूतोद्धार हो, उन सबसे मेरी विनती है कि शीघ्रता मत करो। देखो—मेरे पिताजीके विचार मेरे जैसे न थे किन्तु मैं उनको आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। जिनसे तुम्हारे विचार न मिलते हों, उनका भी आदर करो। यदि मेरे वचनोंसे किसीको दुःख हो रहा हो तो मैं हाथ जोड़कर क्षमा माँगता हूँ।

एक और बातका बड़ा दुःख है कि रावलपिण्डीमें दो सनातन धर्म सभाएँ हो गयी हैं और दुःख इस बातका है कि लोगोंके हृदयमें कड़ आपन आ गया है। सबसे विनती है कि, जिससे भूल हो गयी है, उसका विचार न करो। भूल सबसे होती है। धर्मके मैदानमें मिलकर काम करो। जो मतभेद हैं, उसको मिटाना है।

इस सम्मेलनमें क्या प्रस्ताव होंगे, वह आपको मालूम होंगे। प्रयत्न करो कि ऐसे प्रस्ताव रक्खे जायँ, जिनपर सब एक मत हों। सनातन धर्मकी शक्ति दुर्बल है। इस गृह-कलहसे और दुर्बल मत करो।

संस्मरणमें

प्रयागमें भारतके
तत्कालीन प्रधान मन्त्री स्वर्गीय पण्डित जवाहर लाल नेहरू
द्वारा दिये गये भाषणके अंश

'मालवीयजीका जन्म-दिवस हमारे देशके लिए एक शुभ दिन है। हमलोगोंके लिए विशेषकर जो प्रयाग नगरके निवासी हैं। आज एक पिछला गुजरा हुआ जमाना मेरी आँखोंके सामने आता है, खासकर वह जमाना जब मैं थोड़ी बहुत पढ़ाई करके इलाहाबाद वापिस आया था। यों तो बहुत बचपनसे, अब तो ठीक याद भी नहीं कि कबसे, मालवीयजीको दूरसे मैं देखता रहा हूँ, वैसे ही जैसे बच्चे देखते हैं बड़ोंको। वह मुझसे प्रेम करते थे और मैं उनका आदर करता था। फिर एक जमाना गुजरा और·····हिन्दुस्तान उठा और हवा बदलने लगी। शायद आपलोगोंको याद हो वह जमाना, जब लोकमान्य तिलकने एक होमरूल लीग शुरू की थी और एक श्रीमती एनी बेसेण्ट ने। हमारी संस्था काँग्रेस भी, जिसके सबसे पुराने और बड़े नेता मालवीयजी थे, कुछ जागने लगी थी·····उस समय उनके साथ मुझे बहुत काम करनेका मौका मिला। लाहौरमें, पञ्जाबमें, अमृतसरमें और कुछ शिमलामें भी, जहाँ उस समय पुरानी इम्पीरियल कौंसिलकी मिटिङ्ग होती थी। मालवीयजीको तो दूरसे बहुत दिनोंसे जानता था। यहाँ पाससे बहुत-कुछ जाननेका मौका मिला। उन्होंने हमेशा बहुत मुहब्बत और प्रेमसे मुझे बातें बतलायीं, समझायीं। कभी-कभी मैंने उनसे बहस करनेकी भी जुर्रत की, उसको भी उन्होंने प्रेमसे समझानेकी कोशिश की। कभी-कभी मैं उनसे पूरी तरहसे सहमत नहीं हो पाता था लेकिन उनका समझानेका तरीका मीठा था। उसका एक जबरदस्त असर होता था, चाहे कोई उनकी किसी बातसे सहमत हो या न हो। उसके बाद असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ और तरह-तरहकी बातें भी। गाँधीजी मैदानमें आये। लेकिन इस सारे जमानेमें भी मालवीयजीका असर महज इलाहाबादपर ही नहीं, सारे भारतकी राजनीतिपर बहुत जबरदस्त रहा।·····काँग्रेस जबसे शुरू हुई, वह हमारी राजनीतिक आन्दोलनकी एक खास निशानी रहे हैं। उसे शुरू करनेमें, बनाने और बढ़ानेमें मालवीयजीका एक बहुत बड़ा हिस्सा रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि समय की हवा देखकर भारतीय राजनीतिमें मालवीयजी अगुआ भी रहे और एक कड़ी भी रहे। जोड़नेको उनलोगोंको,

मन्दिर प्रवेश बिलका विरोधी हूँ। मैं चाहता हूँ कि इसे वापस लिया जाय। गाँधीजीको भी यह बिल प्रिय नहीं है। मैं उन्हें भी यही कहूँगा कि वे इस बिलको वापस लें। वह चाहते हैं कि यदि इस प्रकार ही काम हो जाय तो अच्छा है। वे चाहते हैं कि इस तरह काममें बाधा न हो। मैं आपसे कहता हूँ कि जब आप एक रोगीको कहते हैं कि रोटी न खाओ तो क्या उसे कुछ खानेको दोगे या नहीं? मैं चाहता हूँ कि आप विद्वान् इस प्रश्नपर विचार करें कि क्या करना है। रेल और बाजारमें सब छू जाते हैं। अगर कलको एक नीच मुसलमान हो जाय तो आकर तुम्हारे पास बैठ जाता है, तो एक नीच जो चोटी रखता है ··· राम-नाम जपता है, पूजा करता है, पितृ तर्पण करता है, बतलाओ अगर वह भाई साथ आकर बैठ जाय तो क्या मेरे दिलमें भाव होगा कि वह कभी न आवे--बल्कि मैं तो कहूँगा कि वह भी आये और उसके साथ और भी आयें। क्या आप प्रसन्न होंगे, यदि वह मुसलमान बन जाय। जो करनेकी बात है वह यह है कि जब और स्थानोंपर मन्दिरके बाहर छुआछूत हो जाती है और दोष नहीं लगता तो फिर यहाँ क्यों? मैं यह नहीं कहता हूँ कि भङ्गी और डोम आकर शिवजीका पूजन करें, यद्यपि इसका भी प्रमाण शास्त्रोंमें है। मैं तो यह कहता हूँ कि दूरसे दर्शनकर लेने दो। प्रवेश न करें--जबतक कि उन्हें दीक्षा न हो। अधिकारकी बात तो मैं पहले ही कह चुका हूँ, अब नियमकी बात लो। एक कठघरा लगा दो। गर्भ द्वारके भीतर मैं नहीं चाहता कि कोई जाय। मेरे घरमें भगवान्की मूर्ति है। जब मैं इन कपड़ोंमें जाता हूँ तब स्वयं भी मूर्तिको स्पर्श नहीं करता, केवल दूरसे ही स्तुति-कर लेता हूँ किन्तु जब घरसे नहा-धोकर निकलता हूँ तब मूर्तिको छूता हूँ। स्मरण रक्खो कि यदि इन अछूतोंमेंसे भी कोई ऊँचा भक्त हो जाय तो उसको रोकनेका आपको और मुझे कोई अधिकार नहीं। मैं नहीं चाहता कि कोई अछूत जबरदस्ती मन्दिरमें जाय। मैं किसीका गला दबाना नहीं चाहता। यदि मन्दिरके अधिकारी मान जायँ तब तो अच्छा है, नहीं तो जहाँ और मन्दिर हों वहाँ दर्शन कर लो। विश्वास रक्खो कि जहाँ इतनी उन्नति हो गयी है वहाँ और भी हो जायेगी। सच्चे अछूत कभी यह नहीं चाहेंगे कि मैले वस्त्रों और गन्दी दशामें मूर्तिका स्पर्श करें, वे दर्शन करें। वे तो दर्शन-के भूखे हैं। जबतक वे शुद्ध न होंगे तबतक वे स्वयं न छुवेंगे। इस प्रकार मिलकर कोई नियम बनाओ कि इनको भी दर्शनका मार्ग प्रशस्त हो जाय। एक छोटेसे मकानके आलेमें मूर्ति रख दो, वेदके वचनोंसे उसकी प्रतिष्ठा करो, बस यह मन्दिर है। पूजाकी और रीतियाँ हैं—जैसे अग्निमें आहुति, जलका अर्घ्य, आकाश, आत्मा, गुरु आदि इस प्रकार आठ रीतियोंसे पूजा होती है। मेरे मनको पूजासे प्रेम है, मैं अपने भावोंको आपके सामने रख रहा हूँ।

ईश्वर घट-घटमें व्यापक है, इसका विश्वास दिलाना आपका काम है, आत्मामें, गुरुमें, जलमें, अग्निमें, प्रतिमामें पूजन करो। लोग कहते हैं कि वे मूर्ख हैं, जो मिट्टीकी मूर्तिका पूजन करते हैं, चन्दन चढ़ाते हैं। सुनो! हम तो इसके द्वारा उस भगवान्की पूजा करते हैं। हम कहते हैं भगवान् मैं तुम्हें वस्त्र अर्पण करता हूँ। तुम्हारे शरीरका कोई पता नहीं। जहाँ तुम्हारा शरीर हो वहाँ ही इस वस्त्रको ले लो—यह धूप अर्पण करता हूँ। हे भगवान् आपकी महिमाका देवता भी पार नहीं पावे बतलाओ—वह मिट्टीको कहता है या भगवान्को। यह मूर्ति तो निमित्त मात्र है। क्योंकि इस तरह ध्यान नहीं लगता, इसलिए अपनी भावना बनाता है। प्रत्येक अछूतको अधिकार है कि वह अपने घरमें प्रतिमा रक्खे। मेरी इच्छा है कि प्रतिमाके रूपमें भगवान्को सबके घर पहुँचा दूँ, ताकि वह पूजन करे।

जाते हैं। उसको न समझनेसे हमारी आजादी चली गयी। आज हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि हम उसको समझकर अपने देशकी आर्थिक स्थितिको बढ़ायें और उसे और अच्छा करें। तो यदि आप इन दोनों पहलुओं को देखें, तो हमें दोनोंकी ही आवश्यकता महसूस होगी।

मालवीयजीके सामने दोनों बातें थीं। बनारस विश्वविद्यालयके सामने उन्होंने दोनों लक्ष्य रखे, यही सवाल हम सबके सामने आज भी है। इन दोनों पहियोंपर हिन्दुस्तानकी गाड़ी तेजीसे आगे चली। मेरा विचार है कि कांग्रेसके पुराने नेताओंको, जिनमें बहुत ही बड़ोंमें पूज्य मालवीयजी थे, दुनियाके किसी गजसे भी आप नापें, बहुत बड़ा पायेंगे। वे बहुत बड़े आदमी थे, जिन्होंने हिन्दुस्तानको ऐसे मौकेसे निकाला, वे बहुत बड़े थे लियाकतमें, विचारोंमें, अपने बलिदानकी शक्तिमें। अलावा, इन सब बातोंके इस बातमें भी कि उन्होंने दूरन्देशीसे देखा, उन्होंने बनाया ही बिगाड़ा नहीं। बहुत सारे क्रान्तिकारी लोग बिगाड़नेकी तरफ ज्यादा ध्यान देते हैं। उनके सामने अटकाव आते हैं, जिनको हटाने, बिगाड़नेकी ओर उनका ध्यान कम हो जाता है.....तो इसकी तो मालवीयजी एक खास मिसाल थे, वे बढ़ते थे, बदलनेकी कोशिश करते थे। वे एक महान् क्रान्तिकारी थे, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन उनके सामने हमेशा बनानेकी बात रहती थी, बनानेके सिलसिलेमें चीजें टूट भी जाती थीं और वे हटा भी दी जाती थीं। वे इससे घबराते नहीं थे—किसी चीजके टूटनेमें या झाड़ू देकर साफकर देनेमें लेकिन उनका खास ध्यान हमेशा बनानेकी ओर रहा। खाली वही नहीं कि संस्थाएँ बनायी हों, बहुत सारी बनायी उन्होंने बल्कि उन्होंने भारतके लोगोंको बनाया। वे चाहते थे कि भारतके लोगोंमें हिम्मत पैदा हो, उनका सिर ऊँचा हो, उनमें अपने ऊपर भरोसा हो।

.....और देखें कि कैसा सम्बन्ध रहा पूज्य मालवीयजीका अपने जमानेसे और पुराने जमानेसे, तब आप अन्दाजा लगा सकेंगे कि वे कितने महान् थे, कितने बड़े थे। और मालवीयजी तो आगे भी देखते थे और लोगोंको आगे ले जाते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वे बहुत ही बड़े महापुरुष थे हमारे देश के। सारे देशको उनका गर्व है। लेकिन जो इलाहाबादके रहनेवाले हैं उनको तो खास गर्व होना चाहिए इस बातका कि ऐसा बहुत बड़ा आदमी पैदा हुआ, हमारे इस शहरमें .....पिछले सारे सत्तर बरससे ऊपरके हमारे राजनैतिक इतिहासमें, भारतके इतिहासमें, उनका नाम एक-एक चमकते हुए सितारेकी तरह रोशन है। शुरूसे ही कांग्रेसके और कितने भी और मैदानोंमें उन्होंने रोशन हिस्सा लिया और उसको चमकाया, आगे बढ़ाया।

एक हमारे आजकलके नौजवान हैं, जो एक दूसरी दुनियामें हैं, जिनकी शायद समझमें ही नहीं आता यह पूरी तौरसे कि हमारी आजादीकी लड़ाईमें क्या हुआ, क्या नहीं हुआ।.....अच्छा हो अगर वे लोग कुछ ऐसे महापुरुषोंको जो हमारे बुजुर्ग हुए और जिनके बाद हम आये हैं, कुछ समझनेकी कोशिश करें कि वे क्या थे, क्या-क्या उन्होंने किया अपने जमानेमें, कैसे उन्होंने हिन्दुस्तानको और यहाँकी जनता को, जो एक बड़े गढ़ेमें पड़ गयी थी, उसमेंसे निकला। आप देखेंगे कि जो बहुत बड़े आदमी हमारे यहाँ हुए हैं, उनके सामने यह प्रश्न रहा है कि लोगोंको कैसे उठाना। एक मानीमें लोग उठते हैं। उनके उठनेका एक बड़ा तरीका है शिक्षाका-शिक्षण स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी वगैरह की। वह तो है, लेकिन एक तरहकी शिक्षा और होती है, स्कूल-कालेजके अलावा। जो शिक्षा हमलोगोंने पायी, मेरे जमानेमें लोगोंने पायी। हमने राष्ट्रीय आन्दोलनमें बड़ी जबर्दस्त शिक्षा पायी,

काँग्रेसमें आगे-पीछे गिने जाते थे, यानी गरम और नरम दलवालोंको। उनका स्वभाव ही बहुत विरोध करनेका नहीं था। यह तो एक बहुत ऊँचे दर्जेकी बात है कि वह अपनी राय पक्की रखते हुए भी मिलकर रहते थे और दूसरोंको मिलानेकी कोशिश करते थे।

फिर वह जमाना आया जब उनसे अक्सर ही मेरा मिलना-जुलना होता रहा। इस तरहकी सब तस्वीरें आज हमारे सामने आती हैं और मैं देखता हूँ कि इन सब वर्षोंमें उनका कितना बड़ा हाथ रहा अपनी राजनीतिको ढालने में। यह तो हुई हमारी राजनीतिकी बात, जो अपनेमें खुद ही बड़ी बात है। दूसरी बड़ी बात थी उनका हमारी पुरानी संस्कृतिके प्रति खास झुकाव। उसको बढ़ानेकी यह हर वक्त कोशिश करते थे और उसकी निशानियाँ तो आपको हर जगह मिलेंगी। उस समयकी हालत कुछ ऐसी थी। यह जो बातें कहते थे, वे मेरी रायमें बहुत सही थी। लेकिन, उनपर बहसें हुईं और वह बहस अबतक जारी है कभी भाषाके मामलेमें, कभी कुछ और मामलोंमें। लेकिन मालवीयजी किसी भाषाके विरोधी नहीं थे। वह चाहते थे कि हिन्दी और संस्कृतकी यहाँ तरक्की हो भारतमें और यह एक बहुत ठीक बात थी।

उस समयके हमारे जो राजनीतिक नेता थे वे तरह-तरहके थे। यह जमाना ऐसा था कि हमारे देशमें काफी बड़े आदमी हुए। उनमेंसे अधिकतर काँग्रेसकी ओर खिंचे। अलग-अलग उनकी बातें थीं, अलग-अलग मजमून थे। लेकिन उस समयके उन बड़े नेताओंमें प्राचीन संस्कृतिकी ओर सबसे अधिक ध्यान मालवीयजीका रहा। यह एक अच्छी बात थी। यों भी अच्छी होती लेकिन उस समयकी स्थिति-विशेषमें तो वह बहुत ही अच्छी थी क्योंकि देश कुछ भटक रहा था। भटक गया था।..... मैं अँग्रेजियतकी बात कह रहा हूँ। तो मालवीयजीने कोई विरोध इन बातोंका भी नहीं किया था, हाँ, अपना सारा वजन उन्होंने हिन्दुस्तानियतपर, भारतीयतापर डाला और तराजूके पलड़ेको कुछ बराबर करने पर। उस समय भी बहुत सारे लोग थे, बड़े विद्वान् लोग थे, संस्कृतके बड़े पण्डित लोग भी थे, पर जहाँतक मेरा विचार है, राजनीतिक नेताओंमें, बड़े नेताओंमें मालवीयजी ही शायद इस मामलेमें सबसे आगे थे। वे रोकते थे, अँग्रेजियतकी बाढ़को पर विरोध करके नहीं बल्कि अपने काम-से, अपने विचारोंसे और कोशिश करते थे अपनी संस्कृतिको बढ़ाने की। इस सिलसिलेमें उनका सबसे बड़ा काम हुआ हिन्दूविश्वविद्यालयकी स्थापना। यह बड़ी भारी बात थी। विश्वविद्यालयके सामने उद्देश्य था, लक्ष्य था, आजकलके जमानेके विज्ञान और विज्ञानकी औलाद यानी टेक्नालाजी, इण्डस्ट्री वगैरहको पुरानी भारतीय संस्कृतिके साथ जोड़ना। एक मानीमें यह सबसे बड़ा काम था भारतके लिए। अब भी है क्योंकि यह एक-दो रोजका काम तो नहीं है। एक तरफ पुरानी भारतीय संस्कृति है, जिसको हमें अच्छी तरह समझना चाहिए। आखिर हमलोग उसीमें ढले हैं और भारत इन सैकड़ों, हजारों बरसोंसे उसके सायेमें पला है। उसका असर हमारे रगोरेशेमें है। उसमें कुछ खराबियाँ पैदा हुईं। पुरानी संस्कृतिमें नहीं, उसके बदलते हुए ढङ्गमें, सब पुराने लोगोंमें, सभी पुरानी कौमोंमें ये बातें आ जाती हैं। उसमें भी खराबियाँ आयीं लेकिन जो चीज असली उसमें थी, वह खरा सोना था। वह तो बेश-कीमती था और भारतके लिए उसे भूल जाना एक तरहसे अपनेको भूल जाना है। क्योंकि उसी मिट्टीमें हम पैदा हुए और उसीसे बने। उसे भूल जायें तो हमारी कोई जड़ ही नहीं रहती, जो बहुत आवश्यक बात है। लेकिन उसीके साथ उतनी ही आवश्यक बात यह है कि हम आज-कलकी दुनियाँको समझें। आजकलकी दुनियाँ विज्ञानकी है अगर हम उसको नहीं समझते तो पिछड़

यद्यपि यह नीति वाक्य है :—

"सत्यं-ब्रूयात् प्रियं-ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्" तथापि यदि वस्तुस्थितिको यथार्थ दिग्दर्शन नहीं किया जाता तो गुरुवर संस्थापक महर्षि मालवीयजीकी कृतिकी अवहेलना होती और शिष्य होनेके नाते लेखक पापका भागी बनता। अतः बाध्य होकर सखेद अप्रिय सत्यका उद्घाटन करना पड़ा, (किसीका दिल दुखानेका नहीं) जिसके लिए लेखक क्षमा प्रार्थी है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका संक्षिप्त इतिहास

(एक कटु सत्यका उद्घाटन)

संस्थापक कुलपतिका सफल प्रशासन काल

मालवीयजी महाराजने लगभग २० वर्षोंतक कुलपतित्वका भार सँभाला था। वे कहीं भी रहें—देशमें, विदेशमें, कारागारमें किन्तु विश्वविद्यालयकी गतिविधिमें कभी अवरोध नहीं हो सका, न केवल देशमें, बल्कि ६ मासके ऊपर लन्दनमें गोलमेज सम्मेलनमें भी लगा था। तब सबमें अपनत्व-की भावना थी—नौकरीकी भावना नहीं थी। उनके नामकी महिमा थी। सर्वत्र सुख-शान्तिका साम्राज्य था। सबमें सौहार्द्रकी भावना थी।

काँग्रेसके प्रस्तावानुसार सर्वत्र प्रिन्स आफ वेल्सके स्वागतका जोरदार विरोध किया गया था, मालवीयजी महाराजने अपने विश्वविद्यालयमें स्वागत-सम्मान किया था—उन्हें डाक्टरेटकी उपाधि प्रदान की गयी। युनिवर्सिटी ट्रेनिङ्ग कोरने सम्मान दी थी, उन्होंने विश्वविद्यालय परिसरमें पुलिस और सेना—प्रवेशका सरकारी प्रस्ताव अमान्यकर दिया था. अपने स्वयंसेवकोंसे प्रशंसनीय प्रबन्ध किया था। उन्होंने अपने कार्य-कालमें कभी भी पुलिस या सैन्य संरक्षण प्राप्त नहीं किया था। (आज दिन कुलपति बिना पुलिस संरक्षणके कार्यालय पहुँचना तो दूर अपने घरपर भी पुलिसका संरक्षण होते हुए उनके फाटकपर सदा ताला लगा रहता है) जो जन-समूहसे वञ्चित रहता है।

विश्वविद्यालयके चमकते यशमें यदा-कदा कुछ लोग गतिरोध उत्पन्न करनेका असफल प्रयास भी करते थे। ऐसा ही, गतिरोधकी चेष्टा उस समय की गयी थी, जब विश्वविद्यालयके कुछ छात्रों, अध्यापकों और कर्मचारियोंने भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राममें सक्रिय भाग लिया था—स्वयं संस्थापक कुलपति कारागारमें बन्दी थे। (यों तो स्वतन्त्रताका उद्घोष तथा स्वदेशी वस्त्रके उपयोगकी बात सर्वप्रथम मालवीयजी महाराजने ही चलायी—आगे चलकर वह आन्दोलनका रूप ले लिया था)। फलतः तत्कालीन ब्रिटिश शासनने विश्वविद्यालयके लिए स्वीकृत नगण्य अनुदान रोक दिया था।

अनुदानकी पुनः प्राप्तिके लिए कौंसिलके दो वरिष्ठ सदस्योंने प्रेरित किया कि कल प्रातःकाल-तक जेलमें (प्रयाग) मालवीयज महाराजीसे निवेदन किया जाय कि वे त्यागपत्र न दें। (लेखकको यह सुविधा जेल अधिकारियोंसे प्राप्त थी कि वह मालवीयजीको किसी भी दिन कोई सम्वाद दे सके)।

रविवारको प्रातःकाल ९ बजे प्रयागके नैनी जेलमें महाराजका दर्शन किया। प्रसन्न मुद्रामें उन्होंने पूछा—क्या समाचार लाये ? बतलाया गया कि प्रोफेसर कृष्णकुमार माथुर और पण्डित इन्द्रदेव तिवारीने यह सम्वाद दिया है और विनम्र प्रार्थना की है कि "आज मध्याह्नोत्तर ३ बजे तीन

.....मालवीयजी और गांधीजीका ध्यान जाता था, हमेशा जाता था किसानोंकी तरफ और उनकी तरफ जो सबसे नीचेके तबके के लोग हैं। कैसे इन लोगोंका सिर ऊँचा हो, अपनेपर भरोसा हो, मिलकर सहयोगसे काम करें, सब लोगोंका इस ओर ध्यान विशेषकर जाता था। क्योंकि, जैसे ये लोग कहते थे कि अगर हिन्दुस्तानमें स्वराज्य आ गया और लोग तैयार न हुए तो वह निकल भी जायगा, रहेगा नहीं, लोग तैयार हैं तो स्वराज्य आ ही जायगा और कायम भी रहेगा।

तो इन सब लोगोंके काम, गांधीजीके या मालवीयजीके, भविष्यको देखते हुए थे। सब लोगोंको बढ़ाना, ऊँचा करना, मजबूत करना, उनको आपसमें मिलकर काम करना सिखाना, इस तरहसे एक ईंट, एक पत्थर लेकर इन महापुरुषोंने हमारे भारतके भविष्यको उज्ज्वल बनानेकी कोशिश की और बहुत-कुछ बनाया। उन्होंने बनाया था हम लोगोंको जो दूसरी पिढ़ीके थे कि हम कुछ ज्यादा जोर दिखा सकें, लेकिन असलमें तो काम उनका था।

.....ऐसे मौकेपर जब हम याद करते हैं एक महापुरुषको, तो उसकी जीवनीसे हम लाभ उठायें, सीखें। बहुत-कुछ हम सीख सकते हैं। एक मानीमें। दुनियाका इतिहास क्या है? बहुत बातें हैं दुनियाके इतिहासमें, पर एक मानीमें कहा जाय तो दुनियाका इतिहास दुनियाके जो बहुत ऊँचे तबकेके लोग हैं उनकी जीवनियाँ हैं, वही इतिहास है.....हमारे सामने तो कई ऐसी मिसालें हैं जिनसे हम सीख सकते हैं—आजकलके लोग, नौजवान बहुत कुछ सीख सकते हैं मालवीयजीके जीवनसे। उनके सामने जो लक्ष्य था, जैसे उन्होंने काम किया और सफलता पायी इन सबसे। हम मूर्तियाँ, खड़ी करें, संस्थाएँ बनायें। यह तो ठीक है, लेकिन आखिरमें सबक सीखें उनकी जिन्दगीसे, उनके कामसे और सीखकर उसी रास्तेपर चलें। आजकलके जमानेमें उसको लगाकर चलें और आगे बढ़ें, तो यही उनका सबसे बड़ा स्मारक हो सकता है। यह अच्छा है समय आया उनकी शताब्दी मनानेका, तो पुराने और नये लोग सब फिरसे सोचें, विचार करें और सीखें कि वे क्या-क्या बातें थीं, जिनसे मालवीयजी इतने ऊँचे महापुरुष हुए, कैसे उन्होंने भारतको आजादीके रास्तेमें, अपनी संस्कृतिका आदर करनेके रास्तेमें सबको बढ़ाया और यह कि उनके बतलाये रास्तेपर चलकर भारतकी सेवा हम किस तरह करें और आगे बढ़ें।

जयहिन्द।

परिशिष्ट—१

आगे जिस अप्रिय कटु सत्यका उद्‌घाटन करना पड़ रहा है, उसका कारण यह है कि मुदालियर और गजेन्द्र गड़कर कमीशनोंके भ्रष्ट संस्तुतिके होते हुए भी जिसके कारण विश्वविद्यालयका स्वरूप विकृत और भ्रष्ट हो गया एक वरिष्ठ इतिहासकारने यह स्वीकार किया है :—

'मुदालियर और गजेन्द्र गड़कर कमीशनोंने विश्वविद्यालयको सुव्यवस्थित करनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।'

अवश्य ही किसी निहित प्रगाढ़ स्वार्थकी भावनासे प्रेरित होकर ही सुव्यवस्थित और महत्त्वपूर्ण शब्दोंका उल्लेख किया गया है, जो सर्वथा तथ्यसे परे है, विश्वविद्यालयके शुभेच्छुओंको गुमराह करनेवाला है और एक कुशल इतिहासज्ञ द्वारा सत्यपर परदा डालनेका अक्षन्तव्य अपराध भी है। विचारशील विज्ञजन परिस्थितियोंका स्वयं विवेचन करेंगे।

यद्यपि यह नीति वाक्य है :—

''सत्यं-ब्रूयात् प्रियं-ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्'' तथापि यदि वस्तुस्थितिको यथार्थ दिग्दर्शन नहीं किया जाता तो गुरुवर संस्थापक महर्षि मालवीयजीकी कृतिकी अवहेलना होती और शिष्य होनेके नाते लेखक पापका भागी बनता। अतः बाध्य होकर सखेद अप्रिय सत्यका उद्घाटन करना पड़ा, (किसीका दिल दुखानेका नहीं) जिसके लिए लेखक क्षमा प्रार्थी है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका संक्षिप्त इतिहास

(एक कटु सत्यका उद्घाटन)

संस्थापक कुलपतिका सफल प्रशासन काल

मालवीयजी महाराजने लगभग २० वर्षोंतक कुलपतित्वका भार सँभाला था। वे कहीं भी रहें—देशमें, विदेशमें, कारागारमें किन्तु विश्वविद्यालयकी गतिविधिमें कभी अवरोध नहीं हो सका, न केवल देशमें, बल्कि ६ माससे ऊपर लन्दनमें गोलमेज सम्मेलनमें भी लगा था। तब सबमें अपनत्व-की भावना थी—नौकरीको भावना नहीं थी। उनके नामकी महिमा थी। सर्वत्र सुख-शान्तिका साम्राज्य था। सबमें सौहार्द्रको भावना थी।

कांग्रेसके प्रस्तावानुसार सर्वत्र प्रिन्स आफ वेल्सके स्वागतका जोरदार विरोध किया गया था, मालवीयजी महाराजने अपने विश्वविद्यालयमें स्वागत-सम्मान किया था—उन्हें डाक्टरेटकी उपाधि प्रदान की गयी। युनिवर्सिटी ट्रेनिङ्ग कोरने सम्मान दी थी, उन्होंने विश्वविद्यालय परिसरमें पुलिस और सेना—प्रवेशका सरकारी प्रस्ताव अमान्यकर दिया था. अपने स्वयंसेवकोंने प्रशंसनीय प्रबन्ध किया था। उन्होंने अपने कार्य-कालमें कभी भी पुलिस या सैन्य संरक्षण प्राप्त नहीं किया था। (आज दिन कुलपति बिना पुलिस संरक्षणके कार्यालय पहुँचना तो दूर अपने घरपर भी पुलिसका संरक्षण होते हुए उनके फाटकपर सदा ताला लगा रहता है) जो जन-समूहसे वञ्चित रहता है।

विश्वविद्यालयके चमकते यशमें यदा-कदा कुछ लोग गतिरोध उत्पन्न करनेका असफल प्रयास भी करते थे। ऐसा ही, गतिरोधको चेष्टा उस समय की गयी थी, जब विश्वविद्यालयके कुछ छात्रों, अध्यापकों और कर्मचारियोंने भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राममें सक्रिय भाग लिया था—स्वयं संस्थापक कुलपति कारागारमें बन्दी थे। (यों तो स्वतन्त्रताका उद्घोष तथा स्वदेशी वस्त्रके उपयोगकी बात सर्वप्रथम मालवीयजी महाराजने ही चलायी—आगे चलकर वह आन्दोलनका रूप ले लिया था)। फलतः तत्कालीन ब्रिटिश शासनने विश्वविद्यालयके लिए स्वीकृत नगण्य अनुदान रोक दिया था।

अनुदानकी पुनः प्राप्तिके लिए कौंसिलके दो वरिष्ठ सदस्योंने प्रेरित किया कि कल प्रातःकाल-तक जेलमें (प्रयाग) मालवीयज महाराजीसे निवेदन किया जाय कि वे त्यागपत्र न दें। (लेखकको यह सुविधा जेल अधिकारियोंसे प्राप्त थी कि वह मालवीयजीको किसी भी दिन कोई सम्वाद दे सके)।

रविवारको प्रातःकाल ९ बजे प्रयागके नैनी जेलमें महाराजका दर्शन किया। प्रसन्न मुद्रामें उन्होंने पूछा—क्या समाचार लाये? बतलाया गया कि प्रोफेसर कृष्णकुमार माथुर और पण्डित इन्द्रदेव तिवारीने यह सम्वाद दिया है और विनम्र प्रार्थना की है कि ''आज मध्याह्नोत्तर ३ बजे तीन

डाक्टर राधाकृष्णन्

मालवीयजी महाराजके त्याग-पत्रके पश्चात् विश्वविद्यालयकी सर्वोच्च व्यवस्थापिका सभा-कोर्टकी सर्व सम्मतिसे सितम्बर सन् १९२९ में डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् कुलपति निर्वाचित हुए।

उन्होंने सर्व प्रथम विश्वविद्यालयकी अर्थ-व्यवस्था समझने और कर्मचारियोंका वेतन-स्तर निर्धारित करनेके लिए एक अवसर प्राप्त रिटायर्ड एकाउण्टेण्ट जेनरलकी नियुक्ति की थी। श्रीराघवन-ने अर्थ-व्यवधामें कोई त्रुटि नहीं पायी किन्तु उन्होंने कुलपतिकी स्थितिमें दो विशेषाधिकार प्रयोगों तथा संस्कृत महाविद्यालयकी अनुपयोगितापर गहरा आक्षेप किया था, जिसे महाराजने अत्यन्त दुःखके साथ कितने ही पृष्ठोंमें उन आक्षेपोंका समुचित समाधान किया था। वह आक्षेप दुर्भावना और ओछे-पनका द्योतक था।

उन्नीस वर्षोंके दीर्घकालमें संस्थापक कुलपतिके केवल दो विशेषाधिकारोंका प्रयोग—(मेरी स्मृतिके अनुसार एक गरीब मद्रासी कर्मचारीके लिए था, जिसे निर्दोष निकाल दिया गया था, उसे पुनः ३०) मासिक वेतनपर रजिस्ट्रार कार्यालयमें नियुक्तिका आदेश दिया गया था। दूसरा प्रयोग कन्या महाविद्यालयके वाइस-प्रिन्सिपलकी नियुक्तिका था—जो एक उच्चकोटिकी विख्यात विदुषी थी। राघ-वन् साहबको वह विशेषाधिकार अनुचित, असह्य या अजीज हो गया। जब कि उन्हींके परिश्रमसे प्राप्त धनराशिसे संस्थाका सञ्चालन होता था और आजकल जन साधारणसे कर रूपमें प्राप्त करोड़ों-की धनराशि प्रतिवर्ष प्रायः विशेषाधिकारसे ही व्यर्थ बहायी जा रही है।

कर्मचारियोंके वेतन-स्तर निर्धारित होनेसे उनमें लोलुपता और परस्पर स्पर्धाकी भावनाको बल मिला। डाक्टर राधाकृष्णन्ने शनैः-शनै अपने प्रान्तवासियोंको प्रश्रय देना प्रारम्भ किया, उन्हें उत्तर भारतके विद्वान् नगण्य प्रतीत होते थे। उनकी इस नीतिसे विश्वविद्यालयमें असन्तोषकी भावना बढ़ रही थी। तत्कालीन कृषि महाविद्यालयके अध्यक्ष डॉक्टर भोलानाथ सिंहने उनकी नीतिका विरोध किया। उन्हें एक मामलेमें दोषी बनाकर उनकी सेवा-मुक्ति की गयी। उत्तर-दक्षिणकी भावनाका उदय हो गया था।

डाक्टर राधाकृष्णन् कुछ दिनोंतक सप्ताहमें तीन दिन कलकत्ता और तीन दिन काशीके विश्व-विद्यालयोंमें व्यतीत करते थे और प्रतिवर्ष छः मास लन्दनमें। यद्यपि मालवीयजी डाक्टर राधाकृष्णन्-की उपरोक्त भावनासे परिचित हो गये थे और विश्वविद्यालयके सञ्चालनमें कुछ बाधाएँ भी आने लगी थीं किन्तु उनके प्रतिवर्ष ६ मास लन्दनमें व्यतीत करनेपर विश्वविद्यालयके यशमें वृद्धि होगी, इस लोभसे उनकी सेवा उपयुक्त समझते थे।

मालवीयजी महाराजने, प्रशासनमें सहयोगके लिए—कुछ लोगोंके विशेष आग्रहपर ही, न चाहते हुए भी पण्डित गोविन्द मालवीयसे सहयोग लेनेका सुझाव डाक्टरसाहबको दिया था, जो उन्हें रुचिकर नहीं लगा था। उस सुझावकी कटु आलोचना भी उन्होंने की थी, इससे डाक्टर राधाकृष्णन्के विरुद्ध वातावरण बन गया था।

डाक्टर राधाकृष्णन्की अध्यक्षतामें प्रो-वाइस-चान्सलर पदके लिए प्रथम चुनाव प्रणाली अपनायी गयी। अध्यक्षजीके उम्मीदवार डाक्टर ए० वी० मिश्र थे और मालवीयजी महाराजके पूर्व सुझावके अनुसार अन्य सदस्योंने पण्डित गोविन्द मालवीयको खड़ा किया। पण्डित गोविन्द मालवीय

व्यक्तियोंका दल आपसे कुलपति-पदसे त्यागपत्र लेने पहुँच रहा है, समस्त अध्यापक इस बातसे दुःखी हैं और सम्प्रति वे अर्ध वेतन लेनेके लिए हस्ताक्षर कर रहे हैं, यदि आवश्यकता होगी तो अवैतनिक भी सेवा-रत रहेंगे। हस्ताक्षरयुक्त पत्र शीघ्र आपके पास प्रस्तुत हो जायगा, आप कृपाकर किसी भी स्थितिमें त्यागपत्र न दें।" इतना सुनते ही उनके नेत्रोंमें अश्रु भर गये—कहने लगे, "ऐसी स्थिति हो गयी ? ठीक है, तुम तो तीन बजेतक रहोगे—घर चले जाओ वहाँ भोजन करके बहुवा (पत्नी) आदिको लेते आना।"

रविवारको ३ बजे वह दल नैनी जेल पहुँच गया—लेखक भी महाराजके परिवारके साथ वहाँ उपस्थित था—उन लोगोंने महाराजको सरकारी रुखसे अवगत कराकर आसन्न सङ्कटसे मुक्तिके लिए उनसे त्यागपत्रकी कामना की थी। महाराजने उत्तर दिया था कि यह ठीक है कि मुझे अन्य कामोंमें व्यस्त रहनेसे विश्वविद्यालयका कार्य सन्तोषजनक नहीं हो पाता—इससे त्याग-पत्र दे देना चाहिए किन्तु सहसा 'विदधीत न क्रियाम्' (जल्दीबाजी नहीं)।

सन् १९४२ में एक तूफान आया, जब मिलिटरीने विश्वविद्यालयके भवनोंपर ताला लगाकर इन्जिनियरिङ्ग कालेजके रामपुर हालमें सैनिक छावनी बना दी थी। महाराजके प्रभावसे उसे कुछ दिनोंमें स्थान खाली कर देना पड़ा। वास्तवमें सरकार मालवीयजीसे सदा भयभीत रहती थी, इससे उनके विचारका खण्डन करना कठिन था। यहाँतक कि धारा १४४ को तोड़कर उन्होंने जहाँ-तहाँ पहुँचकर अपना कार्य किया। सरकार उन्हें गिरफ्तार नहीं कर सकी।

मालवीयजी महाराजकी धारणाके अनुसार विश्वविद्यालयका काम अधूरा था। आधा ही सम्पन्न हो सका था। उनका कहना था कि वे अगले जन्ममें उसे पूरा करेंगे। इसी अभिप्रायसे उन्होंने कहा था कि विश्वविद्यालयसे लगी कमच्छातककी समस्त भूमि अवाप्तकर ली जाय किन्तु वह पूरा नहीं हो सका।

अगले जन्ममें पूरा करनेकी बातपर एक सज्जनने उनसे प्रश्न किया था कि इसका मतलब यह हुआ कि तबतक प्रायः ५० वर्षोंतक विश्वविद्यालयका कार्य ठप्प रहेगा ? इसका उत्तर उन्होंने नहीं दिया था।

मालवीयजीके कुलपतित्व-त्यागका कारण :—

मालवीयजी महाराजके बाहर रहने या उनकी अस्वस्थताकी दशामें विदेश रहनेपर भी विश्व-विद्यालय-सञ्चालनमें कभी गतिरोध नहीं हो सका था—बन्दीगृहमें कई मास बन्द रहनेपर भी। तथापि वे प्रायः इस दायित्वसे मुक्त होना चाहते थे, जो विश्वविद्यालयके शुभेच्छुओंके अनुरोधको अस्वीकार नहीं कर पाते थे किन्तु नीचे लिखी घटनाने उनको विचलितकर दिया, जिससे अस्वस्थताके कारण ही त्याग-पत्र देना पड़ा था। किन्तु प्रो० चटर्जीके साथ घटी घटनाने उनके हृदयको झकझोर दिया था—विवरण पहले आ चुका है।

सन् १९३८ में वे विश्रामके लिए विन्ध्याचल (मीरजापुर) के डाकबँगलेमें निवासकर रहे थे। उन दिनों इन्जीनियरिङ्ग कालेजके छात्रोंने तत्कालीन वाइस प्रिन्सिपल प्रो० भीमचन्द्र चटर्जीके विरुद्ध आन्दोलनकर दिया था और डाकबँगलेके बरामदेमें उनके सामने आधे दर्जन छात्रोंने अनशन भी प्रारम्भ कर दिया था।

सम्पादन करते थे, जो सन्तोषप्रद नहीं था। यत्र-तत्र सरकारी हस्तक्षेप भी उन्हें विचलितकर देता था। उनके विस्तृत ज्ञानका लाभ अधिक दिनोंतक विश्वविद्यालयको प्राप्त न हो सका और अस्वस्थताके कारण उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया।

डाक्टर सी० पी० राम स्वामी ऐयर—

आचार्यजीके बाद डाक्टर सी० पी० राम स्वामी ऐयरको कुलपति मनोनीत किया गया। वे विख्यात विधि-वेत्ता और अनुभवी प्रशासनिक थे। मालवीयजी महाराजके मित्रोंमें थे। वे अपनी सूझ-बूझसे विश्वविद्यालयका सञ्चालन करना चाहते थे, उसमें सरकारी हस्तक्षेप उन्हें असह्य था।

सन् १९५४ के आडिट रिपोर्टके अनुसार हिसाब-किताबमें पर्याप्त अव्यवस्था, नियुक्तियोंमें पक्षपात और स्थानीय जुडीशियल मजिस्ट्रेटके फैसलेमें दिखाये गये प्रायः तेरह लाखकी धनराशिके गबनकी ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया, तब उन्होंने उस भयावह स्थितिके विषयमें २४ जुलाई १९५५ की कोर्ट मीटिङ्गमें सदस्योंको आश्वस्त किया था कि उन्हें समय दिया जाय, जिससे अनियमितताओंकी छानबीन कर उसे दूर करनेका प्रयास करें। उनके वक्तव्यका अन्तिम अंश इस प्रकार है—

"If ofterwards the court feel that I have not done my duty. I shall be prepare to strong comment. I perfectly within to give undertaking that the irregularities as have come to light either in audit or otheru'se, will be carefully Looked in to with that undertaking, the court may give some time to do so"

यह उल्लेख है कि जिन व्यक्तियोंके विरुद्ध भ्रष्टाचारका सङ्केत किया गया था वे मनोनीत कौंसिल—सदस्यों तथा सरकारसे सम्बन्धित थे, उनकी पद-वृद्धि की गयी और जिन व्यक्तियोंने आरोप लगाया था, वे प्रशासनकी आँखके किरकिरी बन गये (जो आगे चलकर विश्वविद्यालयके लिए आवाञ्छित समझकर उनकी सेवाएँ समाप्तकर दी गयी थीं—भ्रष्टाचार और गबनको पचा लिया गया था)।

उपरोक्त ऊहापोहकी स्थितिमें सरकारी रुख अनुकूल न पाकर दूरदर्शी डाक्टर ऐयरने अपनी अस्वस्थताका कारण बताकर त्याग-पत्र दे दिया—सरकारने उनसे अनुरोध किया था कि वे अपने स्थानकी पूर्तिके लिए इक्जूक्यूटिव कौंसिलसे कुल नामोंकी संस्तुति भेजें।

डाक्टर ऐयरने इक्जूक्यूटिव कौंसिलके समक्ष कुलपति पदके लिए नाम भेजनेकी चर्चा करते हुए एक व्यक्तिके नामका प्रस्ताव स्वयं (चेयरसे) करनेकी इच्छा व्यक्तकी थी, जिस नामको उन्होंने कभी सुनातक नहीं था। उनका वक्तव्य यह था—

"Very soon after I sent my letter (Resignation) to the visitor, I contacted with the President of India, who is the visitor of this University and with Ministry of Education and feel that aught to take this house in confidence, when I mention that the persons connected with the Ministry, suggested the name of Dr. V. S. Jha, as the person, who may be selected as the Vice-Ghancellor It so happen that I have absolutely no knowledge of the nomination of Dr. V. S. Jha,

विजयी हुए, जो डाक्टर राधाकृष्णन्‌को असह्य हुआ। उन्होंने अपना अपमान समझकर त्याग-पत्र तो दे दिया किन्तु ऐसी स्थिति उत्पन्नकर दी थी कि अन्य कोई व्यक्ति कुलपति पदके लिए न प्राप्त हो सके।

कोर्टके एक सदस्यने डाक्टरसाहबकी स्तुतिमें एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया था कि 'मालवीयजीने विश्वविद्यालयका एक ढाँचा मात्र तैयारकर दिया था, जो अस्थि-पञ्जर अवशिष्ट था। डाक्टर राधाकृष्णन्‌ने ही उसमें प्राणका सञ्चार किया—आदि।'

उस अस्वाभाविक प्रस्तावके विरुद्ध दूसरे सदस्योंने उनके सात वर्षोंके क्रिया-कलापका विशद् उल्लेखकर दिया था। फलतः दोनों प्रस्ताव रोक दिये गये और डाक्टरसाहबका त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया गया। बादमें उन्हें मालूम हुआ कि उनके विरुद्ध वातावरण था, जिसकी जानकारी उन्हें नहीं थी। वाराणसीसे उनके प्रस्थानके समय 'आज' में एक कविता भी प्रकाशित थी जिसका एक पद मुझे स्मरण है :—

'अब पाग दिखात नहीं सजनी, वह रेल गयी वह रेल गयी,
एते बृजबाला मृगछाला कहाँ पावेंगी आदि।'

डाक्टर अमरनाथ झा तथा पण्डित गोविन्द मालवीय :

जैसा ऊपर कहा गया है उस विषम परिस्थितिमें डाक्टर अमरनाथ झा (तत्कालीन अध्यक्ष, लोक सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश) को केवल १० मासके लिए कुलपतिके लिए तैयार किया गया। झाजीकी इच्छा थी कि वह दोनों पदोंका दायित्व वहनकर सकेंगे किन्तु सरकारको वह मान्य नहीं हुआ और १० मास बाद पण्डित गोविन्द मालवीय कुलपति निर्वाचित किये गये।

उन्होंने अल्पकालमें ही अनेक विभागोंका संवर्धन किया और सरकारसे प्रचुर धनराशिका स्थायी अनुदान भी प्राप्त किया। भीतरी मतभेदके कारण उन्होंने कुलपति पदसे त्याग-पत्र प्रस्तुत कर दिया था। और पुनः उस पदके अभ्यर्थी बनकर विजयी हुए थे। सरकारने उस निर्वाचनको अवैध घोषितकर दिया।

सरकारी हस्तक्षेपका उद्‌भव

कुलपति पदसे मुक्त होनेके बाद डाक्टर राधाकृष्णन्‌को भारत सरकारने शिक्षा आयोगका अध्यक्ष बनाया था उन्होंने अपनी रिपोर्टमें विश्वविद्यालयोंमें व्यवहृत विधानके संशोधनमें कोर्ट, कौंसिल आदिके बनावटमें चुनाव प्रणालीका सुझाव दिया था। तदनुसार सन् १९५१ में काशी हिन्दूविश्वविद्यालयका लोकतान्त्रिक विधान, जिसे देशके मूर्धन्य विधि-वेत्ताओंने निर्माण किया था और उस सार्वभौम विधानके अनुसार सर्वोच्च व्यवस्थापिका सभा कोर्ट द्वारा चान्सलर, प्रो-चान्सलर, वाइस-चान्सलर, प्रो-वाइस-चान्सलर, ट्रेजरार तथा विभिन्न समितियोंके सदस्य चुने जाते थे, भारत सरकारने उसे सर्वात्मना बदल दिया।

आचार्य नरेन्द्र देव

सन् १९५१ के संशोधित विधानानुसार आचार्य नरेन्द्र देवजी कुलपति मनोनीत किये गये। वे आदर्श और त्यागी महापुरुष थे। उन्होंने अपने वेतनका कुछ ही अंश अपने लिये स्वीकार किया था शेष उपयुक्त छात्रोंके सहायतार्थ था। उनकी अस्वस्थताके कारण प्रायः प्रो-वाइस-चान्सलर ही कार्य

"सरकारने ऐसे व्यक्तिको कुलपति नियुक्त किया है, जिसका शिक्षाके बारेमें चार-पाँच महीनेका अनुभव है और जिन्हें केवल ४ वोट मिले थे अगर मेरे पास वक्त होता तो मैं मध्य प्रदेश एसेम्बलीमें हुए डिबेटमें श्री वी० एस झाके कामकी जो चर्चा की गयी है, उसे दिखाता लेकिन वक्त नहीं है....."

"मैं पूछता हूँ जिस व्यक्तिको आपने भेजा है, उसको उस कुर्सीको उठाकर रखने-की भी योग्ययता है ?....."

'मुझे मालूम पड़ता है कि इसके पीछे कोई प्लान है, कोई प्लाट है और उसी प्लाटके अन्तर्गत यह सारी काररवाई हो रही है.....'

'आपने युनिवर्सिटीका अपहरण किया है, उसको स्वायत्तताका अपहरण किया है.....'

'इक्जिक्युटिव कौंसिल जो आपने बनायी है, उसको भी हमने देखा है, इस बारेमें अधिक नहीं कहना चाहता हूँ लेकिन इससे हमको असन्तोष है—बहुत अधिक कहना भी कभी-कभी गैर-मुनासिब हो जाता है ।'

'मुझे लगता है, वाइसचान्सलर डाक्टर वी० एस० झा उस कमेटीमें बैठे रहते थे—मुदालियर कमेटीमें—मैं निश्चितरूपसे जानता हूँ, मैं आरोप लगाता हूँ कि इसके पीछे एक महान् षड्यन्त्र है और इसमें हमारा शिक्षा मन्त्रालय है, वह सूत्रधार है ।'

'मैं निवेदन करूँगा कि अगर वहाँपर कोई गड़बड़ करना चाहता है तो वह गड़बड़ युनिवर्सिटी याण्ट्स कमीशनकी तरफसे, शिक्षा मन्त्रालयकी ओरसे भारत सरकारकी ओरसे हो रही है ।'

'इस विश्वविद्यालयको सरकारका विभाग न बनाया जाय' आदि-आदि । इस प्रकार चतुर्दिक प्रहारसे प्रधान मन्त्रीको स्वयं हस्तक्षेप करना पड़ा था कि कुछ बड़े लोगोंने उन्हें ऐसा करनेको बाध्य किया था—उन्हें 'पुश' किया गया था, अतः इसे चलने दिया जाय ६-८ महीनोंमें ठोस बिल प्रस्तुत किया जायगा ।

उस समय सबमें रोष व्याप्त हो गया था । सम्भवतः नेहरूजीको बादमें मानना पड़ा था कि उन्हें धोखा दिया गया था और वह धोखा डाक्टर श्री मालीने दी थी—जो मन्त्री पदसे बादमें हटा दिये गये ।

डाक्टर वी० एस० झाके नेतृत्वमें उस भ्रष्ट रिपोर्टके आधारपर एक छटनी कमेटी बनायी गयी—उस अस्त्रसे, निरङ्कुश अधिकारियोंने निर्दोष व्यक्तियोंको उत्पीड़ित किया —आपात-काल स्थिति जैसी अराजकता थी—जघन्य पाप किया गया, जिसकी कहीं कोई सुनवाई नहीं थी ।

यहाँ एक घटनाका उल्लेख सामयिक होगा । अपने विषयमें प्रख्यात विद्वान्, सज्जनताकी मूर्ति डाक्टर जगदीशशरण शर्मा, पुस्तकालयाध्यक्ष तथा मेरे विरुद्ध तत्कालीन अधिकारियोंने एक मामला बनाकर पुलिसमें दे दिया था । पुलिसने अपनी असमर्थता प्रकट की । तब प्रशासनिक कार्य-वाहीके लिए एक सदस्यीय कमेटी 'ला' कालेजके प्रधान श्री जी० वी० जोशीको जाँचके लिए दिया

but I may mention that the persons in the ministry of Education seems to be highly impressed be him and comsider that he is very suitable."

स्वाभिमानी डाक्टर ऐयरके दिलमें शिक्षा मन्त्रालयके हस्तक्षेपसे कितनी विवशता झलकती है कि वे अपनी भावनाको व्यक्त करनेमें सङ्कोच नहीं कर सके थे।

उस कौंसिलमें चार नामोंमें क्रमशः १२, १०, ७, और ५ मत मिले थे—और सबसे कम ५ मत प्राप्त करनेवाले डाक्टर बी० एस० झा थे—जब यह निश्चित था कि उपरोक्त झाजी उपयुक्त कुलपति होंगे तो अन्य नामोंके भेजनेका नाटक क्यों किया गया गया और जिसे १२ मत प्राप्त था, उसको त्याज्य क्यों समझा गया ? यह है भारतीय लोकतन्त्रका आदर्श ?

दिल्लीका षड्यन्त्र

तत्कालीन शिक्षामन्त्री डाक्टर कालूलाल श्रीमाली स्व० पण्डित लज्जाशङ्कर झाके शिष्य रह चुके थे जब झाजी स्थानीय ट्रेनिङ्ग कालेजके प्रिन्सिपल थे। झाजीने छात्रावस्थामें डाक्टर श्री मालीकी अनेक विध सहायता की थी। किन्हीं कारणोंसे विश्वविद्यालयने पण्डित लज्जाशङ्कर झाकी सेवामें विस्तार करना पसन्द किया था, फलतः क्षुब्ध होकर झाजी विदा हुए थे। गुरुदक्षिणाके रूपमें प्रतिशोध-की भावनासे ही—विश्वविद्यालयके विकसित यशको विनष्ट करनेके उद्देश्यसे ही उनके पुत्र डाक्टर वेणीशङ्कर झाके नामको प्रस्तावित करनेका आग्रह डाक्टर ऐयरसे किया गया। जिस व्यक्तिकी योग्यता आदिकी प्रसिद्धिको कोई जानकारी उन्हें नहीं थी। उनके कुलपति पदपर मनोनयनसे सर्वत्र असन्तोष व्यक्त किया गया था।

मुदालियर कमीशन और अध्यादेश :

उपराष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन् काशी विश्वविद्यालयसे पहले जले-भुने थे, उन्हें विश्वविद्यालय विधानको आमूल परिवर्तन करने मात्रसे ही सन्तोष नहीं था, डाक्टर श्री मालीकी दुरभिसन्धिसे विश्व-विद्यालयके विरुद्ध एक सुनोयोजित योजना रची गयी। उस योजनानुसार मुदालियर कमीशन बैठाया गया (जो केवल उत्तर भारतके मान्य लोगोंके लिए था)। डाक्टर वेणीशङ्कर झा और उनके सहयोगियोंने जो रिपोर्ट तैयार की, कमीशनके सदस्योंने आँख मूँदकर उसपर हस्ताक्षर कर दिया था।

वह एक पक्षीय रिपोर्ट भ्रष्ट, असत्य और दूषित मनोवृत्तिकी थी। कोई भी भद्र पुरुष उस रिपोर्टपर थूक सकता था। सन् १९५८ में उस भ्रष्ट और गन्दी रिपोर्टके आधारपर अनावश्यक, असामयिक और शिक्षा जगत्में अभूत पूर्व क्रूर कदम—हिन्दूविश्वविद्यालयके विरुद्ध अध्यादेश प्रसारित किया गया और उसमें इतनी शीघ्रता प्रदर्शित की गयी थी कि राष्ट्रपति महोदयके प्रवास कालमें विशेष दूत भेजकर उसपर स्वीकृति ली गयी थी, उससे सारे देशमें हाहाकार मच गया।

संसदमें सभी सदस्योंने काँग्रेसी सदस्योंने भी उस भ्रष्ट रिपोर्टपर कटु प्रहार किया था और तत्कालीन मन्त्री डाक्टर राम सुभग सिंह त्याग-पत्र देनेको प्रस्तुत हो गये थे। सदस्योंके क्षोभ व्यक्तका उल्लेख लोक सभा डिबेट पृष्ठ ७ ३९-११८७ (१३-१४ अगस्त १९५८) पर तथा राज्य सभा डिबेट १० सितम्बर ५८ के २७ १९-२८-९९ पृष्ठोंपर है, जिनमें कुछ अंश इस प्रकार है—

डाक्टर त्रिवुणसेन—डाक्टर के एन० उडुप्पा

मनोनीत डाक्टर त्रिवुणसेन कुछ ही महीने कुलपति पदपर रहे। बादमें वह केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री हो गये। उस स्थानकी पूर्ति डाक्टर के० एन उडुप्पाने की थी।

छात्रोंपर निराधार आरोप

यह ज्ञातव्य है कि देशमें विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें अनेक उपद्रव, तोड़-फोड़, लाठी चार्ज और गोली काण्ड होता रहा, बयालिस वर्षोंके निरन्तर सञ्चालनमें काशी हिन्दूविश्वविद्यालयमें ऐसी किसी स्थितिकी कभी किसीने चर्चातक नहीं सुनी थी और न इसके पूर्वतक परिसरमें कभी कोई आरोप लगानेका दुस्साहसकर सका था। स्वयं तत्कालीन गृहमन्त्री स्व० पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्तने छात्रोंके अनुशासन प्रियताका भूरि-भूरि प्रशन्सा की थी। फिर भी मुदालियर कमीशनने छात्रोंपर अनुशासन-हीनताका मिथ्या आरोप लगाया था।

उस क्रूर अध्यादेशका परिणाम यह हुआ कि काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके स्नातकोंके लिए जहाँ प्रत्येक क्षेत्रमें स्थान प्राप्त करना सुलभ था, वहाँ विभिन्न प्रतिष्ठानों द्वारा यह विज्ञप्ति प्रकाशित होने लगी कि वहाँके अभ्यर्थी प्रार्थना पत्र न भेजें।

उस अध्यादेशसे विश्वविद्यालयकी स्वायत्तताका सर्वात्मना अपहरणकर लिया गया। उन दाताओंके साथ विश्वासघात किया गया, जिन्होंने अपनी विपुल धनराशिसे संस्थाके गौरवको समुन्नत किया था और वे उस धनसे आजीवन संस्थाके सर्वोच्च व्यवस्थापिका सभा-कोर्टके माननीय सदस्य माने गये थे।

संसदको धोखा दिया गया :

यह देशका दुर्भाग्य कहा जायगा कि भारतका प्रधान मन्त्री संसदको वचन देता है कि अध्या-देशरूपी विधान अस्थायी है, ६-८ महिनेमें ठोस बिल प्रस्तुत किया जायगा। किन्तु प्रायः दीर्घकालतक ठोस बिल पटलपर नहीं लाया जा सका। कुछ लोगोंने जिनमें पण्डित कृष्णदेव तिवारीजी, श्री उदय सरोज शाह, स्व० पण्डित रामव्यास ज्योतिषी तथा लेखकने दिल्लीमें कुछ सम्मानित व्यक्तियोंकी सहायतासे प्रधान मन्त्री स्व० लालबहादुर शास्त्रीको बिल लानेकी प्रार्थना की थी। फलस्वरूप उनके निर्देशसे सन् १९५६में संसद सदस्योंसे गठित ४५ सदस्योंकी सिलेक्ट कमेटीकी संस्तुतिसे १९६६ में नया विधान मिला किन्तु पुनः सन् १९६८ में स्वायत्तता विहीनकर दिया।

'हिन्दू' शब्द हटानेका कुचक्र :

इस बीच काशी हिन्दूविश्वविद्यालयसे 'हिन्दू' शब्द हटानेका विफल प्रयास किया गया था। कुछ संसद सदस्योंकी कल्पना थी कि 'हिन्दू' शब्द-अँग्रेजोंकी देन थी, मालवीयजी वह नाम नहीं रखना चाहते थे और तत्कालीन न्यायविद् शिक्षामन्त्रीने भी ८ दिसम्बर, १९६५ को मत व्यक्त किया था कि काशी हिन्दूविश्वविद्यालय हो था। एक जिम्मेदार व्यक्ति द्वारा असत्य प्रलाप अपराध तो है ही, देशको गुमराह करनेवाला भी है।

इस सम्बन्धमें लेखक द्वारा एक विवरण प्रस्तुत किया गया जो २६-१२-६५के दैनिक 'आज' में प्रकाशित हुआ था—वह नीचे लिखे अनुसार है—(इससे उस समय वातावरण शान्त भी हो गया।)

गया—उन्होंने मुझे निर्दोष घोषित किया और डाक्टर शर्मा प्रशासनमें प्रौढ़ताके अभावकी रिपोर्ट की गयी, फलतः उन्हें सेवा-मुक्तकर दिया गया। प्रो० जोशीको पुरस्कारस्वरूप कई इन्क्रीमेण्ट दिये गये जिसका लाभ वह कुछ दिनोंतक ही प्राप्त कर सके थे, बादमें वह भगवान्‌को प्यारे हो गये। डाक्टर शर्मा आज चण्डीगढ़के पुस्तकालयाध्यक्ष बनाये गए।

जब पुलिस और प्रो० जोशीने मुझे दोषी नहीं बनाया, तब इक्जीक्युटिव कौंसिलका एक जाली प्रस्ताव बनाकर मुझे सेवा-मुक्तकर दिया गया। जो प्रोसीडिङ्ग बनायी गयी थी, उसपर वी० एस० झाके हस्ताक्षरके लिए वी० सी० जी० बनाया गया था। न्यायालयमें उस प्रोसिडिङ्गके अस्तित्वपर आपत्ति की गयी थी, जिसपर स्थानीय सिविल जजने यह टिप्पणी दी—

"A discrepeney was pointed in this document its that thei nitiat of The Vice-chancellor Dr. V. S. Jha aplaear in this document as V. C. G. and its basis it was forged.

Of course, no satisfactory reply was given before me on behalf of the the opposite parties (B. H. U.) with regards to the discrepency in the initial of the Vice-Chancellor."

उपरोक्त जाली हस्ताक्षरका (फोटो याफ) प्रदर्शन और चर्चा संसद् द्वारा नियुक्त सिलेक्ट कमेटीके समक्ष किया गया। तत्कालीन शिक्षामन्त्री श्री एम० सी० छागलाने उसकी जाँचके लिए सदस्योंको आश्वासन दिया था—जाँच नहीं किया गया।

इस प्रकार पवित्र शिक्षा मन्दिरके शैक्षणिक वातावरणको दूषित कर दिया गया। और प्रतिवर्ष सत्रारम्भ और उपाधि वितरणोत्सवके कार्य समाप्तकर किये गये—जब नये शिक्षार्थियोंको कार्यक्रम और स्नातकोंको भावी उत्तरदायित्व वहन करनेकी प्रेरणा मिलती थी।

श्री एच० एन भगवती :

उपरोक्त छटनी कमेटीका कार्यान्वयन मनोनीत कुलपति (जस्टिस) भगवतीने किया। विश्व-विद्यालयके मूर्धन्य मनीषी डाक्टर गोपाल त्रिपाठी, डाक्टर राजबली पाण्डेय, डाक्टर रामदेव मिश्र, डाक्टर रामयश राय, डाक्टर गौरीशङ्कर तिवारी, पण्डित रामव्यास ज्योतिषी, डाक्टर अक्षयवर लाल प्रभृति विद्वानोंको अवाञ्छनीय समझकर उनकी सेवाएँ समाप्तकर दी गयीं। उनके रिक्त स्थानोंकी पूर्ति नयी नियुक्तियों द्वारा कर दी गयी।

सेवा-मुक्त विद्वानोंने न्यायालयोंकी शरण लेकर बहुधा अपने पदोंपर पुनः प्रतिष्ठित हुए। इस अदूरदर्शितासे विश्वविद्यालयकी न्यायालयोंमें लगायी गयी विपुल धनराशि तथा नव-नियुक्त अध्यापकोंकी नियुक्तिसे विश्वविद्यालको दोहरा व्यय वहन करना पड़ा। वह धनराशि किसीकी निजी नहीं थी, जिसे कष्ट होता। वह जन साधारणसे कर रूपमें प्राप्त धनका दुरुपयोग हुआ। वे सब कुकृत्य मुदालियर रिपोर्टके आधारपर ही किया गया, जिसके प्रवर्तक डाक्टर श्री माली थे।

पत्रोंके मुख्यांशका उल्लेखकर रहे हैं, जिससे काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके नामकी वास्तविकताका ज्ञान हो सकता है।

सर हारकोर्ट बटलरका पत्र इस प्रकार है—

शिमला,
९ अगस्त, १९११

प्रिय महाराजासाहब,

भारत मन्त्रीने निश्चय किया है कि अलीगढ़ और बनारसके प्रस्तावित विश्वविद्यालय आगेसे अलीगढ़ विश्वविद्यालय और बनारस विश्वविद्यालय कहे जायँ। तथा जिस स्थानपर वे स्थापित हों, उस स्थानसे बाहरके विद्यालयोंको सम्बद्ध अधिकार इन्हें न हो। यह बात मैंने दिल्लीमें समितिको बता दी है। अलीगढ़ विश्वविद्यालयके बारेमें जो निश्चय किया गया है, उसके बाद ही यह निश्चय हुआ है। अलीगढ़ विश्वविद्यालयके सिलसिलेमें इसके कारण प्रकाशित किये जा रहे हैं और वे ही बनारस विश्वविद्यालयके बारेमें भी लागू होते हैं। यह निश्चय अन्तिम है और इसी रूपमें यह मान्य होना चाहिए। भारत मन्त्री और भारत सरकार यह अनुभव करते हैं कि इससे सम्बद्ध सम्प्रदायोंको निराशा हो सकती है किन्तु वे आशा करते हैं कि आगे चलकर इससे उनका लाभ ही होगा। जिससे समितिके आप अध्यक्ष हैं, उसने किन्हीं निश्चित प्रस्तावोंको सूत्र-बद्ध नहीं किया है। अतः अभी इस सम्बन्धमें कुछ कहना मेरे लिये आवश्यक प्रतीत होता है।

आपका विश्वासपात्र
(हस्ताक्षर) हारकोर्ट 'बटलर'

हिन्दूविश्वविद्यालय सोसायटीके अध्यक्ष महाराजाधिराज सर रामेश्वर सिंह बहादुरके उत्तरका मुख्य अंश इस प्रकार है, जो मेम्बर इनचार्ज आफ एजुकेशन वाइसरिगल कौंसिल, शिमलाको लिखा गया था—दिनाङ्क इलाहाबाद, २५ अक्तूबर, १९१२,
महाशय,

९ अगस्त, १९१२ का आपका पत्र, जिसके साथ उस पत्रकी प्रतिलिपि संलग्न थी, जो माननीय राजा सर मुहम्मद खाँ, के० सी० आई० ई० महमूदाबादकी प्रस्तावित अलीगढ़ विश्वविद्यालयके विषयमें भारत मन्त्रीके निश्चयकी सूचना देते हुए, लिखा गया था। आपके पत्रमें लिखा है कि 'यह निश्चय किया गया है कि अलीगढ़ और बनारस विश्वविद्यालयोंके नाम आगेसे अलीगढ़ विश्वविद्यालय और बनारस विश्वविद्याल ही कहे जायँ तथा इन्हें अपने स्थापित क्षेत्रके बाहरके विश्वविद्यालयोंको सम्बद्ध करनेका अधिकार न रहेगा। इन पत्रोंको कार्यकारिणी समितिके समक्ष रखा गया और १० अक्तूबरकी बैठकमें इनपर सावधानीसे विचार किया गया। मुझे अधिकृत किया गया कि इसका उत्तर मैं इन शब्दोंमें दूँ .—

(१) ... .

(२) एक प्रश्न उठता है, विश्वविद्यालयके नामके बारेमें।

इस सम्बन्धमें भारत मन्त्रीके उस निश्चयकी सूचना मिली है, जिसमें प्रथम यह कहा गया है

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयसे 'हिन्दू' शब्द हटा देनेके सम्बन्धमें इधर एक निरर्थक विवाद उत्पन्न कर अनायास जनताका चित्त उद्वेलितकर दिया गया है। कुछ लोग अपने पक्षकी पुष्टिमें अनेक दलीलों-से यह सिद्ध करनेका दुस्साहस कर रहे हैं कि (१) मालवीयजीको 'काशी विश्वविद्यालय' नाम प्रिय था। 'हिन्दू, शब्द उनकी इच्छाके विरुद्ध थोपा गया था—यह अँग्रेजोंकी देन है। (२) कुछ नेता यहाँतक कहते हैं कि मालवीयजीके जीवनकालमें विश्वविद्यालयकी परिधिमें एक सभा द्वारा यह प्रस्ताव पारित हुआ था कि 'हिन्दू' शब्द हटा दिया जाय। शिला लेख या ताम्र पत्रपर केवल 'काशी विश्वविद्यालय' ही लिखा है। आदि आदि।

घरमें पुकारे जानेवाले कतिपय नामोंसे ही वास्तविक नामका लोप नहीं हो जाता। कागजमें लिखित नामोंका ही प्रमाण सर्वत्र माननीय होता है।

यह स्मरणीय है कि मालवीयजी महाराज एक कर्मठ योगी थे। वह किसी बातके पूर्वपरक पूर्ण विचारकर ही उसमें प्रवृत्त होते थे। कोई भी शक्ति उनकी इच्छाके विरुद्ध उनसे कुछ भी मनवा-लेनेका दुस्साहस नहीं कर सकती थी—महात्मा गाँधी भी नहीं। इसके अनेक प्रमाण हैं। एक तो काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके स्थापनाके पस्तावपर ही तत्कालीन महापुरुषोंने इसका विरोध किया था और इस प्रस्तावको हास्यास्पद समझा गया था। स्वर्गीय लोकमान्य तिलकने तो इसे मालवीयजीका स्वप्न तथा उनका पागलपन कहा था। किन्तु उन्होंने किसीकी परवाह नहीं की और अपने कर्त्तव्य पथपर दृढ़ रहे। वही विश्वविद्यालय आज सबके समक्ष मूर्तिमान है। अवश्य ही उन्हें 'काशी' शब्द प्रिय था। क्योंकि 'काशते प्रकाशते इति काशी'—जहाँसे ज्ञानका प्रकाश मिलता है, उसे 'काशी' कहते हैं। साथ ही उनके लिए 'हिन्दू' शब्द भी उतना ही मोहक था। 'प्रसादाद्विश्वनाथस्य काश्यां भागीरथे तटे, विश्व-विद्यालयः श्रेष्ठो हिन्दूनां मानवर्धनः' ऐसा कहनेमें वह गौरवका अमुभव करते थे।

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयका नामकरण देशके त्यागी, मूर्धन्य मनीषी विद्वानों तथा देश निर्मा-ताओंने बहुत सोच-समझकर किया था, उनकी सूझ-बूझपर उनलोगोंकी टीका-टीपण्णी करना, जिन्होंने अपनी प्रतिभासे देशको लाभान्वित नहीं किया—उसे अनुप्रमाणित नहीं किया, शोभा नहीं देता। हाँ, उनका मुँह है जो चाहे कह सकते हैं—

'मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी'।

लोकसभाका निर्णय सर्वोपरि होता है, वह चाहे 'हिन्दू' शब्द रखे या निकाल दे। इस विवादसे मेरा कोई अभिप्राय नहीं है किन्तु अनर्गल बातोंसे जनताको गुमराह किया जाता है, इससे क्लेश होता है, अभी गत ८ दिसम्बर, ६५ को भारतके न्यायविद् शिक्षामन्त्री महोदयने भी अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्के छात्रोंके प्रतिनिधियोंसे यह कह था कि हिन्दूविश्वविद्यालयका 'पुराना नाम' काशी विश्वविद्यालय' ही था। शिक्षामन्त्री महोदयको यह मालूम होना चाहिए था कि लोकसभाके सभी माननीय सदस्यगण काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके अतीत इतिहाससे परिचित नहीं हो सकते। यह शिक्षामन्त्रीका दायित्व होता है कि अपने कागजातके आधारपर हिन्दूविश्वविद्यालयके नामके सम्बन्धमें लोकसभाको अवगत कराते।

हम इस सम्बन्धमें भारत सरकारके तत्कालीन शिक्षा सदस्य सर हारकोर्ट बटलर तथा काशी हिन्दूविश्वविद्यालय सोसायटीके अध्यक्ष महाराजाधिराज सर रामेश्वर सिंहजी बहादुरके दो महत्त्वपूर्ण

कोई गड़बड़ी नहीं होगी। इतने वर्षोंके समीक्षात्मक प्रयोगसे भी सरकारको सफलता प्राप्त न हो सकी—अलीगढ़का विधान चल ही रहा है, उसे ही व्यवहारमें लाया जा सकता था।

डाक्टर कालू लाल श्रीमाली

समुद्र मन्थनके बाद सरकारको डाक्टर कालू लाल श्रीमाली रूपीराम कुलपति पदके लिए प्राप्त हुए। नवम्बर, १९६९ में तीन वर्षके लिए मनोनीत किये गये थे। किन्तु अपनी उपयुक्त चातुर्य-से तथा सरकारके वरदानस्वरूप—जबतक कोई कुलपति प्राप्त न हो जाय, तबतक—निर्बाध सात वर्षतक कुलपति बने रहे—अपने समयमें कभी उन्होंने विश्वविद्यालय विधान नहीं आने दिया।

डाक्टर श्रीमालीने सन् १९५८ में शिक्षा जगत्में प्रथम अध्यादेशकी शुरुआत की थी। छटनी कमेटीसे विद्वानोंका अनादर किया और अनेक कुरीतियोंका समावेश कराया, संस्थाको बदनाम किया। जो कुछ दुर्गुण अवशिष्ट रह गये थे अर्थात् चोरी, डकैती, जालसाजी, कतल, भ्रष्टाचार, धनका दुरुपयोग आदि अपने कुलपतित्वमें सबको अपनाया। अध्यापकोंके मनोबलको क्षीण किया उसमें दास्यवृत्ति पनपाया और स्वयं भी अनेक विधि प्रचुर धनसे लभान्वित हुए।

उनके अनुकूल ग्रहोंसे आपातकालीन स्थिति भी फलवती सिद्ध हुई थी—मालवीयजी महा-राजके कुलपतित्वमें उनकी आज्ञासे ही परिसरमें निर्मित 'संघ' भवनको रातों-रात उन्होंने धराशायी करा दिया था, जहाँ स्वयं संस्थापक कुलपति वहाँके कार्यक्रमोंमें यदा-कदा सम्मिलित होते थे। इस दुष्यकृतसे दिवङ्गत आत्माको ठेस पहुँचायी गयी।

डाक्टर श्रीमालीके विरुद्ध जाँच कमीशन बैठानेकी माँगको तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री मोरार-जी भाईने अमान्यकर दिया था, क्योंकि उसमें उनकी रुचि नहीं थी—राजनीतिक अपराध नहीं था, जिससे यह आयोग बैठाते ?

डाक्टर एम० एल० धर, डाक्टर अनन्तराम :

सन् १९७६ में डाक्टर धर कुलपति मनोनीत किये गये। निःसन्देह ऐसे महापुरुषका मनोनयन सर्वथा उपयुक्त था। उन्होंने अपने सहायकके रूपमें डाक्टर अनन्त रमनजीको रेक्टर पदपर प्रतिष्ठित किया था। कुछ भीतरी बाधाएँ तथा सङ्कट और स्वयंकी अस्वस्थताने उन्हें अधिक समयतक नहीं टिकने दिया—यह भी दुर्भाग्य कहा जायगा कि महामानवके रूपमें कोई व्यक्ति आजतक अपना कार्य-काल पूरे समयतक नहींकर सका—बीचमें ही इन्हें हटना पड़ा।

उनके त्याग-पत्रके बाद डाक्टर अनन्तरमनने कुलपति पदका सञ्चालन किया था, जिन्हें हिन्दू मेण्टेलिटीसे चिढ़ है तथा अपने निजी उपयोगके लिए कई सहस्रकी रकमसे शीत-ताप नियन्त्रित आवास किया था। दो वर्षोंके अवकाशके बाद पुनरागमनपर उन दो वर्षोंके अपने वेतनकी कामना की थी, जिसे तत्कालीन इक्जिक्युटिव कौन्सिलने दो बार अस्वीकृतकर दिया था। जब वही सज्जन इक्जिक्युटिव कौन्सिलके मनोनीत सदस्य हुए तब उन्होंने उस कालका सविध विपुल धनराशिसे लाभान्वित किये गये।

डाक्टर हरिनारायणजी :

मई सन् १९७८ में—जब विश्वविद्यालय ग्रीष्मावकाशमें बन्द था, डाक्टर हरिनारायणजीने कुलपतित्वका चार्ज लिया। तबसे घटना-चक्रके कारण विश्वविद्यालय प्रायः बन्द ही रहा। परीक्षाएँ चलती रहीं।

कि बनारसके प्रस्तावित विश्वविद्यालयका नाम आगे यह रहेगा। यह बात मानते हुए भी कि नाम बदलनेसे बनारसके प्रस्तावित विश्वविद्यालयके आवश्यक स्वरूप और क्षेत्रमें कोई परिवर्तन नहीं हो जायगा। कार्यकारिणी समितिके सदस्य ऐसा समझते हैं कि नया प्रस्तावित नाम 'उसी रूपमें संम्पूर्ण भारतकी जनताको आकृष्ट न कर सकेगा, जिस रूपमें अबतक प्रस्तावित नाम आकृष्ट करता आ रहा है। हिन्दुओंकी पवित्र नगरी काशीमें स्थापित इसके नामके साथ 'हिन्दू शब्दका सम्बद्ध रहना न केवल एक अभीप्सित मनोभावकी पुष्टि ही करेगा, वरन् इस बातका भी सङ्केत करेगा कि सम्पूर्ण हिन्दूको इस विश्वविद्यालयसे लाभ पहुँचेगा तथा उसके प्रत्येक सदस्यके समर्थन और सहायताकी यह आशा कर सकेगा एवं सबलोग इसे अपनी संस्था समझेंगे। कार्यकारिणी समितिने यह देखा है कि जनमत मूलतः प्रस्तावित नामके पक्षमें अत्यधिक प्रबल है। समितिको आशा है कि सरकारने उसे यह शब्द कायम रखनेकी अनुमति प्रदान करेगी।

आपका आज्ञाकारी सेवक
(हस्ताक्षर) रामेश्वर सिंह

(बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी १९०५-१९६५ नाम पुस्तकसे उद्धृत)

इन पत्रोंसे स्पष्ट है कि सन् १९१२के पूर्व ही 'काशी हिन्दूविश्वविद्यालय' यह नाम प्रचलित था। उसके बाद सन् १९१६ में विश्वविद्यालयका शिलान्यास हुआ था। इसके पहले या बाद 'काशी विश्वविद्यालय' नाम पड़नेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इन पत्रोंसे सबके भ्रमका निवारण होगा, ऐसी आशा है।

डाक्टर अमर चन्द जोशी

सन् १९६७में डाक्टर जोशीको नये विधानके अनुसार कुलपति मनोनीत किया गया। अब-तक सरकारके मनोनीत कुलपतियोंमें डाक्टर जोशी ऐसे व्यक्ति थे जिनकी विद्वत्ता, निस्पृहता, मिलनसारिता प्रशंशनीय थी किन्तु उनके प्रशासनके विरुद्ध भी गजेन्द्र गड़कर बैठाया गया। स्वाभिमानी डाक्टर जोशीने त्याग-पत्र दे दिया। सरकारी क्रिया-कलापने उन्हें भी अधिक दिनोंतक टिकने नहीं दिया। उनके त्याग-पत्र देनेके बाद कुलपतिकी खोज होने लगी। कुछ लोगोंके पूछनेपर तत्कालीन शिक्षामन्त्रीने कहा था 'अच्छे लोग वहाँ जानेसे कतराते हैं।' किन्तु डाक्टर कालूलाल श्री मालीने कुलपति होना स्वीकारकर लिया और सरकारकी दृष्टिमें यह उपयुक्त समझे गये।

यह विडम्बना ही कही जायगी कि संसद्के ४५ सदस्योंसे गठित सिलेक्ट कमेटीकी संस्तुतिसे निर्मित विधानको दो वर्षोंके अन्दर ही पुनः विधान संशोधनकी आवश्यकता पड़ गयी अर्थात् प्रथम बारके आध्यादेशसे विधान संशोधनमें प्रायः ८ वर्ष व्यतीत हुए—सन् १९६६ के अध्यादेशरूपी विधानका अबतक नहीं हो सका है।

यद्यपि सन् १९७० में शिक्षामन्त्रीने संसद्को आश्वस्त किया था कि 'शीघ्र ही बिल आने-वाला है।' एक प्रश्नके उत्तरमें सन् १९७२में एक मन्त्री महोदयने कहा था कि 'अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालयमें व्यवहरित विधान काशी हिन्दूविश्वविद्यालके लिए भी शीघ्र ही आ रहा है।' तबसे अलीगढ़ विश्वविद्यालयका विधान तीन बार संशोधन भी हो चुका किन्तु काशी हिन्दूविश्वविद्यालयको विधान नहीं मिल सका यह मालूम नहीं कि विधान देनेमें क्या कठिनाई है। अब कैसा विधान देनेसे

उसपर नियुक्तहीन व्यक्तियोंकी रिपोर्टपर एडीशनल नोट प्रशासनको दूषित मनोवृत्ति-भ्रष्टाचारको उजागर करता है, जिसपर कोई कार्यवाही नहीं हो सकी ?

दूसरी एक वरिष्ट प्रोफेसर अपने दो वर्षके अवकाश वापसीपर पूरे समयके वेतनसे लाभान्वित किया गया, जिसे दो बार कौंसिलने अस्वीकारकर दिया था—यह वर्तमान प्रशासनका ज्वलन्त उदाहरण है।

CONFIDENTIAL

To;

Dr. Hari Narayanji Sahab,
Vice-Chancellor,
Banaras Hindu University,
Varanasi.

SUB : AN APPEAL FOR MERCY AGAINST THE HARASSMENT

Respected Sir,

I have sent my representation addressed to the Rector 10.12.1977, but nothing has been done so far. A copy of that representation I have sent to you also but I am sure that the office will not place the correct report regarding my case before you, therefore, to avoid unnecessary delay I beg to submit the correct position of my case, in the shape of an affidavit for your kind perusal.

After my continuous efforts and Kindness of Dr. M. L. Dhar, V. C., though I have been granted the pension, excluding the period from 2.2. 1960 to 31.12.1965, treated as "an extraordinary leave without pay" and there are other things also on which your kind orders are very essential.

In this connection, I respectfully crave to draw your kind attention on the following important points for your sympathic consideration, so that the justice may be done to me.

1. PERIOD OF PENSION :

My pension has been calculated since 1931 which is wrong. The Great founder Vice Chancellor of this University Maha Mana Malaviyaji himself issued an order to immediate Pro-Vice-Chancellor, appointing me as Hindi Clerk in ihe office of the Vice-Chancellor in April 1929. In the book named "तीस दिन मालवीय जी के साथ" (published in his presence, written by the late Pandit Ram Naresh Tripathi) it has been published at page 279 that

वह एक वर्षतक प्रायः कार्यालय नहीं जा सके, अपने निवास स्थानपर ही रहते थे। फिर भी फाटकपर प्रहरियोंकी उपस्थितिमें भी सदा फाटकमें ताला लगा रहता था। किसीसे मिलना उन्हें प्रिय नहीं लगता। उनमें निर्णायक बुद्धिकी कमी बतलायी जाती थी। यह सुना गया था कि डाक्टर हरिनारायणजीने यह व्रत लिया है कि वह मालवीयजीकी भावनाओं और उद्देश्योंको उजागर करनेका प्रयास करेंगे।

ऐसी ऊँची भावना सराहनीय है किन्तु मालवीयजीकी बाहरी भावनाएँ जो सर्वविदित हैं—कभी तालेमें बन्द नहीं रहे (जेलके अतिरिक्त) किसीसे भी, कभी भी वे प्रसन्नतापूर्वक मिलते थे।

डाक्टर हरिनारायणजीका कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं पाया गया, सिवाय इसके कि वह अबतक कई वर्षोंसे रिक्त कई सौ महत्त्वपूर्ण पदोंकी पूर्तिमें ही उन्होंने अपना समय लगाया, जिसके बिना भी पहले कोई क्षति नहीं थी—अव्यवस्थित पठन-पाठनकी दशामें भी उन पदोंकी पूर्ति अनावश्यक थी। कहा जाता है कि इसमें उनका कुछ स्वार्थ था—यह तो निश्चित सिद्धान्त है कि "स्वार्थमनुद्दिश्य न मन्दोपि प्रवर्तते।"

विश्वविद्यालय प्रशासनकी स्थिति यह है कि स्वाभाविक ढङ्गसे किसी भी मामलेमें निर्णय नहीं लिया जाता। इक्जिक्युटिव कौन्सिलके निर्णयको भी मनमाने ढङ्गसे कार्यान्वित किया जाता है। कितने ही महत्त्वपूर्ण मामले अनिर्णीत पड़े हैं, जिनपर ध्यान नहीं है। यह आचरण न केवल प्रशासनकी उपेक्षा, स्वेच्छाचारिता और कर्तव्यहीनता है, प्रत्युत भ्रष्टाचारका द्योतक भी है और ऐसा व्यवहार इस लेखकके साथ भी किया गया है, जिसने न केवल विश्वविद्यालयकी सेवा की है बल्कि उसके संस्थापक कुलपति महर्षि मालवीयजीकी उनके जीवनके अन्तिम श्वासतक निष्ठा, लगन और निःस्वार्थ भावसे १८ वर्षोंतक की है, कार्यरत कर्मचारियोंकी स्थिति क्या होगी, यह भुक्त-भोगी ही जानते हैं।

अनेक सङ्कायोंकी दुर्वस्थापर भी ध्यान नहीं है। किसी विभाग या शिक्षकके कार्य-प्रणालीके निरीक्षणकी ओर कभी ध्यान नहीं दिया जाता।

कहा जाता है, केवल नियुक्तियोंपर ही उनका दिल-दिमाग केन्द्रित है। डाक्टर श्रीमालीने कई परिवारोंके अनेक व्यक्तियोंकी नियुक्तियाँ कीं, उनमें एक ही विभागमें पति प्रोफेसर और पत्नी रीडर पदपर प्रतिष्ठित है, लगता है, वही क्रम अब भी जारी है। अभिप्सित व्यक्तिके लिए पदका नव-निर्माण कर उसे उस पदपर प्रतिष्ठित किया है। यह भी कहा जाता है कि चयन समितिमें योग्यतम व्यक्तियोंको साक्षात्कारके लिए भी नहीं बुलाया गया है।

पेन्शनमें घोर अनियमितता

"जैसा कि मालवीयजी महाराजने कहा था—"मेरे पास बराबर बने रहनेसे मलिन विचारवाले व्यक्ति स्वभावतः तुमसे ईर्ष्या करते होंगे—उनके बतलाये श्लोकमें वर्णित, उत्तम, मध्यम, अधमकी व्याख्या बतलाते हुए चतुर्थ चरण 'ये निघ्नन्ति निरर्थकं परिहितं ते केन जानी महे' जो व्यर्थ दूसरेके हित का हनन करता है, उसे नीतिकार कुछ कहनेमें असमर्थ है, अतः तुम्हें अपना विचार शुद्ध रखना चाहिए।"

समय-समयपर विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा मुझे अनेक प्रकारसे उत्पीड़ित किया गया है, उसका उल्लेख पहले आ चुका है, अन्तमें मुझे पेन्शनके सम्बन्धमें भी की गयी अनियमितताका उल्लेख भी सामयिक होगा, जो तत्कालीन कुलपति डाक्टर हरिनारायणको सम्बोधित अधोलिखित अपील और

(6) The Executive Council has also granted all the dues last year whose services were terminated by their respective guilts.

3. WRONG CALCULATION OF PENSION & SALARY :

My pension has been calculated on the basis of the salary last drawn on 1.2.1960. As I was in continuous service of the University the salary may kindly granted from 1.2.1960 to 1.1.1966 on basis of the last salary drawn on 1.1.66 accordingly, so also the pension should be granted.

4. SALARY IN LIEU OF PRIVILEGE LEAVE :

During my service from April 1929, I had taken P. L. nearly seven months only, so the salary o. the rest period e. i. 3 years and 2 months also be granted.

In connection, I am sorry to request that I had not given any chance to place the plea earlier therefore it is not my fault in this matter.

5. INTEREST ON B. H. U. CONTRIBUTION :

The B. H. U. Contribution, taken by me has been realised alongwith interest while, asking me to refund the B. H. U. Contribution is wholly iustified, levying interest on the account appears like a great penality on me and tells badly upon my meagre economic resources. As though this were not enough my pension too for the period September 6, 1967 to December 3, 1978, has been deducted, which should also be restered in the special circumstances.

Keeping in view the gravity, seriousness and my meriterious services rendered to the Great Founder of the University with unflagging devotion and fidelity, you will be pleased to order on the following points, so that the justice be done to me :—

(a) Resteration of service from April 1929, insteat of 1931.
(b) To grant salary from 1.2.1960 to 1.1.1966.
(c) The calculation of pension on the basis of last salary drawn on 1.1.1966 instead of 1.2.1960.
(d) To grant salary in lieu of P. L. for 3 years and 2 months.
(e) To execuse the interest deducted on the B. H. U. Contribution & also allow the pension for the period from 6.9.67 to 31.12.1979.

I was with Pandit Malaviyaji in 1929. The salary was shown in the detail of printed Budget of the University. My service book also indicated that I was transferred from the office of the Vice-Chancellor before 1931. It indicates that I was in the service of the University before 1931. Thee after the pension should be calculated from April 1929 instead of since 1931.

2. EXTRAORDINARY LEAVE WITHOUT PAY IS NOT JUSTIFIED :

(1) My services were not terminated by the Executive Council' The so-called termination was based on forge and fraudlent actions of the immediate efficera of the University in the name of the Executive Council.

(2) Inspite of the order of the Executive Council (O. R. No. 200 (3) dated 17.1.1959) and the order of the Court (that charges should not be taken from Pt. S. D. Singh till the case is decided, (as stated separately appendix 'A'). You will realise, how forge, fraudulent and deceitful were their actions. Therefore, on going through all, you will feel the gravity and seriousness of the matter in order to execute necessarv action in this respect.

(3) In 1967, an assuranee was given to me that :–

"Prior service upto the age of superanuation will treated as continuous and I will be treated to have retired".

And to fulfill the assurance, I was appointed as Manager of Shri Vishwanath Temple of the University in the Special circumstances during the pendency of my Two Appeals before the Law Court under consideration. I did not misused that order by producing before the low court and getting success in my Appeals. (The matter of assurance was mentioned in my letter dated 27.10.68 on which the Executive Council passed only one part of the prayer (R. N. 353) dated 21.1.69 and for remaing part I have sent several reminders).

(4) The Government has compensated all the dues to whose services were terminated or who have been harassed by the previous Government.

(5) In view of Re-appointment and the assurance given to me as well as my service were not terminated by the Exectuive Council, I was in the continuous service of the University, henceforth the question of granting extra-ordinary leave without pay does not arise.

A correct and faithful implementation of the Executive Council resolution dated 12.8.1977 necessitates–

1. The notional fixation of pay of Shri Shiva Dhani Singh on 31.12.1965 which is the date of his retirement.
2. Calculation of his pension on the basis of the pay that he would have drawn during the three years ending en 31. 12. 1965.
3. Calculation of his gratuity on the basis of the pay that he would have drawn during the last three years ending on 31.12.1965.

We therefore reiterate our reconsideration that for the purpose of calculation of his pension and gratuity the monthly ennoluments. that he would have drawn during the period from 1.1.1960 to 31.12.1965 should be taken into consideration and that his pay for this purpose should notionally be taken as indicated by us (in paragraph 21 (3) of our report).

We also reiterate our recommendation that the amount of Rs. 3295/– 82 recovered from him as interest on B.H.U. contribution should be refunded to him as the recovery of this amount was not justified.

The question of making a cash payment of Rs. 1400/–in lieu o. unvailed priviledge leave may be considered by the Vice Chancellor.

Sd/– K. D. Tewari 6/6/80

S. Smaskandan 6/6/80

इस प्रकार दो सदस्योंके स्पष्ट निर्णयको प्रशासनने इक्जिक्युटिव कौंसिलके समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया, दूसरी ओर एक अध्यापकके दो वर्षोंको अवकाशसे पुनरागमनपर उन दो वर्षोंके वेतनकी मांग को थी, जिसे इस प्रशासनकी इक्जिक्युटिव कौंसिलने दो बार अस्वीकार कर दी थी। किन्तु जब उक्त अध्यापक स्वयं कौंसिलके मनोनीत सदस्य चुने गये, तब तीसरी बार उन दो वर्षोंके वेतनसे उन्हें लाभान्वित किया गया।

भ्रष्ट प्रशासनकी स्वेच्छाचारिता इतनी भयावह हो चुकी है कहा जाता है कि दो मनोनीत सदस्योंने कौंसिलमें उपस्थित नहीं हो सकेंगे, जबतक भ्रष्ट प्रशासन बदला नहीं जायगा।

इस प्रकार मेरा मामला अबतक अनिर्णीत पड़ा है।

प्रशासनकी स्वेच्छारिताके कारण ही कर्मचारियोंके सैकड़ों मामले न्यायालयोंमें विचाराधीन पड़े हैं। जिससे प्रशासनको भत्ता आदिकी विशेष सुविधा मिलती है।

डाक्टर इकबालनारायण

डाक्टर हरीनारायणके बाद डाक्टर इकबालनारायणजी कुलपति मनोनीत किये गये। वे व्यवहार कुशल और मिलनसार भी थे। उनके समयमें कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी।

प्रो० डाक्टर रघुनाथ प्रसाद रस्तोगी

वर्तमान प्रशासनकी गतिविधिका सम्यक् ज्ञान नीचेके पत्राचारसे स्पष्ट होगा—

मैंने अपनी कामना सिद्धि-हेतु १० जून १९८७ को उनका दर्शन किया था—अपना पत्रक प्रस्तुतकर कुछ मौखिक निवेदन प्रस्तुत किया था—प्रेमसे उन्होंने सुना—पत्रकपर कुछ नोट किया।

And for this act of kindness, I shall ever remain grateful to you sir.

Yours faithfully,

Date : 27.6.1978 (Shiva Dhani Singh)

B. 1/61, Assi, Varanasi.

उपरोक्त अपीलपर डाक्टर हरीनारायणजीने प्रो० कृष्णबहादुर लाल, पण्डित कृष्णदेव तिवारी तथा श्री एस० शोभस्कन्दजीकी तीन सदस्योय समिति बनायी थी--जिनमें एक के वैमत्य पर दो सदस्यों ने उनके विचारको खण्डन करते हुए नीचे लिखा है एडीशनल नोटमें स्पष्ट कर दिया।

ADDITIONAL NOTE

We have read the dissenting note of Prof. Krishna Bahadur, we have not adduced any reason in support of his observations. We have, however re-examined the whole matter in the light of his observations and we regret that we do not fined overselves in agreement with him. The stand taken by him is, in our opinion, not correct.

The Resolution of the Executive Commity dated 12.8.1977 as modifed & Res. dated 27.10.1977 does not call for any interpretation. There is no ambignity in it The benefit of pensionary benefits flow to Shri Shiva Dhani Singh from this resolution. We have only to see whether the decision taken by the E. C. in this resolution has been implemented correctly and in accordance with the spirit and intention of the resolution or not.

The University accepted the option from of Shri Shiva Dhani Singh in respect of the General Provident Fund-Cum. Pension-cum-gratuity scheme under the G. U. R. B. Rules only in 1977. Similarly the university can also decide that the calculation of Pension should be made on the basis of the salary that he should have drawn during the last three years of his service ending 31.12.1965.

If we calculate the pension on the basis of the salary actually drawn by him during the three years ending 1.2.1960 (as has been done now), we will have to treat this date as the date of his retirement. This will be violations of the E. C. resolution which has allowed him the benefits of pension treating the date of his retirement as 31.12.1965.

Moreover, the General Universities Retirement Benefit Rules came into effect from 1.4.1964 only calculating the pension on the basis of the salary drawn prior to 1.4.1965 may be viewed as a violation of the G. U. R. B. Rules.

These are the important points which, in our opinion deserve serious consideration.

कठोर होकर भी १८ वर्षोंतक अहर्निश निःस्वार्थ भावसे छायाकी भाँति उनके निकट बना रहा और वे मुझपर पुत्रोंसे भी अधिक स्नेह रखते थे।

इन सेवाओंके प्रतिदान या पुरस्कारकी भी मैंने कभी कोई कामना नहीं की। जैसा स्वतन्त्रता संग्रामके सेनानी सरकार द्वारा ससम्मान पुरस्कृत होते हैं।

किन्तु सम्प्रति शक्ति सामर्थविहीन ८५ वर्षीय अपनी वृद्धावस्थामें यह प्रथम बार और केवल आपसे कामना या याचनाके लिए स्वयं बाध्य हो रहा हूँ कि इस विश्वविद्यालयसे सर्वोच्च स्वर्णपदक प्राप्त फिलोसफर, कुछ काल पर्यन्त शिक्षक स्व० डाक्टर राजवंश सिंहके निधनके बाद गत ८ वर्षोंसे मेरी अनाथ विधवा पुत्री पुष्पा सिंह अपने तीन बच्चों के साथ मेरे ही साथ जीवन यापन कर रही है—जिसका कष्ट मुझे प्रतिक्षण उद्वेलितकर रहा है, चित्त अशान्त रहता है।

ऐसी विषम परिस्थितिमें श्रीमान्से विनम्र प्रार्थना है कि संस्थापक कुलपतिकी निःस्वार्थ मेरी सेवाओंकी दृष्टिमें रखते हुए अपने विशेषाधिकार प्रयोग द्वारा पुष्पा सिंहको उसके योग्यतानुसार उपयुक्त कोई पद प्रदानकर मेरे कष्टका निवारण तथा संस्थापक कुलपतिकी इस भावनाको उजागर करें, "अनाथाः विधवा रक्ष्याः"

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि स्वयं संस्थापक कुलपतिने कई मामलोंमें विशेषाधिकारसे उत्पीड़ितोंको उपकृत किया था। कुलपति डाक्टर श्रीमालीने भी एक कर्मचारीकी विधवाकी नियुक्तिका न केवल आदेश दिया बल्कि उसके बच्चोंकी निःशुल्क शिक्षाकी मुक्तिका आदेश किया था जो शिक्षा पा रहे हैं।

मुझे आशा तथा पूर्ण विश्वास है कि उपरोक्त परम्पराके अनुसार भी मेरी न्यायोचित प्रार्थनापर शीघ्र स्वीकृति प्रदानकर मुझे अनुगृहीत करनेकी कृपा करेंगे। कष्टके लिए क्षमा.....

विशेष विनयावनत।

२५-८-८७

आपका कृपाकांक्षी
(शिवधनी सिंह)
भू० पू० निजी सहायक
पण्डित मदन मोहन मालवीयजी
बी० १/६१ अस्सी, वाराणसी।

संलग्न प्रतिलिपियाँ
के० वी० रामास्वामी अइयाङ्गर (तिरुपति)
'तीस दिन' पुस्तकसे उद्धृत।
पण्डित जवाहर लाल नेहरू
श्रीमती गोदावरी बाई।

अत्यावश्यक

श्रीमान् कुलपति महोदय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
श्रीमान्

निवेदन है कि गत १० जून तथा २५ अगस्त १९८७ के अपने प्रार्थना पत्रोंकी ओर आपका सादर ध्यान आकृष्ट करनेके लिए मुझे क्षमा करेंगे, जिनमें मैंने अपनी विधवा कन्या श्रीमती पुष्पा सिंह

उनसे अगस्तमें मिलना चाहा—उन्होंने कहला दिया कि "मुझे जो कुछ कहना है, लिखकर दें, देखूँगा।

२५ अगस्त १९८७ का मेरा पत्र इस प्रकार है—

गोपनीय और अत्यावश्यक

सेवामें,

श्रीमान् प्रो-डाक्टर रघुनाथ प्रसाद रस्तोगी

कुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

आदरणीय महोदय,

मैंने गत १० जून १९८७ को श्रीमान्के दर्शनका सौभाग्य प्राप्तकर अपनी कुछ समस्याके समाधानके लिए पत्रक भी प्रदान किया था।

यह दुर्भाग्य और सन्तापका विषय है कि मेरी पुत्री श्रीमती पुष्पा सिंह एम० ए०, बी० एड०, सिलाई-कटाई एवं ड्राइङ्ग डिप्लोमा प्राप्तकर स्थानीय एक विद्यालयमें लगभग १० वर्षोंका अध्यापन अनुभव तथा गत ८ वर्षोंसे मिडिल आठवें कक्षाकी सफल अध्यापिका, जिसका परीक्षा परिणाम प्रतिवर्ष प्रायः शत-प्रतिशत घोषित होता आ रहा है, उसे सेन्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूलमें ड्राइङ्ग और नर्सरी विभागके पदोंके लिए २२ जूनको होनेवाले इण्टरव्यूके लिए किसी भी पद नर्सरी विभागके लिए भी इण्टरव्यूके लिए आहूत न करना, चयन समितिके समक्ष प्रस्तुत होनेका अवसर न देना प्रधानाचार्याकी स्वेच्छाचारिताका ज्वलन्त उदाहरण है, जहाँके गतिविधिकी मेरी पूरी जानकारी और आशङ्काके कारण ही गत १० जूनको आपको पत्रक दिया था अस्तु, यह प्रश्न श्रीमान्के अनुसन्धानका विषय है।

उपरोक्त पत्रमें मैंने श्रीमान्से कुछ विशेष जिज्ञासाका भी उल्लेख किया था, जिसकी फल श्रुतिकी प्रतिदिन प्रतिक्षामें हूँ।

यह भी निवेदन किया था कि अपने विस्तृत जीवनमें मैंने कभी कोई कामना नहीं की है—यहाँ तककी संस्थापक कुलपतिसे भी कामना नहीं की थी बल्कि स्वयं उन्होंने अपनी सेवाके लिए इच्छा व्यक्तकी थी।

अपने विस्तृत कार्यों एवं घटनाओंके तथ्यपूर्ण वृत्तिकी विशद जानकारीके लिए आपका सादर ध्यान आकृष्ट करनेके लिए क्षमा चाहता हूँ—जो संलग्न पत्रोंकी प्रतिलिपियोंसे परिलक्षित होगा।

जब देश साम्प्रदायिक विषाक्त वातावरणकी ज्वालामें जल रहा था स्वामी श्रद्धानन्दकी हत्याकर दी गयी थी, मालवीयजी महाराजपर कुदृष्टि थी, कुलपति निवासपर रात्रिमें फाटकपर दो गोलियाँ चलायी गयी थीं, उस समय यह आवश्यक समझा गया कि उनके पास बराबर किसीकी उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक है।

कुलपति मालवीयजी महाराज ब्रह्मचारी वेशमें छात्रावाससे ही मुझे जानते थे—बातें होती रहती थीं, सन् १९२८ में उन्होंने जिज्ञासा की कि 'मेरी इच्छा है कि तुम मेरे साथ रहो—यद्यपि मेरे साथ रहनेमें कष्ट ही होगा।' इससे बढ़कर मुझे किस कामनाकी अपेक्षा हो सकती थी ? अपनी साहित्याचार्यकी परीक्षाका परित्यागकर उनके साथ रहने लगा।

महात्मा गाँधी जब मालवीयजी महाराजसे मिलने आये थे, तब उन्होंने भी सङ्केत किया था कि 'इन्हें (मालवीयजीको) कभी अकेले न रहने देना' तबसे इसे मन्त्र की भाँति ग्रहणकर लिया।

इस प्रकार संस्थापक कुलपतिका विश्वास पात्र बनकर शिष्य, सहायक, रक्षक, सलाहकार, कभी

उन्हें क्रूरतापूर्वक उत्पीड़ित किया जाता है—जैसा गत सन् १९८६ के वसन्त पञ्चमी–शिलान्यासोत्सव-के दिन कुलपति भवनके समक्ष उनकी उपस्थितिमें छात्रसङ्घके महामन्त्री श्री ओमप्रकाश सिंहपर बर्बरतापूर्वक प्रहार हुआ था—कई मास उन्हें स्वस्थ होनेमें लगा।

विश्वविद्यालयमें अनेक काण्ड हुए, संस्थाको बन्द भी करना पड़ा था किन्तु ऐसा वीभत्स, जघन्य काण्ड कभी नहीं हुआ था, जो प्रशासनकी अक्षमता और शिक्षा मन्त्रालयकी घोर उपेक्षाका द्योतक है, जिसपर विश्वविद्यालय प्रशासनका पूर्ण दायित्व है।

सरकारी हस्तक्षेप

मनोनीत स्वाभिमानी कुलपति विश्वविद्यालय प्रशासनमें शिक्षा मन्त्रालयका हस्तक्षेप कथमपि स्वीकार नहीं कर सकते थे जैसे आचार्य नरेन्द्र देवजी, डाक्टर सी० पी० रामस्वामी अय्यर, डाक्टर अमर-चन्द जोशी, डाक्टर एम० एल० धर आदि हस्तक्षेप स्वीकार न कर बीमारी या अन्य कारणसे त्याग पत्र देकर चले गये।

मनोनीत कुलपति मात्र क्रीत दासकी भाँति हैं, उनमें स्वयं निर्णायक बुद्धिके अभावमें परमुखापेक्षी और दूर-दर्शिता, सहृदयता, दयालुता, मिलनसारिता आदिका सर्वथा अभाव देखा जाता है। वे अपने निवासमें फाटकपर ताला बन्द रहनेपर भी पुलिसके संरक्षणमें बन्द रहते हैं। आवश्यक परामर्शके लिए कुलपतिको प्रत्येक महीनेमें कई बार दिल्लीकी यात्रा करनी पड़ती है। यदा-कदा कौन्सिल आदिकी मीटिङ्ग भी दिल्लीमें हुआ करती है।

न्याय-निर्णय देनेमें असमर्थताके कारण सैकड़ों मामले विभिन्न न्यायालयोंमें विचाराधीन हैं, जिससे प्रशासनको अनेक प्रकारके भत्ता आदि लाभका मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

भ्रष्ट मन्त्रिमण्डलसे शासनका नाश होना बतलाया गया है।

"दौर्मंत्र्यान्नृपतिर्विनश्यति"

अबतक यहाँ जितने कुलपति आये, उसमें क्रूरतम भी रहे, जिनके अनाचार-अत्याचारसे सभी त्रस्त थे, उससे कितने ही छात्रों और कर्मचारियोंका निष्कासन भी हुआ था। उन कृत्योंपर अन्य स्थानोंपर सम्भवतः बल प्रयोग भी किया जा सकता था—उन्हें चोट पहुँचायी जा सकती थी किन्तु इतना सब होनेपर भी कोई कहनेका साहस नहीं कर सकता कि काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके विनीत और अनुशासित छात्र या अन्य किसीने किसी कुलपतिके विरुद्ध बल प्रयोग किया हो। फिर बाह्याडम्बरकी क्या आवश्यकता है ?

ऋषि निर्मित इस विद्या मन्दिरके अनुरूप बननेकी चेष्टा किसी भी अधिकारीके लिए उपयुक्त है, जिनकी भावना और आदर्श यह था :—

"श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्॥
यद्यदात्मनि चैच्छेत् तत्परस्यापि चिन्तयेत्।
जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत कथं सोन्यं प्रघातयेत्॥"

धर्मके निचोड़को सुनिये और उसे धारण करें—कि अपनेसे विरुद्ध आचरण दूसरोंके लिए न किया जाय, जो अपने लिए इच्छा करे वही दूसरोंके लिए भी चिन्ता करे। यदि स्वयं जीनेकी इच्छा

एम० ए० की सेण्ट्रल हिन्दू गर्ल्सके नर्सरी विभागके लिए भी अनुपयुक्त समझकर सेण्ट्रल हिन्दू बालिका विद्यालय द्वारा उसे साक्षात्कारसे आमन्त्रित न किये जानेका उल्लेख है।

यह भी प्रार्थना की गयी है कि चूँकि मेरी पुत्री अपने तीन बच्चोंके साथ मेरे संरक्षणमें जीवन यापनकर रही है, जो मेरी ८६ वर्षीय वृद्धावस्थामें महती चिन्ताका कारण बनी हुई है, जिसके लिए अपने विस्तृत जीवनमें यह प्रथम कामना या याचना केवल आपसे की है कि—

१—संस्थापक कुलपतिकी १८ वर्षोंकी निरन्तर अहर्निश-निःस्वार्थ सेवाके प्रतिदान स्वरूप,

२—ऐसी विषम परिस्थितिमें विश्वविद्यालय द्वारा प्रचलित परम्परानुसार, और

३—महामनाकी इस उदार-भावना 'अनाथाः विधवा रक्ष्याः'को दृष्टिमें रखते हुए पुष्पा सिंहको कोई उपयुक्त स्थान प्रदान कर मेरा कष्ट निवारण करें।

यह अत्यन्त दुःखका विषय है कि गत सात मास पूर्वकी गयी मेरी नगण्य प्रार्थना अबतक अनिर्णीतक कार्यालयमें पड़ी है।

अतः आपसे विनम्र निवेदन है कि आप कृपाकर अपनी सहज दयालुतानुसार अपनी स्वीकृति प्रदानकर मुझे शीघ्र चिन्ता-मुक्त करानेकी दया करें।

विनतावनत,

आपका कृपाभिलाषी
शिवधनी सिंह
(भू० पू० निजी सहायक
पण्डित मदन मोहन मालवीय)

बी० १/६१ अस्सी,
वाराणसी
४-१-८८

उन्होंने उपरोक्त तीनों पत्र रजिस्ट्रारके पास भेज दिया—मैं प्रायः सेण्ट्रल आफिसका चक्कर काटता रहा और मुझे आश्वासन भी मिलता है किन्तु फल श्रुति नहीं हो सकी।

उपरोक्त तीनों पत्र या मेरी कामनाकी सिद्धिके लिए रजिस्ट्रारकी आख्याका कोई प्रश्न ही नहीं है, इसमें केवल कुलपतिके स्वयंकी स्वीकृतिकी अपेक्षा थी, फिर भी यदि उन्होंने रजिस्ट्रारको महत्त्व दिया तो यह भी प्रश्न उठता है कि १० जून '८७ से ४ जनवरी या उसके बाद भी रजिस्ट्रारसे यह जिज्ञासा नहीं की गयी कि इतने दिनोंतक यह मामला अनिर्णीत क्यों पड़ा है?

डाक्टर अमरचन्द जोशीके समयमें यह कठोर निर्देश था कि पत्रावलियोंका निस्तारण एक सप्ताहसे अधिक एक टेबुलपर नहीं लगाना चाहिए।

और ऐसा व्यवहार उस व्यक्तिके विषयमें हो रहा है, जिसने संस्थापक कुलपतिकी छायामें १८ वर्षोंतक जीवन व्यतीत किया है और उसने विश्वविद्यालयकी प्रशासनिक तथा अन्य व्यवस्थामें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। ऐसा आचरण न केवल प्रशासनकी उपेक्षा, स्वेच्छाचारिता और कर्त्तव्य-हीनताका द्योतक है, प्रत्युत घोर भ्रष्टाचारका द्योतक भी है।

सम्प्रति मेरी अवस्था ८६ वर्षकी है, अस्वस्थ और निष्क्रिय हूँ किन्तु ऐसी दुःखद स्थिति और व्यवहार इतर जनों, छात्रों, कर्मचारियोंकी सहनशीलताको उद्वेलित करना स्वाभाविक हो जाता है, फलतः घेराव, हड़ताल, तोड़-फोड़का आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है। पुलिसका आश्रय लेकर

प्रशासनिक भ्रष्टाचारका कारण

प्रशासनमें पहले योग्य प्रोफेसरोंको ही प्रश्रय दिया जाता था जो अपने सद्व्यवहार और अनुशासनमें दक्षता रखते थे उन्हें ही कुलसचिवका भार दिया जाता था, जैसे—फिलासफर–प्रोफेसर इन्द्रदेव तिवारी, इतिहासज्ञ—पण्डित गङ्गाप्रसाद मेहता, आंग्ल प्रवक्ता बादमें अधिवक्ता, सहायक रजिस्ट्रार-पण्डित कृष्णदेव तिवारी, विज्ञानवेत्ता–प्रोफेसर डा० ए० बी० मिश्र, कृषिवेत्ता–प्रोफेसर डा० काशीनरेश लाल, फिलासफर—श्री शिवनन्दनलाल प्रभृति अनुभवी विद्वान् रजिस्ट्रार पदको सुशोभित करते थे—आज वहाँ शैक्षणिक क्षेत्रमें शून्य, अनुभवहीन, टाइपिस्ट आदि इन पदोंपर प्रतिष्ठित हैं, जहाँसे भ्रष्टाचारका उद्भव होता है, जो अधिकारी आये, अपने-अपने आश्रितोंको स्थान प्रदान करनेमें चूक नहीं की।

विश्वविद्यालयमें व्याप्त भ्रष्टाचार और अराजकताके विषयमें स्वयं कुलाधिपति भूतपूर्व काशी-नरेश डाक्टर विभूतिनारायण सिंहजी जब भी विश्वविद्यालयमें विशेष अवसरोंपर बुलाये जाते हैं, अपनी कटु छींटाकशी करने, घोर असन्तोष प्रकट करनेसे नहीं चूकते, फिर भी प्रशासनाधिकारियों या शिक्षा मन्त्रालयका ध्यान इसकी दुर्दशापर मौन है।

आर्थिक व्यवस्था

सन् १९५१ के पूर्वतक विश्वविद्यालयका बजट सर्वोच्च व्यवस्थापिका सभा-कोर्ट, वित्त-समिति तथा कौन्सिलकी स्वीकृति मिलनेपर सर्वसाधारणकी जानकारीके लिए प्रकाशित कर उन दाताओं, जिनकी उदार सहायतासे विश्वविद्यालयकी रचना हो सकी थी, उनके प्रतिनिधियों तथा समाचार पत्रों द्वारा सबको जानकारी हो जाती थी।

अब सिवाय सरकार और विश्वविद्यालय प्रशासनके अतिरिक्त किसीको कुछ पता नहीं—कब कोर्टकी मीटिङ्गमें पास किया गया।

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयमें हिसाब-किताबमें घोटाला होनेकी बात विगत दिनों समाचार पत्रोंमें प्रकाशित भी हो चुकी है, इन सब बातोंसे भारतीय जनता यह समझनेके लिए बाध्य है कि सम्बन्धित अधिकारी प्रायः करोड़ोंकी धनराशिसे लाभान्वित होते होंगे।

प्राचीन मान्यताएँ विलुप्त

सन् १९५१ तक विश्वविद्यालयकी यह परम्परा अबाधरूपसे प्रतिवर्ष व्यवहृत होती थी, जो प्रत्येक सत्रारम्भके अवसरपर नवागत छात्रोंके स्वागतमें परिसरके सभी वर्गके लोग सम्मिलित होते थे, जिसमें कुलपति द्वारा प्रेरणा दी जाती थी "सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः" आदि तथा प्रत्येक वार्षिकोत्सवपर छात्रोंको उपाधि-प्रदान करते समय उन्हें कार्य-क्षेत्रमें प्रविष्ट होने तथा विश्व-विद्यालयके सुयशको मलिन न होने देनेकी प्रतिज्ञाके रूपमें यह घोषित किया जाता था—"श्रिया देयं, ह्रिया देयं, भिया देयं" उपनिषद् वाक्योंके अनुसार "यानि अस्माकं सुचरितानि—तान्येव त्वया उपा-स्यानि नो इतराणि। जो हमारे अच्छे चरित हैं, उन्हें ही अनुसरण किया जाना चाहिए अन्य नहीं।" इससे स्नातकोंको प्रेरणा मिलती थी और वे स्नातक देशके प्रत्येक क्षेत्रमें भारतीय प्रशासनमें भी भाग लेकर विश्वविद्यालयकी यश-वृद्धि की है।

वे प्रेरणा-प्रदायक परम्परा अब सर्वथा विलुप्त हो गयी और उच्छृङ्खल वातावरणका स्थान बन गया।

है तो दूसरोंको मारनेकी इच्छा क्यों करें ? स्वार्थ रहित हो इस आदर्शको अपनानेमें किसीको क्या भय हो सकता है ?

मनोनीत कुलपति असफल रहे

निष्कर्ष यह निकला कि सन् १९५० तक अबाधित रूपसे एक लोकतान्त्रिक विधानसे चुने हुए कुलपतियों द्वारा विश्वविद्यालयका सञ्चालन होता रहा—वे स्वभावतः त्यागी और आदर्श होते थे, उससे देशको यहाँके प्रतिभा सम्पन्न स्नातकोंकी विविध क्षेत्रोंमें सेवा उपलब्ध थी। सन् १९५८ के अध्यादेशरूपी विधानसे सरकारी मनोनयन प्रणाली अपनाकर विश्वविद्यालयकी गरिमा नष्ट कर दी गयी। सम्परीक्षात्मक रूपसे अबतक जितने भी कुलपति मनोनीत किये गये, उनसे विश्वविद्यालयको कोई लाभ नहीं पहुँचा। वे अपने ज्ञानका प्रकाश नहीं फैला सके किन्तु स्वयं लाभान्वित अवश्य हुये। विश्वविद्यालयसे कोई प्रतिभा सम्पन्न स्नातक देशको नहीं मिला, जिससे विश्वविद्यालयकी कीर्ति बढ़े, जिसपर इस कार्यके लिए प्रतिवर्ष करोड़ोंकी धनराशि बहायी जाती है।

यह परिपाटी देखी गयी है कि जो भी मनोनीत कुलपति आते हैं उनकी दृष्टिमें पूर्वके व्यवहृत कार्य या क्रम उनकी दृष्टिमें अनावश्यक होता है। वे अपने व्यक्तियोंको येन केन प्रकारेण स्थान देनेमें ही अपना कर्तव्य समझते हैं इससे अध्यापकोंमें भी चाटुकारिताको बल मिलता है।

अध्यापक कर्मचारी

ऐसे अनेक अर्थलोलुप अध्यापक हैं, जो वेतनको पेन्शन समझते हैं और अन्य व्यवसायोंमें अपना मनोयोग देते हैं। छात्रोंको देनेके लिए, उनकी ज्ञान-पिपासा शान्त करनेकी क्षमताका अभाव होनेसे किसी अन्य व्यवसायमें लगे रहते हैं। छात्रोंकी दृष्टिमें ऐसे अध्यापक प्रशंसनीय नहीं हो सकते।

चयन समितियाँ

अधिकारी वर्ग प्रायः अपने अभिप्सित व्यक्तियोंको प्राथमिक व्यवस्थामें अस्थायी नियुक्तिकर देते हैं। बादमें पदको विज्ञापितकर साक्षात्कारका आश्रय लेकर उसीकी पुष्टिकर देते हैं और योग्य, अनुभवी व्यक्तियोंको समय और धनको नष्टकर वापस होना पड़ता है।

मनोनीत कुलपतियोंको सरकारका मुखापेक्षी होना पड़ता है, प्रायः प्रति सप्ताह कुलपतिकी यात्रा शिक्षा मन्त्रालयतक रहती है—भत्ता मिलता ही होगा। उनकी स्वतन्त्र भावनाको ठेस पहुँचाती है, उनमें चारित्रिक बल नहीं रह जाता और वे धन संग्रहमें ही अपना समय व्यतीतकर देते हैं—केवल भौतिकवादमें ही लिप्सा रहती है। और यही कारण है कि अब अन्य जनोंकी भाँति कुलपतियोंको भी भ्रष्टाचारके आरोपमें निष्कासित किये जानेका समाचार मिल रहा है। संस्थाके सर्वोच्च अधिकारीके चरित्रहीन होनेपर छात्रोंपर उसका कुप्रभाव अवश्यम्भावी ही है 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरे जनाः। गुणेर्हिसर्वत्र पदं निधीयते।' स्वयं चान्सलर डाक्टर विभूतिनारायण सिंहने अनेक अवसरोंपर विश्वविद्यालयके दुःखद स्थितिका समय-समयपर उद्घोष किया है—किन्तु अधिकारीगण सुन लेते हैं और विजिटरके रूपमें राष्ट्रपति महोदय भी इस भयावह स्थितिमें अपने अधिकारका प्रयोग करना पसन्द नहीं करते, जिसपर प्रतिवर्ष प्रायः अरबोंकी धनराशि, जो जनसाधारणसे कर रूपमें प्राप्त है, बहायी जाती है।

राष्ट्रीय अपमान

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयमें पधारना राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री अपना गौरव समझते थे—गांधीजी तो उसे तीर्थस्थान मानते थे। किन्तु यह दुर्भाग्य है कि वर्तमान प्रधान मन्त्री दो बार काशी पधारनेपर इस विश्वविद्यालयमें नहीं आ सके।

गत दो वर्ष पूर्व महामहिम राष्ट्रपति—जो विश्वविद्यालयके विजिटर भी हैं, चहारदीवारीसे गुजरते हुए ही टिकरी ग्राम गये थे किन्तु इस विश्वविद्यालयमें नहीं पधार सके जो सरकारी सङ्कुचित और उपेक्षित दृष्टिकोणका परिचायक है और ऋषि निर्मित विश्वविद्यालयका घोर राष्ट्रीय अपमान-कारक भी है।

विश्वविद्यालयकी मृत्यु घोषणा सफल :

मालवीयजी महाराजने वाइसराय द्वारा काशी हिन्दूविश्वविद्यालयको संरक्षण प्रदान करनेका संवाद अपने परम स्नेही राष्ट्ररत्न स्व० बाबू शिवप्रसाद गुप्तको सुनाया, तत्क्षण ही उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्तकी थी—

'यह विश्वविद्यालयकी मृत्यु घोषणा है'

७२ वर्ष की गयी वह घोषणा आज अक्षरशः सत्य निकली। विश्वविद्यालय निष्प्राण हो चुका है, जिसपर देशकी विपुल धनराशि अपव्यय हो रही है यदि सूचारुरूपसे उसे सँभालनेकी क्षमता नहीं है तो उसे बन्द कर देना अधिक उपयुक्त होगा। देशका धन व्यर्थ क्यों बहाया जाय ?

शिक्षक वर्ग क्रीतदास हो गया है, उसमें अब इतनी हिम्मत नहीं रह गयी है कि वह स्वेच्छाचारिताके विरुद्ध आवाज उठा सके, ऐसी दुःखद स्थिति उस विश्वविद्यालयकी है, जिसने स्वातन्त्र्य संग्राममें अपनी आहुति दी है, उसकी स्वायत्तता छीन ली गयी है और देशका प्रबुद्ध वर्ग, संस्थाएँ, समाचार पत्र मूक दर्शक हैं, लगता है 'निवीर्रंभुर्वीतलम्'

ब्रिटिश शासनने विश्वविद्यालय सञ्चालनमें कभी हस्तक्षेप नहीं किया। भले ही छात्रोंके झण्डा फहराने और स्वयं कुलपतिके कारागारमें बन्दी रहनेके कारण कुछ दिनोंके लिए नगण्य सरकारी अनुदान रोक देना पड़ा था किन्तु उसके विरुद्ध कभी अध्यादेश प्रसारित करनेका साहस नहीं हुआ था और सन् १९१६ से १९५७ तक अबाधित रूपसे निर्विघ्न कार्य सम्पादन होता रहा। सन् १९५८ से विश्वविद्यालय निष्प्राण हो गया।

ऊपरके तथ्योंसे स्पष्ट है कि दिल्लीके षड्यन्त्रसे उद्भूत मुदालियर तथा गजेन्द्र गड़कर कमीशनोंने भ्रष्ट और अनुचित संस्तुति देकर विश्वविद्यालयके गौरवको नष्टकर दिया। उसकी स्वायत्तताका अपरहणकर लिया गया—वह स्वतन्त्र न होकर सरकारका एक विभाग बन गया जैसा कि सन् १९५८ में संसदमें आशङ्का व्यक्त की गयी थी, यह सब उन्हीं कमीशनोंकी देन है।

सुझाव :

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयका सञ्चालन मात्र प्रख्यात विद्वान् या न्यायविद्से ही सम्भव नहीं है। कुलपतिमें अपनी संस्कृतिका सम्यक् ज्ञान, सहिष्णुता, सहृदयता, उदारता—आदि गुणोंसे वर्तमान उच्छृङ्खल वातावरणके विभिन्न परिस्थियोंके समाधानमें दक्षता भी होना परमावश्यक है।

संस्थापक कुलपति महर्षि, मालवीयजीका कथन था कि 'यहाँ वही व्यक्ति सफलता प्राप्तकर सकता है जिसमें त्यागकी भावना हो।'

सम्प्रति इसका सम्यक् सञ्चालन उन विद्वानोंसे ही सम्भव हो सकता है, जो प्रायः चतुर्थांश शताब्दीतक यहाँके रग-रगसे परिचित रहा है और अपनी प्रतिभा, वैदुष्य तथा प्रशासनिक क्षमतासे समय-समयपर अनेक कठिनाइयों और उत्पन्न झञ्झावातोंके समाधानमें अधिकारियोंको सजगकर विश्वविद्यालयके मानको बढ़ाया है। यदि सचमुच विश्वविद्यालयको समुन्नत करना अभीष्ट हो तो ऐसे अनुभवी और कुशल व्यक्तियोंकी सेवाएँ कुलपति पदके लिए प्राप्त की जा सकती हैं। बाहरका कोई भी व्यक्ति कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

ऐसे अनुभवी व्यक्तियोंको इक्जीक्यूटिव कौन्सिलके सदस्य के रूपमें या अन्य विवदग्रस्त समस्याओंमें उनसे कभी राय लेना भी वर्तमान शासन उचित नहीं समझता।

गोखलेका शिक्षासम्बन्धी प्रस्ताव कौन्सिलमें		१९ मार्च, १९१२
प्रतिज्ञा बद्ध कुली प्रथा कौन्सिलमें		२० मार्च, १९१६
भारतीय कौन्सिल	,,	२३ ,, १९१७
रौलट बिल	,,	१८ जनवरी, १९१९
इण्डेम्निटी बिल	,,	१८ सितम्बर, १९१९
,, ,,	,,	२५ दिसम्बर, १९१९
भारतीय माँग	मद्रासमें	३१ जनवरी, १९१७
वर्तमान स्थिति	बम्बईमें	१० जुलाई, १९१७
स्वराज्य आन्दोलन	प्रयागमें	८ अगस्त, १९१७
,, ,,	होमरूल लीग, प्रयागमें	८ अक्तूबर १९१७
व्यवस्थापिका सभामें	बम्बईमें	२६ अक्तूबर १९३४
हिन्दू जाति	लाहौरमें	२९ सितम्बर, १९२२
हिन्दू-मुसलिम एकता	लाहौरमें	२६ जून, १९२२
हिन्दू जातिकी रक्षा	काशीमें हिन्दू महासभाके सातवें अधिवेशनमें	१९ अगस्त, १९२३
,, ,, ,,	प्रयागमें	जनवरी, १९२३
,, ,, ,,	पञ्जाब हिन्दू सम्मेलन, लाहौरमें	२३ फरवरी, १९२४
हिन्दू सङ्गठन	बेलगाँवमें	२६ दिसम्बर, १९२४
,, ,,	पूनामें	१ जनवरी, १९३६
सर्वश्रेष्ठ धर्म	,, ,, ,,	१९३६
राष्ट्रभाषा	प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी	१० अक्तूबर, १९१०
हिन्दी नवम्	,, ,, ,, बम्बईमें	१९ अप्रैल, १९१९
दीक्षान्त भाषण—हिन्दूविश्वविद्यालय	काशी,	२६ जनवरी, १९२०
,, ,, ,, ,,		१४ दिसम्बर, १९२९
विद्यार्थियोंके कर्त्तव्य ,,	,,	४ सितम्बर, १९३५

परिशिष्ट—२

महाराजके महत्त्वपूर्ण भाषणोंकी सूची

१. व्यवस्थापिका सभाएँ :	कांग्रेसका	तीसरे	अधिवेशन,	मद्रासमें	१८	दिसम्बर,	१८८७
२. आयकर	,,	चौथे	,,	प्रयागमें	२६	,,	१८८८
३. हाउस आफ कामन्स	,,	पाँचवें	,,	बम्बईमें	२६	,,	१८८९
४. व्यवस्थापिका सभाएँ	,,	छठे	,,	कलकत्तामें	२६	,,	१८९०
५. भारतीयोंके कष्ट और उन्हें दूर करनेके उपाय	,,	सातवें	,,	नागपुरमें	२८	,,	१८९१
६. सरकारी नौकरियाँ	,,	आठवें	,,	प्रयागमें	२८	,,	१८९२
७. भारतीयोंको कष्ट	,,	नवें	,,	लाहौरमें	२७	,,	१८९३
८ व्यय सम्बन्धी कमीशन	,,	ग्यारहवें	,,	पूनामें	२७	,,	१८९५
९. निर्धनता और दुर्भिक्ष	,,	,,	,,		,,	,,	,,
१०. प्रान्तीय ठीके	,,	बारहवें	,,	कलकत्तामें	२८	,,	१८९६
११. भारतीय व्ययपर राजकीय कमीशन	,,	तेरहवें	,,	अमरावतीमें	,,	,,	१८९७
१२. दुर्भिक्ष निवारण सम्बन्धी सुधार	,,	सोलहवें	,,	लाहौरमें	२७	,,	१९००
१३. विश्वविद्यालय बिल	,,	उन्नीसवें	,,	मद्रासमें	,,	,,	१९०३
१४. पार्लियामेण्टमें भारतीयोंका प्रतिनिधित्व	,,	बीसवें	,,	काशीमें	२७	,,	१९०५
१५. सभापतिका भाषण	,,	सैतालिसवें	,,	कलकत्तामें	२७	,,	१९३२
१६. राष्ट्रीय सरकार और चुनाव	,,	इक्यावनवें	,,	फैजपुर	२८	,,	१९३६

१७. राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्समें भाषण लन्दन, १५ सितम्बर, १९३१

१८. ,, ,, ,, ,, ,, १६ नवम्बर, १९३१

१९. सभापतिका भाषण अधिवेशन २४ वें लाहौरमें, १९०९

२०. ,, ,, ,, ३३ वें दिल्लीमें, १९१८

२१. स्वदेशी आन्दोलन ,, २२ वें प्रयागमें, १९०७

२२. ,, ,, प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन लखनऊमें सन् १९०८

२३. अर्थ सम्बन्धी वक्तव्य प्रयागमें ,, १९०७

विद्रोह-स[illegible] दिवस कौन्सिलमें ६ अगस्त, १९१०

प्रेस-विधा[illegible] ,, ४ अप्रैल, १९१०

१९०५	स्वदेशी प्रचार आन्दोलन प्रारम्भ किया
१९०६	कलकत्ता काँग्रेसमें प्रथम भाषण
१९०७	स्वदेशी आन्दोलनका विस्तार
१९०७	साप्ताहिक पत्र 'अभ्युदय'का, प्रयागका, सम्पादन
१९०७	सूरत काँग्रेसमें नरम-गरम दलमें मेल करानेका प्रयास
१९०८	प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन, लखनऊके सभापति
१९०८	डोमिनियन स्टेट्सकी माँग—काँग्रेसमें प्रथम बार उठाया
१९०९	काँग्रेसके सभापति
१९०९	प्रान्तीय कौन्सिलसे बड़ी कौन्सिलर केन्द्रीयके लिए चुने गये ।
१९०९	'लीडर' अँग्रेजी दैनिक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ
१९०९	प्रेस ऐक्टका विरोध
१९०९	गोखलेके शिक्षा बिलका कौन्सिलमें जोरदार समर्थन
१९१०	महाराजके प्रयाससे सर जान हीवेटने प्रयागमें प्रदर्शनीका उद्घाटन किया ।
१९१०	प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन काशीके सभापति
१९१०	प्रयागमें मिण्टो मेमोरियल घोषणा स्तम्भ
१९१०	बड़ी कौन्सिलमें कुली प्रथाका विरोध किया
१९११	काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके चन्देके लिए व्यापक दौरा
१९१२	पब्लिक सर्विस कमीशनके समक्ष गवाही दी ।
१९१४	होमरूल लीग आन्दोलनमें योगदान
१९१४	गङ्गा नहर आन्दोलन—हरिद्वार
१९१४	सेवा समिति प्रयागकी स्थापना
१९१५	इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिलमें—काशी हिन्दूविश्वविद्यालय बिल स्वीकृत ।
१९१६	लार्ड हार्डिज वाइसरायने विश्वविद्यालयकी नींव डाली
१९१७	प्रतिनिधि मण्डल (विदेशके लिए) के सदस्य चुने गये ।
१९१८	सेवा समिति ब्वाय स्काउट एसोसियेशनकी स्थापना महाराज चीफ एकाउण्ट बने ।
१९१८	रौलट बिल का विरोध किया ।
१९१८	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, बम्बईका सभापतित्व
१९१८	काँग्रेस महाधिवेशन दिल्लीके सभापति
१९१९	इण्डेम्निटी बिलके विरोधमें पाँच घण्टा भाषण
१९१९	जालियाँवाला बाग हत्याकाण्डमें पञ्जाबकी प्रशंसनीय सहायता
१९१९	पञ्जाब जाँच कमेटीमें भाग लिया
१९१९	पञ्जाबमें सेवा समिति द्वारा सहायता पहुँचायी ।
१९१९	काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके कुलपति निर्वाचित ।
१९२०	बड़ी कौन्सिल चुनावका परित्याग ।

परिशिष्ट—३

प्रमुख घटनाओंकी तालिका

सन्	घटनाएँ
१८६१	जन्म (पौष कृष्ण ८ बुधवार सं० १९१८ वि० २५ दिसम्बर)
१८६६	पाठशालामें प्रवेश
१८६९	यज्ञोपवीत संस्कार
१८६९	इङ्गलिश स्कूलमें प्रवेश
१८७७	हाईस्कूल परीक्षोत्तीर्ण
१८७८	विवाह
१८८०	प्रयागमें हिन्दू समाजकी स्थापना
१८८१	स्वदेशी वस्तुओंके प्रयोगका व्रत
१८८४	मध्य हिन्दू समाजकी स्थापना
१८८४	कलकत्तामें बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण
१८८४	हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा प्रयागमें स्थापित
१८८५	अध्यापक पद प्राप्ति वेतन ४०) मासिक
१८८६	काँग्रेसमें पदार्पण (दूसरे अधिवेशनमें)
१८८७	सामाजिक उत्थानमें मनोयोगके लिए अध्यापक पदसे त्याग
१८८७	भारत धर्म महामण्डलके महोपदेशक
१८८७	हिन्दोस्थान (कालाकाङ्कर) के सम्पादक १८८५
१८८९	प्रयागमें भारती भवन पुस्तकालयकी स्थापना
१८८९	वकालतकी तैयारी
१८८९	इण्डियन यूनियनके सम्पादक
१८९१	कलकत्तासे वकालतकी परीक्षा उत्तीर्ण की।
१८९२	वकालत प्रारम्भ जिलेमें
१८९३	उच्च न्यायालयमें
१८९५	अदालतोंमें देवनागरी लिपि प्रयोगके प्रचलनका प्रयत्न प्रयास
१८९८	देवनागरी लिपि आन्दोलन
१९०१	प्रयागमें हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउसका निर्माण
१९०१	प्रयाग म्युनिसिपैलिटीके वाइस चेयरमैन
१९०३	प्रान्तीय कौन्सिलके सदस्य नियुक्त हुए
१९०४	हिन्दूविश्वविद्यालय स्थापनाकी योजना
१९०५	काशी काँग्रेसमें विश्वविद्यालय योजना एक समितिके सुपुर्द
१९०५	अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभाके विराट् अधिवेशनमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रस्ताव पारित

१९३३	कलकत्ता काँग्रेसका सभापतित्व करने जाते समय आसनसोलमें गिरफ्तार कर लिए गये।
१९३३	१९३३ में—प्रयागमें हिन्दू-मुसलमानोंमें एकता सम्मेलन (युनिटी कान्फ्रेन्स) समझौता करनेके लिए बुलाया गया था।
१९३४	अछूतोद्धारके सम्बन्धमें भाषण, गाँधीजीका एक वर्षका दौरा काशीमें समाप्त हुआ। मालवीयजीने समापन भाषण किया।
१९३४	काँग्रेस नेशनलिस्ट पार्टीका पुनर्गठन।
१९३४	बिहारके भूकम्प पीड़ितोंकी सहायताके लिए बिहारका दौरा किया।
१९३५	पूना हिन्दू महासभाका सभापतित्व।
१९३५	काँग्रेसके ५० वें वर्षमें उसकी स्मृति शिलाका उद्घाटन बम्बईमें किया।
१९३६	प्रयागमें अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभाका सभापतित्व।
१९३६	नासिकमें अछूतोद्धार किया।
१९३६	शिवरात्रिपर हरिजनोंको मन्त्र दीक्षा दी—विराट जुलूस निकाला गया।
१९३६	फैजपुर काँग्रेसमें ऐतिहासिक भाषण।
१९३८	काया-कल्प प्रयोग ४५ दिनोंका।
१९३९	काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके कुलपतित्वका त्याग।
१९४०	पूर्ण स्वराज्यके लिए काशीमें हरिहरात्मक महारुद्र प्रयागका सङ्कल्प वर-शुल्क निषेध व्यवस्था।
१९४६	नोआखलीकी घटनापर मार्मिक वक्तव्यके बाद महाप्रयाण।

१९२१	कांग्रेस कमेटी (बम्बई) की बैठकमें प्रिन्स आफ वेल्सके स्वागतके बहिष्कारका प्रस्ताव पास। महाराजने उसका विरोध किया।
१९२१	वाइसराय लार्ड रीडिङ्गसे साक्षात्कार।
१९२२	चौरीचौरा काण्डके बाद महाराज बारडोली जाकर गाँधीजीको देशकी परिस्थितिसे अवगत कराया।
१९२२	बम्बईमें कान्फ्रेन्स बुलाकर देशकी तत्कालीन अवस्थापर विचार किया।
१९२२	गाँधीजीके पकड़े जानेपर भारत भ्रमणकर जन-जागरण किया दफा १४४ तोड़ा—सरकारने उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की।
१९२३	अखिल भारतीय हिन्दू महासभाके अधिवेशनका सभापतित्व।
१९२४	'हिन्दुस्तान टाइम्स' दिल्लीका प्रबन्ध अपने हाथमें लिया।
१९२४	प्रान्तीय सनातन धर्म सभा रावलपिण्डीका सभापतित्व किया।
१९२४	प्रयागमें त्रिवेणी सङ्गम स्नानके लिए सत्याग्रह।
१९२४	कोहाटमें हिन्दू-मुसलिम दङ्गा पीड़ितोंकी सहायता की।
१९२५	अमृतसर दुर्गियाना मन्दिर और सरोवरकी स्थापना।
१९२६	लाला लाजपत रायके साथ नेशनलिस्ट पार्टीकी स्थापना।
१९२७	हरिद्वार तीर्थकी सम्मान रक्षाका आन्दोलन किया।
१९२७	काशीमें दशाश्वमेध घाटपर अन्त्यजनोंको मन्त्र दीक्षा।
१९२८	अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभाके अधिवेशनके सभापति
१९२८	पञ्जाबका दौरा।
१९२८	कलकत्तामें अन्त्यजनोंको मन्त्र-दीक्षा विद्वानोंसे शास्त्रार्थ किया।
१९२८	साइमन कमीशन बहिष्कारके सम्बन्धमें लाहौर गये।
१९२९	बेलगाँव हिन्दू महासभा अधिवेशनके सभापति।
१९२९	लार्ड इरविनको राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्स बुलानेके लिए पत्रक दिया।
१९२९	सनातन धर्म और स्वराज्यके लिए दक्षिण भारत तथा पञ्जाबका दौरा किया।
१९३०	व्यवस्थापिका सभासे त्याग-पत्र दिया।
१९३०	पेशावरमें गोलियाँ चलीं—महाराज वहाँ पहुँचे।
१९३०	१ अगस्तको बम्बईमें लोकमान्य तिलककी पुण्यतिथिके जुलूसमें गिरफ्तार किये गये।
१९३०	२० अगस्तको दिल्लीमें महाराज पुनः पकड़े गये और नैनी जेल भेज दिये गये
१९३१	गोलमेज सम्मेलनमें भाग लेने विलायत गये।
१९३२	दिल्ली कांग्रेसका सभापतित्व करने दिल्ली जाते समय दनकोर स्टेशनपर पकड़े गये, चार दिन बाद छोड़ दिये गये।
१९३२	१४ जनवरीको विलायतसे वापस, भारतकी स्थितिके बारेमें वाइसरायको पत्र लिखा।
१९३३	सनातन धर्म साप्ताहिक पत्रका प्रकाशन किया।
१९३३	गङ्गा नहरका दूसरा झगड़ा।

किया करते थे। सन् १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलनमें स्वतन्त्रता सेनानियोंको आर्थिक सहायता पूरे प्रदेशके हर भागमें महामना मालवीयजी ही भिजवाते थे। श्री फिरोज गाँधीके छूटनेपर स्वतन्त्रता सेनानियोंकी सहायताके लिए समिति गठित की गयी थी और विभिन्न पूर्वी जिलोंमें स्वतन्त्रता सेनानियों-के सम्बन्धमें अपील दायर की थी। इसका भी सारा आर्थिक व्यय महामनाजी ही देते थे। यह सब कार्य भी श्री शिवधनी सिंहजी बड़ी कुशलता एवम् गोपनीयताके साथ प्रतिपादित करते थे। प्रार्थना पत्रमें पण्डित जवाहर लाल नेहरूके पत्र दिनांक १४-११-४१ की प्रति तथा अन्य नेता माननीय पण्डित कमलापति त्रिपाठी, श्री गोविन्द वल्लभ पन्त, श्री त्रिभुवन नारायण सिंह आदिके पत्र भी लगे हैं। श्री शिवधनी सिंहजीका महामना मालवीयजीके साथ वहाँ रहना भी आवश्यक था और इसीलिए वह स्वयं व्यक्तिगत सत्याग्रह एवं अन्य आन्दोलनोंमें भाग नहीं ले सके और उनके साथ कार्य करते रहे।

निवेदन है कि श्री शिवधनी सिंहजीको दफा १२ के अन्तर्गत राज्य पेन्शन स्वीकृतिके आदेश पारित करें, जिससे कि इस वृद्धावस्थामें उन्हें अन्तिम संस्तुष्टि हो जाय और आर्थिक सहायता भी।
संलग्नक :—प्रार्थना पत्र दिनांक ३१-८-८३।

ह० कामेश्वर सिंह
निदेशक/सचिव
स्वतन्त्रा संग्राम सेनानी कल्याण परिषद्

उत्तर प्रदेश सरकार
स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी कल्याण परिषद्
६ पार्क रोड, लखनऊ।
सं० ४९२२ सं० प०। ८३, दिनांक २२ सितम्बर ८३।
प्रतिलिपि :—श्री शिवधनी सिंह, भू० पू० निजी सहायक,
पण्डित मदन मोहन मालवीयजी, नि० बी० १/६१, अस्सी, वाराणसी।

उपसंहार

स्वतन्त्रता संग्राममें योगदान—

जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है मालवीयजी महाराज तथा तत्कालीन वरिष्ठ नेताओंके आदेशानुसार स्वयंको पुलिसकी गिरफ्तसे बचाते हुए गुप्त कार्यों—उत्पीड़ित सेनानियों, उनके परिवारोंकी देखभाल, उनको आर्थिक सहायता पहुँचाना, सत्याग्रह संग्रामके प्रयोगमें आनेवाली मालवीय-जीकी दो गाड़ियाँ—ब्यूक और जीप जिनका लाइसेन्स मेरे नाम था, श्रीमती उषा मालवीय (पण्डित गोविन्द मालवीयकी पत्नी) के डिक्टेतरशिपमें प्रायः जीपका प्रयोग होता था। उनके गिरफ्तार होनेपर जीप भी पकड़ी गयी थी, जिसे मैंने जप्त नहीं होने दिया। श्रीमती उषा मालवीयको केन्द्रीय कारागारमें बन्दी बनाया गया।

स्वयं मालवीयजी महाराज भी केन्द्रीय कारागार नैनी (प्रयाग) में बन्दी बनाये गये थे। मैं प्रति सप्ताह उनसे मिलने जाता था—आवश्यकता पड़नेपर किसी भी दिन किसी समय उनसे मिलने तथा यत्र-तत्र उनकी सूचना अन्य नेताओंतक जो बन्दी नहीं थे, पहुँचाता था।

उनके चतुर्थ पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीय भी बन्दी थे। अतः उनके परिवारका दायित्व भी मुझपर था।

विश्वविद्यालयके मालवीय भवनकी सर्चके लिए भेलूपुर पुलिस आयी थी मेरी इस आपत्तिपर कि यह मालवीयजीका गृह नहीं है, कुलपति निवास है। यदि आपको कुलपति निवासका सर्च करना है तो विश्वविद्यालयके प्रो०-वाइस-चान्सलरकी स्वीकृति लाकर सर्च कर सकते हैं, पुलिस वापस चली गयी।

सत्याग्रह अवैध घोषित होनेपर कार्यालयकी मशीन तथा कागजात मेरी सुरक्षामें रखा गया था। इस प्रकार मेरा गुप्त कार्य चलता रहा और पुलिसकी गिरफ्तमें नहीं आ सका, उन सबका विवरण अनावश्यक है किन्तु मुख्य मन्त्री महोदय (उ० प्र०) को सम्बोधित संलग्न पत्र सं० ४९२२ स० प० ८३ दिनांक २२-८-८३ से मेरे गुप्त कार्योंका कुछ सङ्केत सप्रमाण मिलेगा, जो अनुभाग अधिकारी सामान्य अनुभाग १, उत्तर प्रदेश सचिवालयमें विचाराधीन है। जो सरकारी पेन्शनके लिए सप्रमाण प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया है।

शिवधनी सिंह

माननीय मुख्य मन्त्रीजी

विषय :—श्री शिवधनी सिंह पुत्र स्व० ठाकुर राजकिशोर सिंह निवासी बी० १/६१ अस्सी मुहल्ला. वाराणसीको राज्य पेन्शन स्वीकृतिके सम्बन्धमें।

प्रार्थी श्री शिवधनी सिंहकी आयु इस समय ८० वर्षके ऊपर है। यह स्व० महामना मदन मोहन मालवीयजीके निजी सहायकके रूपमें सन् १९२८ से अन्ततक कार्यरत रहे। यह मालवीयजीके बहुत ही विश्वासपात्र थे। राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें महामनाजी सदा दिलचस्पी लेते रहे और आर्थिक तथा अन्य प्रकारके स्वतन्त्रता सेनानियोंकी मदद भी करते थे। यह सब कार्य प्रार्थी श्री शिवधनी सिंहजी